समर्पण

।

स्वर्गस्थ

माता-पिता के चरणों

में

(जिन्होंने मनुष्य से मानव बनाया)

आशीर्वाद

I have great pleasure in writing these few lines in appreciation of **Dr. Tarak Nath Agrawal's** edition of **Bisaldeo Raso** This is a very important early New Indo Aryan text, the question of affiliation of which is disputed **Dr Agrawal** has utilized all the available manuscripts and printed editions I am sure the publication of this edition will solve a large number of doubtful readings and interpretations

Sukumar Sen

Khaira Professor of Indian
Linguistic and Phonetics
&
Head of the Department of
Comperative Philology,
Calcutta University

CALCUTTA
May 7, 1962

दो शब्द

'बीसलदेव रासो' पर मेरे द्वारा कार्यारम्भ के पहले यद्यपि श्री सत्यजीवनजी वर्मा द्वारा सम्पादित प्रति प्रकाशित हो चुकी थी फिर भी डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या एवं डा० सुकुमार सेन महाशय ने आदेश दिया कि वैज्ञानिक ढंग से मैं इसका संपादन करूँ। गुरुजनों के आदेश का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझ कर मैंने कार्य आरम्भ किया। मेरे कार्य के मध्य में ही इसकी दूसरी प्रति भी डा० माताप्रसादजी गुप्त द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो गई। लेकिन मेरा कार्य अपनी गति से चलता रहा।

इन दोनों प्रकाशित प्रतियों के सम्पादकों में से श्री सत्यजीवनजी वर्मा ने सं० १६६६ की इसकी पाण्डुलिपि को अपने सम्पादन का आधार माना है। जिस समय उन्होंने सम्पादन-कार्य किया था, सम्भवतः उस समय तक १६६६ की पाण्डुलिपि को छोड़कर अन्य पाण्डुलिपियों की सूचना उन्हें प्राप्त न हो सकी थी। अस्तु, उन्होंने अपने द्वारा सम्पादित पुस्तक में विभिन्न पाण्डुलिपियों में प्राप्त विभिन्न पाठों का उल्लेख नहीं किया है।

डा० माताप्रसादजी गुप्त ने जिस काल में इसका सम्पादन-कार्य किया, उस समय इसकी अनेक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हो चुकी थीं और उन्हें प्रायः सभी पाण्डुलिपियों के अवलोकन का सुअवसर भी प्राप्त हो चुका था। प्राप्त पाण्डुलिपियों में सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि सं० १६३३ की है। डा० गुप्त ने अपने सम्पादन का आधार इसीको बनाया और विभिन्न पाण्डुलिपियों में प्राप्त पाठों का उल्लेख भी अपनी पुस्तक में किया। लेकिन उन्होंने अन्य प्रतियों के छन्दों के साथ इस प्रति (१६३३) के छन्दों की तुलना करके केवल १२८ छन्दों को ही प्रामाणिक माना और इन १२८ छन्दों के ही विभिन्न पाठों का उल्लेख भी किया, यद्यपि १६३३ की पाण्डुलिपि में २४६ छंद हैं।

मैंने प्रस्तुत सम्पादन-कार्य सं० १६३३ वाली पाण्डुलिपि के प्रत्येक छंद को प्रामाणिक मानने का कारण बताते हुए नये ढंग से किया है। इसके अतिरिक्त मैंने एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल में प्राप्त 'बीसलदेव रासो' की वह

प्रति के पाठ का भी उल्लेख किया है, जिसका उल्लेख अन्यत्र नहीं है। काव्यागत 'काव्यसौष्ठव', काव्य की 'भाषा' तथा पुस्तक में दिये गए परिशिष्ट 'क' और 'ख' में जहाँ नया दृष्टिकोण उपस्थित करने का प्रयास किया गया है, वहीं ग्रन्थ की रचनातिथि का निर्णय भी वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत वैज्ञानिक ढंग से सम्पादित इस कार्य को करने में मेरी कठिनाइयों का स्वागत करने और उन्हें हल करने के लिए सर्वदा तत्पर रहनेवाले विद्वान् डा० सुकुमार सेन का मैं ऋणी हूँ। उन्हीं के पथ-प्रदर्शन से यह अध्ययन प्रस्तुत होकर कलकत्ता विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के हेतु स्वीकृत हो सका है।

अन्त में, मैं एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकाध्यक्ष तथा वहाँ के अन्य अधिकारियों का आभारी हूँ जो मुझे कार्य की प्रगति में यथाशक्ति सुविधाएँ प्रदान करते रहे। लखनऊ विश्वविद्यालय के रीडर डा० विपिन-विहारी त्रिवेदी के प्रति भी कृतज्ञता-ज्ञापन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने इस कार्य को अग्रसर करने में मुझे सर्वदा प्रेरणा दी।

देसोदेसो कालेज, कलकत्ता
२० जून, १९६२ } *तारकनाथ अग्रवाल*

संकेत-सूची

१. सं०—संवत् ।
२. ना० प्र० प०—नागरी प्रचारिणी पत्रिका ।
३. वि० सं०—विक्रमी संवत् ।
४. जे० आर० ए० एस० 'बी०'—जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी (बंगाल)
५. सं०—सम्पादक ।
६. ई० स०—ईसवी सन् ।
७. जे० ए० एस० 'बी०'—जर्नल एशियाटिक सोसाइटी (बंगाल)
८. आई० ए०—इण्डियन एण्टिकवेरीज ।
९. जे० एण्ड पी० ए० एस० 'बी०'—जर्नल एण्ड प्रोसीडिंग्स एशियाटिक सोसाइटी (बंगाल)
१०. हिं० सा० इ०—हिन्दी-साहित्य का इतिहास ।
११. अ० २—'अ' समूह की सं० १६६७ वाली प्रति ।
१२. आ० ६—'आ' समूह की सं० १७२४ वाली प्रति ।
१३. आ० ६—'आ' समूह की सं० १७५१ वाली प्रति ।
१४. आ० १२—'आ' समूह की सं० १७७५ वाली प्रति ।

सूचीपत्र

अध्याय — पृ० सं०

भूमिका १–१००

१. प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों का परिचय ... १–१६
(क) सत्ताइस हस्तलिखित प्रतियों का पूर्ण परिचय। (ख) प्रतियों के रूपान्तरों का विवरण। (ग) रूपान्तरों में कथावस्तु का पार्थक्य।

२ ग्रंथ की रचना-तिथि १६–५६
अन्त साक्ष्य, भाषा एवं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर रचना तिथि का विवेचन।

३. काव्यागत कथा एवं काव्य का रचयिता ... ५६–७१
(क) प्रतियों के रूपान्तरों के अनुसार काव्य में वर्णित कथा का सार। (ख) कवि का जीवन-चरित्र। (ग) कवि की जाति का निर्णय।

४. काव्य-सौष्ठव ७१–६५
(क) ऋतु-वर्णन। (ख) चरित्र चित्रण। (ग) रस। (घ) अलंकार। (ङ) छन्द।

५. भाषा ६५–१००
(क) सम्पादित प्रति की भाषा। (ख) व्याकरण।

६ ग्रंथ का सम्पादन १–६६
आज तक की प्राप्त प्रतियों में से सबसे प्राचीन प्रति के आधार पर सम्पादन।

७. परिशिष्ट 'क' १७३–१६५
ग्रन्थ में आये हुए विभिन्न नगरों का ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा पौराणिक दृष्टि से विवेचन।

८ परिशिष्ट 'ख' १६६–२००
ग्रन्थ में आई हुई विभिन्न जातियों का परिचय।

९. परिशिष्ट 'ग' २०१–२०८
सहायक ग्रन्थों की सूची २०६–२१३

*

भूमिका

'बीसलदेव रासो' की हस्तलिखित प्रति का पता सबसे पहले 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' को सन् १९०० ई० में हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकों की खोज करते समय जयपुर में लगा था[1]। श्री सत्यजीवन जी वर्मा द्वारा नागरी-प्रचारिणी सभा ने इस प्राचीन ग्रन्थ को सम्पादित करवा कर सन् १९२५ ई० में प्रकाशित भी कर दिया। इसके पश्चात् श्री अगरचन्द नाहटा ने प्रकाशित ग्रन्थ की भाषा तथा उसके ऐतिहासिक और भौगोलिक उल्लेखों को ध्यान में रख कर यह आवश्यक समझा कि इस ग्रन्थ की अन्य हस्तलिखित प्रतियों की खोज की जाय। इस दिशा में उन का प्रयत्न अंशतः सफल रहा। सर्वप्रथम उन्होंने 'राजस्थानी' पत्रिका में इस ग्रन्थ की जयपुरवाली प्रति के अतिरिक्त १५ अन्य प्रतियों का उल्लेख किया[2]। इस उल्लेख में कुछ ऐसी प्रतियों का भी उल्लेख था, जिन का पूर्ण परिचय नाहटा जी को उस समय तक प्राप्त न हो सका था। अस्तु पुनः उन्होंने 'राजस्थान-भारती'[3] में अपूर्ण परिचयवाली प्रतियों तथा अन्य प्राप्त प्रतियों का उल्लेख किया। इस प्रकार अब प्राप्त प्रतियों की संख्या १२ के बजाय २६ हो गयी। ये प्रतियाँ जोधपुर, बीकानेर, जयपुर तथा कोटा के विभिन्न पुस्तक-भंडारों में सुरक्षित हैं। मुझे एशियाटिक सोसाइटी (बंगाल) कलकत्ता, में दो हस्तलिखित प्रतियों को देखने का अवसर मिला। इन दोनों प्रतियों का उल्लेख नाहटाजी के लेखों में नहीं है। इनके अतिरिक्त नाहटाजी के लेखों में उन चार तथा दो पत्रों वाली प्रतियों का भी उल्लेख नहीं है, जो मुझे देखने को मिलीं। अतः नीचे अब तक प्राप्त उन २७ प्रतियों का परिचय दिया जा रहा है, जिनमें से १५ हमारी निजी देखी हुई हैं तथा १२ श्री नाहटा जी के लेख के आधार पर हैं।

---

(1) Annual Report on the search for Hindi Mss. for the year 1900. Notice No. 96, page 77.

(२) राजस्थानी (त्रैमासिक पत्रिका)—भाग ३, अंक ३, पृ० १८।

(३) राजस्थान भारती—पृ० ८४।

प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों का परिचय

[१] नाम—*बीसलदेव रासो*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ)। पत्र—२७ पत्र, दोनों तरफ लिखे हुए। आकार—११ इं. × ५ इं.। पंक्तियाँ—१५ से १६ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। पद्य संख्या—२४६। प्रकार—पुराना, पूर्ण; साधारणतया ठीक। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—जोधपुर में पोकरण के पास फलौदी के श्रीयुत फूलचन्द जी झाबक के पास।

[गुप्त स० समूह न० ३, संकेत ग०]

पुष्पिका—इति श्री बीसलदे रास समाप्त। संवत् १६३३ वर्षे वैशाख वदि ११ दिना आदित्यवारे। लिपतं आगरा मध्ये पं० लीदा लिपत। संपूर्णं।

आदि—गवर का नंदन त्रिभुवन सार। नादभेदइ थारइ उयर भण्डार। एद दन्तउ सुधिक छइछद। सुधिकउ धारइण लिजक सद्रूरि। धर ओढी नरपति मथइ। जाणि करि रोहणी जिमतपउ सूरि॥

अंत—कनक काया जिसी कूंकू रोल। कठिन पयोहर रतनक चोल। केलि गरभ सी कूंवली। धाछइ पूपनउ पाचइ लोक। मोटि कटि चालइ गोडरी। उणकी विरह वेदना नां लहइ कोइ। जिउ राजा राणी मिलया। रयउ नाल्ह कहइ मिलि ज्यो सह कोइ॥ २४६॥

रचना तिथि—संवत् सहससत्तिहिवरइ जाणि। नल्ह कविसरि कही अमृत वाणि। गुण गुथ्य चउहाण का सुकल पक्ष पंचमी श्रावण मास। रोहणी नक्षित्र सोहामणउ। सो दिन गिणि जोइसा जोडइ रास।

टि०—प्राप्त तिथियुक्त प्रतियों में यही सबसे प्राचीन है।

[२] नाम—*राजा वीसलदे रासा*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ), पत्र—सोलह पत्र दोनों तरफ लिखे हुए। आकार—८½ इं. × ८ इं.। पंक्तियाँ—२६ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। पद्यसंख्या—६१७। प्रकार—पुराना; पूर्णं,

[गुप्त स० समूह न० १५, संकेत म० ।]

साधारणतया ठीक; चार खण्डों में विभाजित। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—विद्याप्रचारिणी जैन सभा, जयपुर। श्री अगरचन्दजी नाहटा ने 'राजस्थान भारती', पृ० ८३ में लिखा है कि "सं० १६६६ लिखित महत्त्वपूर्ण गुटका हमारे संग्रह में खरीद करके संग्रह कर लिया गया है।"

पुष्पिका—इति राजा वीसलदे रास राजमती च्यारि खण्ड संपूर्ण भवति। संवत १६६६ वर्षे फागुण बदि १ भौमे लिपतं पृथ्वपेदा मध्ये राज्य श्री पीपी राजचंदजी राज्ये। शुभ भवतु।

आदि—श्री गुरुभ्योनमः। हंसवाहण मृगलोचनी नारि। *सीस समारइ दिन गिणइ। लिए सिरजइ उलिगाणा* धरी नारि। जाई वीवाहइ इणिती ॥ १ ॥ गौरिका नंदन त्रिभुवन सार ॥ नाद वेद्या थारइ उदिर भंडार ॥ कर जोड नरपति कहई ॥ मूसा वाहन सिंधूरस्यंदूर ॥ एक दन्तउ मुख झलमलई। लाधिक रोहणीड नवर सूर ॥

अन्त—ज्यूं तारायण मिलियो चंद। गोवल माहि मिलइ ज्यूं गोव्यन्द। ज्यूं उलोगाणि धरी मीलयो। गहि उलिगाणई कीधो हो वास। मन का मनोरथ पूरन्या। भणई सुणई तिणि पूज्यो आस ॥

रचनातिथि—बारह सै बहोत्तरां हाँ मँझारि। जेठ बदी नवमी बुधवारि ॥ "नाल्ह" रसायण आरंभइ। सारदा तुठि ब्रह्म-कुमारि। कासमीरां-मुख-मण्डणी। रास प्रगासौं वीसल-दे राइ।

टि०—यही प्रति नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुई है :—

[३] नाम—*श्री वीसलदे रास*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) आकार—११ इं०×५ इं०। पंक्तियाँ—१२ से १६ प्रत्येक पृष्ठ पर। पद्यसंख्या—२४६। प्रकार—पुराना; पूर्ण; साधारणतया ठीक। अक्षर—देव-

प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों का परिचय

[१] नाम—*बीसलदेव रासो*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ)। पत्र—२७ पत्र, दोनों तरफ लिखे हुए। आकार—११ इं. × ५ इं.। पंक्तियाँ—१५ से १६ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। पद्य संख्या—२१६। प्रकार—पुराना, पूर्ण; साधारणतया ठीक। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—जोधपुर में पोकरण के पास फलौदी के श्रीयुत पूनमचन्द जी डावर के पास।

[गुप्त स० समूह न० ३, संकेत न०]

पुष्पिका—इति श्री वीसलदे रास समाप्त। संवत् १६३३ वर्षे वैशाष वदि ११ दिना आदित्यवारे। लिषतं आगरा मध्ये पं० सोढा लिषत। संपूर्ण।

आदि—ग्वर का मदनत्रिभुवन सार। नादभेदइ धारइ उयर भण्डार। एक दन्तउ मुषिक छइहइ। मुषिकउ धाइया तिलक सदूरि। कर जोड़ी नरपति भणइ। जायि करि रोहणी त्रिभवणउ सूरि॥

अंत—कनक काया जिसी कूदू रोल। कठिन पयोहर रतनऊ चोल। केलि गरभ सी पू यली। घाघइ पूगउउ पाघइ नील। मोडि कडि चालइ गोडरी। उसकी विरह वेदना नां लहइ कोइ। जिउ राना राणी मिलया। स्यउ नाहइ कहइ मिलि ज्यो सह कोइ॥ २१६॥

रचना तिथि—सवत् सहससतिहितरह जाणि। नवइ कविसरि कही अमृत वाणि। गुण गुथ्य चउहाण का सुकल पक्ष पचमी श्रावण मास। रोहणी नक्षित्र सोहामणउ। सो दिन गिणि जोड़सा जोडइ रास।

टि०—प्राप्त तिथियुक्त प्रतियों में यही सबसे प्राचीन है।

[गुप्त स० समूह न० १५, संकेत न० ।]

[२] नाम—*राजा बीसलदे रासा*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ), पत्र—सोलह पत्र दोनों तरफ लिखे हुए। आकार—८३ इं. × ५ इं.। पंक्तियाँ—२६ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। पद्यसंख्या—१२७। प्रकार—पुराना; पूर्ण,

साधारणतया ठीक; चार खण्डों में विभाजित। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—विद्याप्रचारिणी जैन सभा, जयपुर। श्री अगरचन्दजी नाहटा ने 'राजस्थान भारती', पृ० ८३ में लिखा है कि "सं० १६६६ लिखित महत्वपूर्ण गुटका हमारे संग्रह में खरीद करके संग्रह कर लिया गया है।" .

पुष्पिका—इति राजा वीसलदे रास राजमती च्यारे-खण्ड संपूर्ण भवति। संवत १६६६ वर्षे फागुण वदि १ भौमे लिखत कृष्णपेदा मध्ये राज्य श्री वीधी रायचंदजी राज्ये। शुभ भवतु।

आदि—श्री गुरुभ्योनमः। हंसवाहण मृगलोचनी नारि। सीस समारइ दिन गिणइ। लिया सिरजइ उजिगाया धरी नारि। जाई दीहाडइ झूरिती ॥ १ ॥ गौरिका नंदन त्रिभुवन सार ॥ नाद वेदा थारइ उदिर भंडार ॥ कर जोड़ नरपति कहई ॥ मूसा वाहन सिंदूरवंदूर ॥ एक दन्तउ मुख झलमलई। जाणिक रोहणीउ नवर सूर ॥

अन्त—जूं सारायण मिलियो चंद। गोवल मांहि मिलइ ज्यूं गोव्यन्द। ज्यू उलीगांणइं धरी मीलयो। नदि उलिगांणइं कीधो हो वास। मन का मनोरथ पूरव्या। भणइं सुणइं तिणि पूज्यो भास ॥

रचनातिथि—बारह सै बहोत्तरां हाँ मँझारि। जेठ वदी नवमी बुधवारि ॥ 'नाल्ह' रसायण आरंभइ। सारदा तुठि ब्रह्म-कुमारि। कासमीरा हुत-मण्डणी। रास प्रगासौं वीसल दे राइ।

टि०—यही प्रति नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुई है :—

[३] नाम—श्री वीसलदे रास। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) आकार—११ इं०×५ इं०। पंक्तियाँ—१२ से १६ प्रत्येक पृष्ठ पर। पद्यसंख्या—२५६। प्रकार—पुराना; पूर्ण; साधारणतया ठीक। अक्षर—देव-

गागरी । सुरक्षित स्थान—बीकानेर में बड़े उपासरे के वृहद्—ज्ञानभण्डार के एक गुटके में ।

पुष्पिका—इति श्री वीसल दे रास संपूर्णः ॥ संवत १६८१ वर्षे माह सुदि ६ धरणी सुत वासरे । लिपत चतरा ॥ शुभंभवतु ॥

आदि—श्री गुरुभ्यो नम ॥ राग केदारउ ॥ गउरि को नदन त्रिभुवन सार । नाद भेदइ धारइ उदर भण्डार । एक दसउ मुख शाकदराइ ! सूनका धाइण तिलक सिन्दूर । कर ज्योदि नरपति भणइ । जाणि कर रोहिणी निपइ उप्पउ सूर ।

अंत—कनक काया जिसी कुकु की रोल । कठिन पयोहर हेम कचोल । केलगर भुजि सी आंगुली । धारउं उलगाणा पचइ नइ कहिवाल । राणी राजा स्यु मिला । तिम मुखि ससारि मिचि ज्यो सउकोइ ।

रचना तिथि—नहीं है ।

[४] *यह प्रति बालोतरा* (जोधपुर राज्य) के भावहर्षीय खरतरगच्छ भण्डार में है । इसकी पत्र सख्या ४१ और छंद सख्या २४८ है । इसका लेखन काल स० १६८४ है । इसमें रचना काल "सवत सहस तिउत्तरइ" दिया है ।

[५] यह प्रति जैसलमेर में वृद्धिचन्द जी के समह में सुरक्षित है । १४ पत्रों की इस प्रति में २४२ पद्य हैं । रचना काल का उल्लेख नहीं है । केवल श्रा० सु० ५ रो. का उल्लेख है । प्रति स० १७२२ की लिखित है ।

[६] नाम *वीसलदेव रास* । कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) । पत्र—२० पृष्ठ दोनों तरफ लिखे हुए । आकार—१० इ०×४३ इं० । पंक्तियाँ—१६ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर । पद्य संख्या—२१६, चार खण्डों में क्रमानुसार ३३, ३९, १०२ और ४१ छन्द हैं । प्रकार—पुराना, अच्छी हालत में, पूर्ण ।

लिपि—देवनागरी अक्षर। सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार, बीकानेर।

पुष्पिका—संवत् १७२४ वर्षे मगयशिर वदि १४।

[गुप्त सं० समूह न० १६, सकेत प्र०]

आरम्भ—सुंनम श्रीजिनाय ॥ गवरी का नंदन त्रिभोवन सार। नादवेदां थारो उदरि भण्डार। कर ज्योडी नाह्लो कवि। मूनांरा वादण तिलक सींदूर। एक दांता मुपक मलि। जयि कि रोदणी इउ तपे सूर। सुवय मोदो वर कामिणी। हंस गमणि मृगालोचणी नारि। सीस समारि दिन गणै। साधण उमीछि राज्य कुमार। नाह न देपि चिहूदिसा। किण सरज्यो उलगाणा की नारि। तो ज्याय दीहाडो सूरतां॥

अन्त—राजगमणी मृगालोचणी नारि। सेकि संभारि दिन गणै। साधण उभीछे कोद दुयारि। नाह न देपूं चिहू दिशा। किय कोउ द्दी उलगाणा को नारि। सा जाय दीहाडा सूरता॥

रचना तिथि—सवत् बार बारोतरा मझारि। ज्येठवदी नवमी बुधवार। नाह्ल रसायण आरम्भो। सारदा तुठी छै ब्रह्मकुमार। कास मीरां मुपक मंडणी। रास परगास सू वीसलराय।

[गुप्त प० समूह न० ६, सकेत "वी०"]

[७] नाम—*वीसलदेव रासो*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ)। पत्र—३० पत्र दोनों ओर लिखे हुए। आकार—१० इं० × ४⅞ इं०। पंक्तियाँ—११ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। छंद सख्या—२३८ पद। प्रकार—पुराना, अंतिम पत्र तथा अन्य पत्रो के किनारे सुसज्जित। पूर्ण। अक्षर—देवनागरी लिपि। सुरक्षित स्थान—अभयजैन भण्डार, बीकानेर।

पुष्पिका—संवत् १७३७ वर्षे ज्येष्ठ सुदि १० दिने। लिखितं पंडित कीर्त्ति विलास गणिना। साध्वी राजलक्ष्मी तत्शिष्यणी सुमतिलक्ष्मी तत्शिष्यणी प्रेम लक्ष्मी पठनार्थम्॥

आरम्भ—गवरिका नंदन त्रिभुवन तार । माइ भेरइ धारइ उदर भण्डार । एक दंतउ मूषिक हडूलइ । मूलका धातुण तिलक सिन्दूर । धर ज्योती नरपति भणइ । ज्याखि-करि रोहिणीपूर्ण सम्पउ सूर ॥ १ ॥ घई भत्रय न देउं रि रचितलइ । हंस गमणी मृगालोचणी नारि । सीस समारइ दिन गमइ । ततविण सुमीहइ साउ दुवारि । नाइ नइ ज्योवइ रे बिहुँ दिसइ । घाइ सिरज्यो उजलगीया री नारि । ज्याइ दिहाड उरे सूरतो । एक पग आंगणी एक पग द्वार ।

अंत—कनक काया जिमि कूं कूं रोल । कठिन पयोहर हेम कचोल । केलि-गरभसी कूं अली ; घाइलाधू पग मोडइ नाक । कंठि मोडइ घाघइ गोरडो । उणकी विरह वेदना नां खइइ कोइ । जिउं राजा राणी मिलया । ग्यूं नावइ कहइ मिलिज्यो सहु कोइ ॥

रचना तिथि—संवत् सहस सत्तिहतरइ जाणि । नाल्हकवीसर सरसीय वाणि । गुण गूंथ्यां चउहाणका । सुकुल पपपंचमो श्रावण मास । रोहिणी नक्षत्र सोहामणउ । सुदिन गिण जोइसी जोडियउ रास ।

[८] यह प्रति बीकानेर के अनूप संस्कृत लाइब्रेरी के एक गुटके में है । इसकी पद्यसंख्या २४१ है । रचना तिथि सहस सत्तहत्तरइ श्रा० सु० ५ रो० का उल्लेख है । गुटका सं० १७४२ फा० सु० १३ को कविवर समयसुन्दर की परम्परा के ज्ञानतिलक की लिखित है । उसे गोरमछा पचायण सुत जगजीवण के पठनार्थ लिखवाया गया है । प्रारम्भ के दो पत्र प्राप्त नहीं हैं ।

[गुप्त · पं० रामूह न० ९, सवेत "१०"]

[९] नाम—*बीसलदे रास* ! कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) पत्र—४५ पत्र दोनों तरफ लिखे हुए । आकार—६ इं०×५३ इं० । पंक्तियाँ —१३ से १५ तक प्रत्येक पृष्ठ पर । पद्य संख्या—२४८ । प्रकार—पुराना; अच्छी अवस्था, पूर्ण । अक्षर—देवनागरी । सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार बीकानेर ।

पुष्पिका—इतिश्री सिंगार वर्णन, वीसलदे रास समाप्तं ।। संवत् १७२१ वर्षे चैत्र वदि ४ शुक्रवारं ।। रिणी मध्ये वा० श्री ५ कनक माणिक्ये गणिजी तशिष्यं रतनशेखरेण लिपि चक्रे बेगवाणी साह श्री अमेराज जी वाचनार्थं ।। श्री रस्तु ।। कल्याणमस्तु ।।

आरम्भ—गवरिका नंदन त्रिभुवन सार । नाद भेदइ थारे उदरि भण्डार । एक दंतउ मुषि झलहले । मूषक वाहण तिलक सिन्दूर । कर जोडी नरपति भणें । जाणि करि रोहिणी धुं तप्यों सूर ।। १ ।। कई मुवणन देखइ रवि वलें ।

अंत—कनक काया जिसी कूंको रोल । कठिन पयोहर हेम। कचोल । केलि गरभली कु अली थाइल जि धर चै नाव । मोहि कडि चालें गोरडी । उभि की विर वेटन ना सहै कोई । जु राजा राणी मिल्या । ल्युं नाल्ह कहै लिखउयौ सहु कोइ ।।

रचना-तिथि—संवत् सहस त्रिइन्तरे जाणि । नाल्ह कविसर कही अमृत वाणि । गुण गुथ्यां चउद्दाण का । सुकल पक्ष पंचमी श्रावण मास । रोहिणी नक्षत्र सोहामणो । सो दिनं जोई जोईसी जाड्यो रास ।।

[१०] यह प्रति बीकानेर के जयचन्द्र जी के भण्डार में विद्यमान है। इसमें कुल ३१ पत्र हैं। इसका लेखन काल चैत्र सुदि १३ शनिवार संवत् १७५६ है। इसके अनुसार ग्रन्थ का रचना काल १०३३ है।

[११] यह प्रति बीकानेर के खरतर आचार्य शाखा के भण्डार में है। इसमें २८ पत्र हैं और २६१ पद्य हैं। रचना सूचक पद्य में "सहस सत्तइत्ताइ श्रा० सु० ५ रा" का उल्लेख है। प्रति सं० १७७३ का० व० ११ तेजरासर में समयधर्म की लिखित है।

[१२] नाम—*बीसलदे चौहाण को रास* । कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) पत्रे—पच्चीस दोनों तरफ लिखे हुए। आकार—६३ इं० × ४ इं० । पंक्तियाँ—१३ से १४ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। पद्यसंख्या—२४२

इंच। प्रकार—पुराना; पूर्ण साधारणतया ठीक। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—पारिवारिक सौनाहटी पुस्तकालय (बंगाल) कलकत्ता।

पुष्पिका—इति श्रीवीसलदे चौहाण को रास समाप्तं। संवत् १७७५ वर्षे शाके श्री माधव पुरा मध्ये लिख्यते। कृष्ण पक्ष। चतुर्दशी सोमवार माघवी कर्न पोथी लिपायो॥

आरम्भ—श्री गणेशायनमः गउरि नंदन त्रिभुवन सार। नाद भेदइ सारद उदर भण्डार। एक दंतउ मूषे चढइ। सुपमउ साहणा तिलक सिंदूर। कर जोडी नरपति भणइ। आखि करि रोहिणी जिउलपइ सूर। अवधान देसुरे रचिवसइ।

अन्त—कनक काया जिसी कुंद रोख। कठिन पयोहर हेम कचोख। केलि गरभ रूप की आखी। धोरन ज्युधण मोडै नाक। कडि मोर्टे घर्ले गोरडी। उविक्रा विरह वेदना न छडै कोइ। ज्यु राजा राणी मिल्यौ। त्यु नाल्ह कहै मिलिज्यो सबु कोइ॥

रचनातिथि—सवत् सहसतिहुत्तरे जाणि। नाल्ह कवीसर सरसीय वाणी। गुण गुण्या चौहाण का। सुकल पक्ष पचमी श्रावण मास। रोहिणी नक्षत्र सोहामणी। सुदिन लिखि जोडीयो रास॥

[१३] यह प्रति बीकानेर के कृपाचन्द सूरि—ज्ञान भण्डार में (बस्ता नं० ४२) है। इसकी पत्र संख्या १४ है, और छन्द-संख्या २४० है। इसका लेखन समय फागुन बदि ९ शनिवार स० १७८६ है। यह प्रति सोजत (मारवाड़ा राज्य) में लिखी गई थी। इसमें ग्रन्थ का रचना काल 'सवत् सत्तरतिहोत्तरे' दिया गया है, जो संभवतः 'सहस तिहोत्तरे' के बदले भूल से लिख दिया गया है, क्योंकि १७७२ के पहले की लिखी हुई तो अनेक प्रतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं।"

[१४] यह प्रति बीकानेर के खरतर आचार्य शाखा के भण्डार में १६ पत्रों की है। इसकी पद्य सख्या

२४७ है। रचना काल १०७३ लिखा हुआ है। प्रति सं० १८२६ बीकानेर में 'रतनसी' लिखित है।

[गुप्त : प० समूह नं० ७, संकेत "पु०"]

[१५] नाम—वीसलदे रास। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ)। पत्रे—पचीस। दोनों तरफ लिखे हुए आकार—९३/४ इं०×४३/४ इं०। पंक्तियाँ—दस से १३ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। छंद संख्या—२४९। प्रकार—पुराना फटा हुआ, पूर्ण। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार (बीकानेर)।

पुष्पिका—नहीं है। आदि अंत तथा बीच के कई पत्र दूसरे व्यक्ति के लिखे जान पड़ते हैं।

आरम्भ—गणेशायनमः। गवरिका नन्दन त्रिभुवन सार। नाद भेदइ थारइ उदर भण्डार। एक दसउ सुधिक झलहलइ। मूसका वाहण तिलक सिंदूर। कर जोडी नरपति भणइं। जाणि करि रोहिणी ज्यूं तप्पइ सूर॥

अंत—कनक काया जिसी कूं कूं रोल। कठिन पयोहर हेम कचोल। केलि गरभ सी कूंअली। घाइल ज्युं घण मोडइ नाक। कडि मोडइ चालइ गोरडी। उणकी विरह वेदना ना लहइ कोइ। जिउ राजा रांणी मिल्या। त्युं नाल्ह कहइ मिलिज्यो सहु कोइ॥

रचना-तिथि—संवत् सहस सतिहुत्तरइ जांणि। नाल्ह कविसर सरसीय वांणि। गुण गुथ्या चहुहाण का। सुकुल पक्ष पंचमी श्रावण मास। रोहिणी नषित्र सोदामणी सुदिन गिण जोड्सी जोडियउ रास।

प्रं०—यह प्रति सं० १७२७ वाली प्रति से मिलती-जुलती है।

[गुप्त : प० समूह नं० ४, संकेत "आ०"]

[१६] नाम—वीसलदे रास। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) पत्रे—आठ। एक पत्र श्री नाहटा जी द्वारा जोड़ा हुआ। आकार—६३/४ इं० ×४३/४ इं०। पंक्तियाँ—बीस पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर छंद। संख्या—२४७।

प्रकार—पूर्ण, पुरानी साधारणतया ठीक। अक्षर—देव-नागरी। सुरक्षित-स्थान अभय जैन भण्डार (बीकानेर) पुष्पिका नहीं है।

आरम्भ—गवरिका नदन त्रिभुवन सार। नाद भेदइ थारा उदर भण्डार। एक दंतह सुखिक भलहलइ। मुसाको वाहण तिलक सिंदूर। कर जोडि नरपति भणइ। जाणिकि रोहणी ज्युं तप्यो सूर।

अंत—कनक काया जिसी कु कुं रोल। कनक पयोहर हेम क चोल। केलि गरभति पू मसी। चाइल घण मोडइ नाक। कटि मोडै चालै गोरडी। डयिक विरह वेदना न मिलइ कोइ। ज्युं राजा राणी मिल्या। त्युं नारद कहै मिलिज्यो सऊकोइ।

रचना तिथि—संवत् सहसतिहरै जाणि। नाल्ह कवी सरस सरसीय वाणि। गुण गुथ्या चऊ थ्योख का। सुकल पख्य पचमी श्रावण मास। रोहिणी नक्षत्र सोहामणउ। सुदिन गिण ओटीयो रासि।

[१७] वीसलदेव चहु आण रास। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) अक्षर—देवनागरी। छंद-संख्या—३१०। सुरक्षित स्थान—खरतरगच्छ भण्डार (कोटा)। पुष्पिका नहीं है।

आरम्भ—गवरिका नंदन त्रिभुवन सार। नाद भेदइ थारइ उदर भण्डार। एक दंत सुखि झलहलइ। मूषक वाहण तिलक सिंदूर। कर जोडी नरपति भणइ। जाणवि रोहिणी जिउ तप्पउ सूर।

अंत—कनक कांति सउं कुंकुम रोल। कठिन पयोहर हेम कचोल। केलि गरभ जिसी फूंमखो। चाइल जिम घण मोडइ जी नाक। कडिम मोडि चाइल गोरडी। डयकइ विरह की वेदना नहिं लखइ कोइ। राणी हो राजा जिमि मिल्या। तिम नवद कहै मिलज्यौ सहु कोइ।

रचना-तिथि—संवत् तेरसतीतरै जाणि। मल्ह कविसर सरसीय वाँणि। गुणगुथ्या चहुआण का। सुक पंचमी नइ श्रावण मास। हस्त नक्षत्र रविवार सुं शुभ दि जोसी से जोडियउ रास।

[१८] नाम—वीसलदे रास। कागज—देशी का बना हुआ। पत्रे—दो दोनों तरफ लिखे हुए। आकार—१० इं०×४३/४ इं०। पंक्तियाँ—सत्तरह प्रत्येक पृष्ठ पर। छन्द-संख्या—३८ छन्द पूरे तथा ३९ वें का प्रारम्भ। प्रकार—पुराना, प्रायः ठीक, अपूर्ण। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार (बीकानेर)। पुष्पिका नहीं है।

[गुप्त: पं० समूह नं० २, संकेत "मू०"]

आरम्भ—गउरि का नन्दन त्रिभुवन सार। नाद भेदइ थारइ उदर भण्डार। एक दन्तो मुषिक अलहलइ। मूंसाको वाहण तिलक सिंदूर। कर जोडी नरपति भणों। ज्याण करि रोहणी जिम तप्यो सूर।

अन्त—हरिण मरणि समप्यो जगंनाथ। आइ पडतली त्रिभुवन नाथ। सष चक्र गदाधरो। मांसि हे हिरण की मनइ विचारि। हेतुं विवरण पाइउवे। स्वामी पूरब देस को ज्यनम निवार। ३८। पूरब देस को कव कुंजोक। पान कू......।

[१९] नाम—वीसल देव रासो। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) पत्रे—ग्यारह दोनों तरफ लिखे हुए। आकार—१०३/४ इं०×४३/४ इं०। पंक्तियां—सत्रह प्रत्येक पृष्ठ पर। छन्द संख्या—४० तथा एक अपूर्ण। प्रकार—पुराना। अपूर्ण। साधारणतया ठीक। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार (बीकानेर) पुष्पिका नहीं है।

[गुप्त: पं० समूह नं० ८, संकेत 'मा']

आरम्भ—गवरिका नन्दन त्रिभुवन सार। नाद भेदइ थारइ उदरि भंडार। एक दंतउ मुषिक अलहलइ। मूसका वाहण तिलक सिन्दूर। कर जोडी नरपति भणइ। याण करि रोहिणी ज्युं तपइ सूर ॥१॥

अंत—आपणो सरसी भूवणी । धविरंग धीघा धोळी-
पइ दीधि । नहीं सहेली धमावड दीपइ । ग्हाकउ मइक्ष
संपूरइ भांजइछइ कोकि ॥४०॥ गुणइइ दसइ........

[गुप्त : पं० तागृह नं० ५, संकेत "पा०"]

[२०] नाम—*बीसल दे रास।* कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) पत्र-चार (दोनों तरफ लिखे हुए) आकार १०इं० × ४इं० । पंक्तियां-२० से २८ प्रत्येक पृष्ठ पर । छंद संख्या-२४७ छन्द । प्रकार-पुराना, पूर्ण, साधारणतया ठीक । अक्षर—देवनागरी । (बहुत छोटे छोटे लिखे हुए) सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार (बीकानेर)। इति बीसलदे रासः । समाप्तः ।

आरम्भ—गवरिका नन्दन त्रिभुवन सार । माइ भेटइ धारा उदर भण्डार । एक दंतउ मुषिक मयडयइ । सुपइ माहव तिलक सिन्दूर । कर जोडो नरपति भणइ । जाणिकि रोहिणी ज्युं सम्यो सूर ।

अंत—धन्य हो पंडिया धन्य हो राइ । धन्य हो जोगी दासणी । वेग मेळावउ धण कउ नाह । धन्य दिहाडो आज कउ । रांणी राजमती मिलयउ बीसल राउ । ॥४५॥ कनक पयोहर हेम कचोल । केलि गरभेसी कुं थलो । थाइल ज्यूं धण मोडइ नाक । कडि मोडइ चाले गोरडी । हणि की विरह वेदना नवि कहइ कोइ । ज्यू राजा रांणी मिलया । त्युं नाल्ह कहे मिलज्यो सउ कोइ ॥

रचना तिथि—संवत् सहस तिहुत्तरइ जाणि । नाल्ह कवि सरसीय वाणि । गुण गुंथ्या भति का । शुक्ल पञ्चमी श्रावण मास । रोहिणी नक्षत्र सोहामणउ । सुदिन गिण जोडीओ रास ।

[२१] नाम—*विसलदे रास।* कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) पत्रे—अट्ठारह (दोनों तरफ लिखे हुए) । आकार—१०½ इं० × ४½ इं० । पंक्तियाँ—तेरह पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर । छंद संख्या—२५० छन्द तथा दो पंक्तियाँ अतिरिक्त । प्रकार—पुराना । अपूर्ण ।

अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार (बीकानेर)

पुष्पिका......नहीं है।

आरम्भ—श्री वीतरागायनम । गवरि का नन्दन त्रिभुवन सार। नाद भेद थारे उदर भण्डार। एक दंतो सवदले। सुरा की याइण तिलक सिन्दूर। कर जोडी नरपति भणौं। जाणि केरि रोहिणी ज्यू तप्यौ सूर।

अन्त—पोर परसा घरि आवियोनाह। हीयडे हांथ थक भरि याह। सखी सवली करे सुवधी। प्रति रति भरि राजा छीयउ डीग। सही सहेली चमकी हुवौ। छा की गैरव को कसउ चोको भोनो छै पीक ॥ २४०॥ हठ हठ हसे थालिगन देइ। पलिंग बैसे नै पान न लेइ। कुभी देइ उलमवा। तोडे छै आंगुली मोडे छै बाह। पुरुष भरोसो ना करू। बरस बारह......

[२२] यह प्रति बीकानेर स्थित चतुर्भुज जी के ग्रन्थ-संग्रह में (बस्ता न० ५) है। इसमें १७ पन्ने हैं। ग्रन्थ का रचना काल "सहस तिहुतरे दिया" हुआ है। यह उन्नीसवीं शताब्दी की लिखी हुई है।

[२३] यह प्रति बीकानेर के दान सागर भण्डार में (बस्ता नं०१५) है। इसमें पत्र संख्या २२ और छन्द संख्या २८० है। प्रत्येक पृष्ठ में १३ पंक्ति और प्रति पंक्ति में ३५ से ४० अक्षर हैं। यह प्रति भी १६ वीं शताब्दी की लिखी हुई है। इसमें भी रचना काल 'सहस तिहुत्तरे' है।

[२४] यह प्रति जैसलमेर के जैन भद्र सूरि ज्ञान भण्डार में है। इसकी पत्र संख्या ११ तथा पद्य संख्या २०२ है। रचना काल सूचक पद्य नहीं है। प्रति के प्रथम पत्र का लेखन भिन्न है, अवशेष पत्र १७ वीं के लिखित प्रतीत होते हैं—

[२५] यह प्रति जैसलमेर के बड़ा भण्डार—न० २१९ में है। इसमें २८३ पद्य हैं। रचना काल 'सहस तिहुत्तरे' दिया गया है।

[८६] यह प्रति बीकानेर के बड़े उपासरे के महरचन्द भण्डार में है। इसका अन्तिम पन्ना (नं० १३) पहले प्राप्त हुआ था लेकिन श्री नाहटा जी के कथनानुसार इसके अन्य १२ पन्ने कलकत्ते के राय बद्री दास म्यूज़ियम में प्राप्त हो गये। इस प्रकार यह प्रति भी पूर्ण हो गई। इसमें छंदसंख्या ३१० है। प्रत्येक पृष्ठ पर १८ पंक्तियाँ तथा प्रति पंक्ति में ६० से ६६ तक अक्षर हैं। अन्त में "ग्रन्था ग्रन्थ ३००" लिखा है। इसमें रचना सूचक पद्य 'कोटा' के भण्डार की प्रति के समान नहीं है।

[८७] नाम *विसलदे चौहाण को रास*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) दोनों तरफ लिखे हुए। पत्र……११। आकार १० इं०×४ इं० पंक्तियाँ……तेरह, प्रत्येक पृष्ठ पर। छंद संख्या—२४२; प्रकार—नया। पूर्ण साधारणतया ठीक। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—एसियाटिक सोसाइटी (बंगाल) कलकत्ता।

पुष्पिका—इतिश्री विसलदे चौहाण को रास समाप्त संवत् १७०२ का साल श्री मालपुरा मध्ये लिख्यते कृष्ण पक्ष अदीतवार साध्वी कनकांनी लिपायो। लिखतं जोधपुर मध्ये साधु याछा रामेश विक्रम संवत् १९७२ फागुन सुदि ९ शनिवासरे। ईस्वी सन् १९१४ के फुबरी तारीख २० जैनाचार्य श्री धर्म विजय जी की भेजी हुई पुस्तक से लिखी।

आदि—गउरि का नन्द त्रिभुवन सार। नाद भेदइ धारइ उवर भण्डार। एक दंतउ मुषिक असवारइ। मुसकउ वाहण तिलक सिन्दूर। कर जोडी नरपति भणइ। आखि करि रोहिणी जिउं तपइ सूर।

अन्त—कनक काया जिसी कूं कूं रोल। कठिन पयोहर हेम क चोल। केलि गरभ रूप की आगली। बाहुल ज्युं घण मोडे नाल। कडि मोडे चाले गोरडी। बणि की विरह वेदना न छहे कोइ। ज्युं राजा राणी मिल्या। त्युं नाल्ह कहे मिलिज्यो सहु कोइ।

रचना तिथि—संवत् सहस तिहुत्तरै जाणि । नाएह कवीसर सरसीय वांणी। गुण गूथ्या चौहाण का। सुकल पक्ष पञ्चमी श्रावण मास । रोहिणी नक्षत्र सोहामणौ। सुदिन सिधो जोडीयो रास।

द्र:—यह प्रति बारह सं० की प्रति की नकल जान पड़ती है।

उपर्युक्त प्रतियों में से १६ प्रतियों के आधार पर डा० माता प्रसाद जी गुप्त ने इसका एक सुन्दर सम्पादित संस्करण हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय, प्रयाग से सन् १९५३ में प्रकाशित करवाया है। इस संस्करण में उन्होंने प्रतियों को उनके पाठसाम्य के आधार पर पाँच समूहों में रखा है। प्रत्येक समूह का नामकरण उन्होंने उस समूह में रखे गये प्रथम ग्रन्थ के संकेताक्षर से किया है। इन पांचों समूहों की प्रतियाँ डा० गुप्त के मतानुसार कम से कम पांच पाठ प्रस्तुत करती हैं जिनमें मिलाकर..... लगभग पौने पाँच सौ छन्द आते हैं। इन छन्दों में से केवल २७, २८ प्रतिशत छन्द उनके मतानुसार प्रामाणिक माने जा सकते हैं। प्रत्येक समूह के छन्दों की संख्या की तुलना अन्य समूह के छन्दों की संख्या से करते हुए डा० गुप्त ने कुल १२८ छन्दों को ही प्रामाणिक माना है। इनमें से भी ११८ छन्द तो तीन समूहों में पाये जाते हैं तथा दस ऐसे हैं जो तीन समूहों में से केवल दो दो में पाये जाते हैं।[1]

इस सम्पादित प्रति के पहले की एक और सम्पादित प्रति है जिसका उल्लेख किया जा चुका है। उस प्रति में किसी भी हस्तलिखित प्रति का तुलनात्मक अध्ययन नहीं प्रस्तुत किया गया है। केवल जयपुर में प्राप्त सं० १६६१ में लिखी गई प्रति का संपादन कर दिया गया है।—

श्री अगरचन्द जी नाहटा ने प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख करते हुए उसके दो रूपान्तरों का वर्णन किया है और बताया है कि दोनों रूपान्तरों में काफी भिन्नता पायी जाती है।[2]

प्रस्तुत सपादन कार्य डा० गुप्त के कार्य को मान्यता देते हुए भी अपने ढंग से किया गया है। डा० गुप्त ने आज तक की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में से सबसे पुरानी प्रति स० १६३३ वाली को भी आधार नहीं माना है। उन्होंने उसमें आये हुए छन्दों में से सिर्फ उन्हीं को प्रामाणिक माना है जो उनके द्वारा विभाजित समूहों में से प्राय सभी समूह की प्रतियों में प्राप्य हैं। लेकिन इस

(१) बीसलदेवरासो...सं० डा० माता प्रसाद गुप्त...पृ० ४८

(२) राजस्थानी... (त्रैमासिक पत्रिका) भाग ३, अंक—३ पृ० १८।

पाठ को मान लेने पर सकते हैं। प्रश्न यह उठ खड़ा होता है कि सं० १६३३ वाली प्रति में आये हुए छन्दों में जिनकी संख्या २४६ है, केवल १२८ को ही कैसे प्रामाणिक मान लिया जाय। चूँकि यह प्रति आज तक की प्राप्य प्रतियों में सबसे प्राचीन है, इसलिये उचित तो यही होगा कि इसके सभी छन्दों को प्रामाणिक माना जाय। इसके बाद वाली प्रतियों में जो छन्द इसके नहीं प्राप्य हैं, उनके सम्बन्ध में ऐसा समझना होगा कि परवर्ती लेखकों को ये छन्द या तो ज्ञात नहीं हुए अथवा ज्ञात होते हुए भी उन लेखकों ने उन छन्दों को छोड़ दिया हो और स्वरचित छन्दों को जोड़ दिया हो।

इसी आधार को ध्यान में रखकर सं० १६३३ की लिखी हुई प्रति को प्रामाणिक माना गया है। उसमें आये हुए सभी छन्दों को प्रामाणिक मानते हुए प्राप्य २७ प्रतियों को उनकी पुष्पिका के आधार पर चार समूहों में विभाजित किया गया है। कार्य की सुविधा के लिये इन चार समूहों का संकेताक्षर क्रमशः 'अ', 'आ', 'क' एवं 'ख' रखा गया है।

(१) 'अ' समूह—इस समूह में उन सभी प्रतियों को स्थान दिया गया है, जो १७ वीं शताब्दी की हैं। परिचय पत्र में इनकी संख्या १ से ४ तक है।

(२) 'आ' समूह—इस समूह में वे सभी प्रतियाँ रखी हैं, जो अट्ठारहवीं शताब्दी की हैं, तथा जिनकी संख्या परिचय पत्र में ५ से ११ तक है।

(३) 'क' समूह—यह समूह १९ वीं शताब्दी की लिखित प्रतियों का है। इसमें परिचय पत्र के अनुसार केवल एक प्रति सं० १४ वाली आती है।

(४) 'ख' समूह—इस समूह में परिचय पत्र की शेष संख्या १२ से २७ तक की वे सभी प्रतियाँ हैं, जिनका लेखन काल ज्ञात नहीं है।

उपर्युक्त विभाजन के अनुसार (१) 'अ' समूह में डा० गुप्त की 'प०' समूह की नं० ३ संकेताक्षर 'प०' तथा 'सं०' समूह की नं० १४ संकेताक्षर 'सं०' वाली प्रतियाँ आती हैं। (२) 'आ' समूह में डा० गुप्त की 'सं०' समूह की न० १९ संकेत 'प्र०', प० समूह की न०—६ संकेत 'की०' तथा न० ३ संकेत 'र०' वाली प्रतियाँ आती हैं। (३) 'क' समूह में डा० गुप्त के की कोई प्रति नहीं आती। (४) 'ख' समूह में डा० गुप्त के 'प०' समूह न० ६

संकेत 'प्र०' नं० ४ संकेत 'श्रा' नं० ८ संकेत 'ग्या०', नं० ५ संकेत 'चा०' तथा 'म०' समूह की न० २ संकेत 'म्' प्रतियाँ आती हैं। इस तुलनात्मक अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि उपर्युक्त चार समूहों में से तीन समूहों में डा० गुप्त के दो समूहों 'प०' अथवा सं० समूह की कोई न कोई प्रति अवश्य है। विशेष रूप से 'श्र' समूह में तो डा० गुप्त के 'पं०' तथा 'सं०' दोनों समूहों की प्रतियाँ हैं। डा० गुप्त के 'प०' समूहकी न०-३ प्रति स० १६३३ की लिखी हुई है जिसे यहाँ 'श्र०' समूह में रखा गया है; क्योंकि कथित विभाजन के अनुसार यह प्रति १७ वीं शताब्दी की है और सबसे प्राचीन प्राप्य प्रति है। डा० गुप्त ने अन्य जिन प्रतियों को इस समूह (प० समूह) में रखा है उनमें से सं० १७३७ और १७४१ वाली प्रतियों को छोड़कर जिन्हें यहाँ 'श्रा' समूह में १८ वीं शताब्दी की होने के कारण रखा गया है, मात्र किसी भी प्रति में पुष्पिका नहीं है। ऐसी प्रतियों की संख्या इस समूह में पाँच है। जिन प्रतियों में पुष्पिका नहीं है, वे किस संवत् में लिखी गई यह एक विवादात्मक प्रश्न है। अतएव उनको इस संपादन कार्य में विशेष स्थान नहीं दिया गया है। पुष्पिका के अभाव के कारण ही ये प्रतियाँ यहाँ 'ख' समूह में रखी गई हैं। डा० गुप्त के 'रा०' समूह की १६६९ वाली प्रति (नं० १२) भी कथित 'श्र' समूह में आती है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। 'सं०' समूह में डा० गुप्त ने इस प्रति के अतिरिक्त एक और प्रति को रखा है जिसकी संख्या १६ है तथा संकेताक्षर 'प्र०' है। इस प्रति को यहाँ 'श्रा०' समूह में रखा गया है क्योंकि यह संवत् १७२४ की लिखी है। इन दोनों समूहों के अतिरिक्त डा० गुप्त के तीन अन्य समूहों की प्रतियों में से 'म०' समूह की एक प्रति न २ संकेताक्षर 'म०' यहाँ 'ख' समूह में रखी गई है क्योंकि इसमें भी पुष्पिका का अभाव है। इस 'म०' समूह की एक प्रति और है जिसका पूर्ण विवरण प्राप्त न होने के कारण न तो उसका परिचय पत्र में ही उल्लेख किया है और न उसे किसी समूह स्थान ही दिया गया है। दूसरा समूह "न०" समूह है जिसकी केवल एक प्रति प्राप्य है और वह भी किसी अन्य प्राचीन प्रति की प्रतिलिपि है तथा पुष्पिका का अभाव है, साथ ही अनेक त्रुटियाँ भी हैं। अतएव इसका तथा तीसरे समूह 'श्र०' में आने वाली दो प्रतियों का भी उल्लेख इन्हीं कारणों में से किसी एक के कारण परिचय पत्र में नहीं किया गया है।

कथित समूहों तथा डा० गुप्त के समूहों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात्

---

(१) वीसलदेव रासो—सं०—माताप्रसाद गुप्त—पृ० ३—१२।

इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि 'बीसलदेव रासो' की प्रतियों के दो रूपान्तर हैं।[1] एक तो वह जो चार खण्डों में विभक्त है और दूसरा वह जिसमें खंडों का विभाजन नहीं है। इन रूपान्तरों में उपर्युक्त भिन्नता के अतिरिक्त और भी कुछ विशेष बातें द्रष्टव्य हैं।

दोनों रूपान्तरों की कुछ विशेषताएँ

खण्डों में विभाजित प्रतियाँ.—	खण्डों में अविभाजित प्रतियाँ :—
(१) कथा चार खण्डों में समाप्त होती है।	(१) केवल तीन खण्डों की कथा ही प्राप्य है।
(२) माघ, कालिदास आदि पंडितों का नाम आता है।	(२) इन नामों का अभाव है।
(३) उड़ीसा यात्रा में साथ जाने वाले सरदारों के नाम गिनाये गए हैं।	(३) इन नामों का उल्लेख नहीं है।
(४) राजा के उड़ीसा जाने का मुहूर्त रानी ज्योतिषी से एक माह बाद कर देने को कहती है।	(४) रानी ज्योतिषी से चार माह बाद का मुहूर्त राजा को देने के लिए कहती है।
(५) वर खोजने के लिए जैसलमेर आदि जाने का विस्तृत वर्णन है।	(५) यह वर्णन इस रूपान्तर की प्रतियों में विस्तार से नहीं है।
(६) इस रूपान्तर की प्रतियों में रचनाकाल-सूचक पद्य ग्रन्थ के आदि में है।	(६) इस रूपान्तर में ग्रन्थ के शेष में रचना-सूचक पद्य आया है।

ऊपर प्राप्य हस्तलिखित प्रतियों का विभाजन काल के अनुसार चार समूहों में किया गया है। प्रत्येक समूह की प्रत्येक प्रति उपर्युक्त दोनों रूपान्तरों में से किस रूपान्तर में आती है उसे निम्नरूप में स्पष्ट किया जा सकता है :—

समूह	खण्डों में अविभाजित	खण्डों में विभाजित
'अ'	संख्या १, ३, ४,	संख्या २
'आ'	,, ५, ७, ८, ९ १०, ११, १२, १३,	,, ६,

---

(१) राजस्थानी—३रा भाग, अंक ३, पृ०-१८ ।

समूह	खण्डों में अविभाजित	खण्डों में विभाजित
'क'	,, १५,	,, ×
'ख'	,, १५, १६, १७, १८, १६, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७ ।	,, ×

विभिन्न समूहों के इस विश्लेषण द्वारा यही सिद्ध होता है कि खण्डों में अविभाजित रूपान्तर वाली प्रतियों में प्राचीनतम प्रति 'अ' समूह की संख्या एक वाली प्रति है, जो सं० १६३३ की लिखी हुई है तथा खण्डों में विभाजित रूपान्तर वाली प्रतियों में भी प्राचीनतम प्रति 'अ' समूह की संख्या २ वाली प्रति है जो सं०—१६६४ की लिखी हुई है। अत: इन्हीं दो प्रतियों को दोनों रूपान्तरों की प्रतिनिधि प्रति मान कर सम्पादन का कार्य किया गया है।

प्राप्य हस्तलिखित ग्रन्थों में एक बात और विचारणीय है। ग्रन्थ में कथित घटना का सम्बन्ध जैसलमेर, अजमेर तथा मालवा से है। लेकिन इन स्थानों में से किसी भी स्थान में उपर्युक्त प्रतियाँ नहीं लिखी गईं। सम्पादन कार्य के लिए आधारित प्रथम रूपान्तर की प्रतिनिधि प्रति (१६३३) आगरा में लिखी गई है और द्वितीय रूपान्तर की प्रतिनिधि प्रति (१७६४) फूनखेड़ा में लिखी गई है। इसके अतिरिक्त १७२१ में रिणी, १७७२ में तेजासर, १७७५ में मालपुरा तथा १८२६ में बीकानेर में लिखी हुई प्रतियाँ हैं। अन्य प्रतियों में लेखन-स्थान का उल्लेख नहीं है। भविष्य में यदि कोई प्रति घटित स्थान की लिखी हुई प्राप्त हो सकी, तो विशेष महत्व की हो सकती है। घटना से सम्बन्धित स्थानीय कवि द्वारा, यदि नाल्ह कवि द्वारा कही गई घटना का वर्णन किया जाय तो निःसन्देह भाषा, ऐतिहासिक तत्व आदि में साम्य मिलेगा चाहे स्थानीय कवि द्वारा घटना का वर्णन शतियों के पश्चात् ही क्यों न हो।

ग्रन्थ की रचना तिथि

अनेक विद्वानों ने ग्रन्थ की रचना-तिथि पर अपना अपना मत विविध रूप से विवेचन करते हुए प्रकट किया है। सबसे पहले डा० श्यामसुन्दर दास ने इस विषय पर अपना मत प्रकट किया सन् १९०० की खोज रिपोर्ट में। वे कहते हैं कि "The author of the chronicle is Narapati Nalha as he gives the date of the composition of this book as Sam 1220 This is not the Vikram Era, for the 9th day of the dark half of Jaistha does not fall on Wednesday as mentioned in the book according

to the calculations of the Vikrama Era. The date of the composition of the book would therefore be in the year 1298 of the Christian era."[1]

लाला सीताराम बी० ए० ने सन् १९०० की खोज रिपोर्ट वाली प्रति पर निर्भर होकर ग्रन्थ की रचना-तिथि पर अपना विचार यों प्रकट किया कि "*Nalha is not mentioned in the modern vernacular literature of* Hindustan According to Misrabandhu Vinod Nalha was a Raja & composed his Visaldeo Rasau in 1354 V E corr sponding to A. D. The date of composition is given in the following lines

"बारह सौ बहत्तरां मँझारि, जेठ बदी नवमी बुधवारि ।
नाल्ह रसायण आरंभइ, सारदा तूठी ब्रह्म कुमारि ॥

The date is clearly 1272 and 1220 as the Misra Brothers say, and their calculation showing thus that is inaccurate, therefore based on wrong date. 1272 V. E will correspond to 1216 A. D and we have reasons to believe that was a contemporary of Bisaldeo [2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि ग्रन्थ में निर्माण काल यों दिया है—

बारह सै बहोत्तरां मझारि। जेठ बदी नवमी बुधवारि ॥
नाल्ह रसायण आरंभइ। सारदा तूठि ब्रह्म कुमारि ॥

बारह सौ बहोत्तर का स्पष्ट अर्थ १२१२ है। बहोत्तर शब्द 'बरहोत्तर द्वादशोत्तर का रूपान्तर है। अत 'बारह सौ बहोत्तरा' का अर्थ द्वादशोत्तर बारह सौ अर्थात् १२१२ होगा। गणना करने पर विक्रम स० १२१२ में ज्येष्ठ बदी नवमी को बुधवार ही पड़ता है।[3]

डा० रामकुमार वर्मा ने रचना तिथि सम्बन्धी 'बारह सौ बहोत्तरा मझारि। जेठ बदी नवमी बुधवारि ॥' तथा 'संवत् सहस तिहुत्तरह जाणि नाल्ह कविसर सरसीय वाणि' दोनो पदों पर विचार करते हुए कहा है कि १००३ इतिहास के

---

† Annual Report on the Search for Hindi Mss for the year 1900, P. P 78-79.

* Selections from Hindi Literature-Book I [Vardic Poetry) PP. 38 39

३—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३४ सं० २००३ ।

अधिक समीप है। यदि रासो की एक प्रति हमें यही संवत् देती है और इतिहास वीसल देव के समय को भी लगभग यही मानता है तो हमें वसलदेव रासो की रचना १०७३ मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।'[1]

श्री सत्यजीवन वर्मा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के उपर्युक्त मत को मानते हुए कहते हैं कि नरपति नाल्ह का दिया हुआ बीसलदेव रासो का संवत् १२१२ माननीय है।[2]

मिश्र बन्धुओं ने 'बहत्तोराह' का अर्थ 'बीस' माना है। आप लोग लिखते हैं कि 'नरपति नाल्ह ने इसका समय १२२० लिखा है। पर जो तिथि उन्होंने बुधवार को ग्रन्थ निर्माण की लिखी है वह १२२० संवत् में बुधवार को नहीं पड़ती। परन्तु १२२० शाके बुधवार को पड़ती है। इससे सिद्ध होता है कि रासो १२२० साके में बना, जिसका वि० सं० १३५४ है।'[3]

श्री अगरचन्द जी नाहटा ने विभिन्न प्राप्त प्रतियों के अनुसार रासो की रचना का संवत् १०७३,१०७७, १२१२, १२७२,१२७३, १३०७, तथा १३७७ निकाला। लेकिन इन सभी संवतों में से उन्होंने सं० १२७२ को (बारह से बहत्तराँहा का अर्थ नाहटा जी ने १२७२ लिया है, १२१२ नहीं) ही ठीक माना है क्योंकि जंत्री के अनुसार इनकी तिथि नक्षत्र आदि मिल जाते हैं।'[4]

प्रसिद्ध विद्वान् डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने नाहटा जी द्वारा उपस्थित की हुई सारी तिथियों की जाँच करते हुए 'बारह सै बहत्तरां हा मझारि। जेठ बदी नवमी बुधवारि।' को ही ठीक माना है। इसके पक्ष में अपना तर्क देते हुए वे कहते हैं कि 'राजपूताने में पहले विक्रम संवत् कहीं चैत्रादि (चैत्र शु० १ से आरम्भ होने वाला) और कहीं कार्तिकादि (कार्तिक शु० १ से आरम्भ होने वाला) चलता था। जैसा कि वहीं से मिलने वाले शिला लेखों, दान पत्रों और पुस्तकों से पाया जाता है। चैत्रादि वि० सं० १२७२ ज्येष्ठ व० ९ को शुक्रवार था और कार्तिकादि वि० सं० के अनुसार (अर्थात् चैत्रादि १२७३) उक्त तिथि का बुधवार आता है। ऐसी दशा में हस्तलिखित प्रतियों

१—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० २०८–२१०।
२—बीसलदेवरास भूमिका पृ० ५–६।
३—मिश्रबन्धु विनोद—भाग १, पृ० २०६।
४—राजस्थानी—त्रैमासिक पत्रिका, भाग ३, पृ० २१।

के आधार पर कार्तिकादि वि० सं० १२०२ (चैत्रादि १२०३) ही को इसका रचनाकाल मानना पड़ता है ।[1]

डा० उदयनारायण तिवारी को भी यही तिथि मान्य है ।[2]

डा० माताप्रसाद गुप्त कहते हैं कि प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों के चार पाठों के आधार पर कम से कम छः तिथियाँ निकलती ही हैं :—

१—सं० १०३७-समूह 'चं०'	२—सं० १००३-समूह 'न०' ।
३—,, १३७७-समूह 'च०'	४—सं० १३०७-समूह 'ग०' ।
५—,, १२०२-समूह 'स०'	६—सं० १२१२-समूह स० ।

चैत्रादि और कार्तिकादि—दो प्रकार के वर्षों के अनुसार इन छः की बारह तिथियाँ बन जाती हैं, और यदि गत और वर्तमान संवत् लिये जावें तो उपर्युक्त से कुल २४ तिथियाँ होती हैं । यदि और आगे अमान्त और पूर्णिमान्त मासों के भेदों पर न भी जाएं, तो ये चौबीस तिथियाँ क्या कम हैं ? गणना करने पर इन चौबीस में कोई न कोई ठीक निकल ही आवेगी । गणना करके महामहोपाध्याय स्वर्गीय गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने सं० १२७२ की तिथि को कार्तिकादि वर्ष में लेने पर गणना से ठीक बताया था । किंतु असंभव नहीं है कि उपर्युक्त चौबीस तिथियों की गणना करने पर दो एक और भी ठीक निकल आवें । फिर १२७२ का पाठ सं० समूह का है जो, पाठ की दृष्टि से यद्यपि अमिश्रित है, किन्तु अत्यधिक प्रक्षेपपूर्ण है । वस्तुतः यही समूह सबसे अधिक प्रक्षेपपूर्ण है । ऐसी दशा में इन पाठों के आधार पर ग्रन्थ की रचना तिथि निर्धारित करना उचित नहीं जान पड़ता ।[3]

बीसलदेव रासो के निर्माणकाल की उपर्युक्त आलोचना से निष्कर्ष यह निकलता है कि डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, श्री अगरचन्द नाहटा तथा डा० रामकुमार वर्मा को छोड़कर किसी अन्य विद्वान् ने "बारहसै बहोत्तरा" के अतिरिक्त अन्य तिथियों पर विचार नहीं किया । इस शब्द के अर्थ भी दो लगाये गये । एक अर्थ १२७२ लगाया गया तथा दूसरा अर्थ १२१२ । पहले अर्थ को मानने के पक्ष में श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, श्री अगरचन्द जी नाहटा, लाला सीताराम, तथा डा० उदयनारायण तिवारी हैं ।

१—नागरी प्रचारिणी पत्रिका—सं० १९९७, अंक २, पृ० १६३ १६५ ।
२—वीर काव्य—पृ० १९१ ।
३—बीसलदेव रास पृ० ५१-५२ ।

१२१२ के पक्ष का समर्थन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दर दास (इन्होंने इस सम्बन्ध में अपने उपर्युक्त विचार को पीछे से बदल दिया था और सं० १२१२ का समर्थन करने लगे थे)[१] तथा सत्यजीवन वर्मा करते हैं। मिश्रबन्धुओं का अपना एक पृथक् वर्ग है, जो इसका अर्थ सं० १३५४ वि० लेता है। डा० रामकुमार वर्मा ने १०७३ को इसका निर्माण-काल माना। डा० माताप्रसाद गुप्त किसी तिथि का समर्थन नहीं करते।

किसी भी कवि की कृति के निर्माण काल का निर्णय दो ही प्रकारों से हो सकता है। प्रथम और पुष्ट आधार तो है, उसकी कृति में दिया हुआ काल, जिसे अन्त:साक्ष्य कहा जाता है, द्वितीय आधार है बाह्य साक्ष्य जिसमें कवि द्वारा वर्णित विषयवस्तु यदि रचना ऐतिहासिक हुई तो तथा भाषा आदि हस्त-लिखित प्रस्तुत कृति में हमें दोनों आधार प्राप्त हैं। अन्तः साक्ष्य का आधार प्राप्य प्रतियां हैं जिसमें हमें निम्न तिथियां निर्माण काल की प्राप्त होती हैं—

'अ' समूह : १. संवत सहस सत्तिहितरह जाणि।
रोहिणी नक्षत्र सोहामणउ॥
सुकल पक्ष पचमी श्रावण मास।

२. बारह से बहोत्तरा हां मझारि।
जेठ बदी नवमी बुधवारि॥

३ सबत सहंस तिहतरह।
सुकल पक्ष पचमइ श्रावण मास।
रोहिणी नक्षत्र सोहामणो॥

'आ' समूह : ४. श्रावण शुक्ल ६ रो०

'क' समूह : ५ १०७३

'ख' समूह : ६. संवत तेर सतोतरै जाणि।
सुक पचमी नइ श्रावण मास।
हस्त नक्षत्र रविवार सु।

उपर्युक्त अन्वय का अर्थ यह निकला कि 'अ' समूह की चार प्रतियों में हमें चार तिथियाँ मिलती हैं, १– १०७७, २– १२७२, ३– १०७३ तथा

१—वीरकाव्य, पृ० १८६।

४—१३७७। 'आ' समूह की ६ प्रतियों में से चार प्रतियों में १०७७, एक में १२७२, दो में १००३, एक में १००१ जोकि भूल से लिखा प्रतीत होता है, तथा एक में संवत् नहीं मिलता है। 'क' समूह की प्रति में १००२ का उल्लेख है। 'ख' समूह की चौदह प्रतियों में से एक में १०७७, छः में १०७३ तथा दो में १३०० के अतिरिक्त अन्य प्रतियों में रचनातिथि नहीं मिलती। इन संवतों में से १०७७ तथा १०७३ को छोड़कर अन्य दो संवतों, १२७२ तथा १३७७ के दो अर्थ लगाये जाते हैं। १२७२ से १२१२ का भी अर्थ लगाया जाता है और इसी प्रकार १३७७ का अर्थ १३०७ भी विद्वान् लगाते हैं।

विक्रमी संवतों के दो प्रकार के व्यवहार[1] (चैत्रादि और कार्तिकादि) उपर्युक्त संवतों की बारह तिथियाँ देते हैं। लेकिन जिस प्रान्त की यह कथा है वहां प्रायः संवत् कार्तिक सुदी प्रतिपदा से आरम्भ होता है। एलेक्जेन्डर कनिंघम साहब कहते हैं—

"The Vikrama Sambat, or era of Vikramaditya, is reconed from the vernal equinox of the year 57 B. C. and the completion of the Kaliyuga year 3044 It is used all over northern India except in Bengal where the Saka era has been generally adopted It is used also in Telingana and Gujrat, but in the latter province the year does not begin untill seven months later than in the north or with the first of Kartik Sudi.

कनिंघम साहब के मत की पुष्टि पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा भी एक प्रकार से करते हुए कहते हैं कि राजपूताने में पहले विक्रम संवत् कहीं चैत्रादि (चैत्र सु० १ से आरम्भ होने वाला) और कहीं कार्तिकादि (कार्तिक सु० १ से आरम्भ होने वाला) चलता था, जैसा कि वहाँ से मिलने वाले शिला लेखों, दान पत्रों और पुस्तकों से पाया जाता है।[2] चूँकि पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा के मतानुसार राजपूताने में कहीं चैत्रादि और कहीं कार्तिकादि संवत् प्रारम्भ होता है इसलिए बीसलदेव रासो की प्राप्य प्रतियों *के छः संवतों के १२ संवतों का (चैत्रादि और कार्तिकादि के हिसाब से) तथा* कनिंघम साहब के मतानुसार केवल छः संवतों की तिथि, वार आदि की गणना

१—Book of Indian bras—Alexender cunningham—P. 47.

२—ना० प्र० प०, स० १९९७, अंक २, पृ० १६३।

की कसौटी पर कस कर देखना होगा कि प्राप्य संवतों में से किस संवत् की तिथि, वार आदि गणना की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

प्राप्य हस्तलिखित प्रतियों में, प्राचीनतम संवत् हमें १०७७ मिलता है सवत् १६३३ की प्राप्य प्रति में, जो सवतः की प्राप्य प्रतियों में सबसे प्राचीन है, भी यही सवत् दिया हुआ है। इस सवत् के साथ तिथि श्रावण सुदि ५ तथा नक्षत्र रोहिणी दिया हुआ है। वार इसमें नहीं है। चैत्रादि संवत् के अनुसार वि० स० १०७७ श्रावण शुक्ला ५ को बुधवार और उत्त नक्षत्र था और कार्तिकादि सवत् के अनुसार उक्त तिथि को सोमवार और हस्त नक्षत्र आता है।[1] यदि दिन के उल्लेख के अभाव के कारण किसी प्रकार इस संवत् को ग्रंथ का रचना-काल मान भी लिया जाय तो नक्षत्र की विभिन्नता इस सवत् को मानने में बाधा उपस्थित करती है। दूसरा प्राप्य संवत् १०७३ है। इस सवत् के साथ मास, पक्ष, तिथि, वार आदि कुछ नहीं है, इसलिए इस सम्बन्ध में कोई जाँच सम्भव नहीं। इसके पश्चात् विचारणीय संवत् १२७२ है जिसका दूसरा अर्थ १२१२ भी लगाया गया इस सवत् के साथ तिथि तथा वार का उल्लेख है, नक्षत्र का नहीं। प० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा का मत है कि चैत्रादि विक्रम संवत् १२७२ ज्येष्ठ वदी शुक्रवार या तथा कार्तिकादि वि० स० के अनुसार अर्थात् चैत्रादि १२७३ में उक्त तिथि को बुधवार आता है। दिन मिल जाने के कारण ओझाजी ने इसी सवत् को ग्रंथ की रचना-तिथि माना है[2]। इस सवत् के दूसरे अर्थ का अर्थात् १२१२ का समर्थन आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल तथा श्री सत्यजीवन जी वर्मा करते हैं। इन लोगों के मतानुसार गणना करने पर विक्रम स० १२१२ में ज्येष्ठ वदी ६ को ही बुधवार पड़ता है।[3] श्री सत्यजीवन जी वर्मा का तो यहाँ तक कहना है कि "सं० १२७२ में जेठ वदी नवमी बुधवार को नहीं पड़ती।[4] इस संवत् के सम्बन्ध में उपर्युक्त विद्वानों के दो विपरीत मतों ने एक विषम समस्या उपस्थित कर दी है। सं० १२१२ में भी जेठ वदी ६ को बुधवार का पड़ना और १२७२ में भी उसी तिथि को बुधवार का पड़ना, एक ऐसी समस्या है जिस पर विचार करना आवश्यक है। खेद है

---

1 Indian Ephemanis, vol III, PP 43, 45

२. ना० प्र० प०, १९९७, अंक २, पृ० १६३।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास स० २००३, पृ० ३४।

४. वीसलदेव रासो—पृ० ५ भूमिका।

कि उपर्युक्त विद्वानों में से किसी ने यह बताने का कष्ट नहीं किया कि किस आधार पर इन लोगों ने गणना की।

इण्डियन एफीमेरीज के विद्वान् लेखक ने गणना कर विभिन्न संवतों के जो दिन और नक्षत्र आदि दिये हैं उसके अनुसार चैत्रादि के १२७२ की जेठ बदी ६ को शुक्रवार "शतभिषक्" नक्षत्र पड़ता है तथा कार्तिकादि से प्रारम्भ होने वाले इस संवत् की जेठ बदी ६ को शुक्रवार हस्त नक्षत्र पड़ता है।[1] इस संवत् के पाठ का जो दूसरा अर्थ १११२ लगाया गया है उसके सम्बन्ध में भी उपर्युक्त पुस्तक में जो उल्लेख प्राप्य है उसके अनुसार चैत्रादि जेठ बदी ६ को बृहस्पतिवार और रेवती नक्षत्र तथा कार्तिकादि जेठ बदी ६ को बुधवार और हस्त नक्षत्र था[2]। इस गणना की दृष्टि से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और श्री सत्यजीवन वर्मा का यह मत कि संवत् १२१२ में जेठ बदी ६ को बुधवार पड़ता है, ठीक है। इन संवतों के अतिरिक्त एक संवत् १३७७ भी प्राप्य है। इस संवत् के साथ तिथि, वार तथा नक्षत्र सभी दिया हुआ है। अतः गणना करने में बड़ी सुविधा है। गणना करने पर चैत्रादि संवत् के अनुसार विक्रम संवत् १३७७ श्रावण सुदी ५ को रेवती नक्षत्र और शनिवार था तथा कार्तिकादि संवत् के अनुसार उक्त तिथि को अश्विनी नक्षत्र और बृहस्पतिवार आता है[3]। इस तरह यह संवत् भी अशुद्ध ठहरता है। इस संवत् का दूसरा अर्थ १३०७ भी लगाया गया है। गणना करने पर चैत्रादि संवत् १३०७ श्रावण शुक्ल ५ को बुधवार तथा "८० आद" पड़ता है एवं कार्तिकादि संवत् १३०७ "अर्थात् चैत्रादि १३०८" श्रावण शुक्ल ५ को मंगलवार और अश्विनी नक्षत्र पड़ता है[4]।

उपर्युक्त प्राप्य हस्तलिखित प्रतियों में उल्लेख किये गये विभिन्न संवतों की गणना का निष्कर्ष यह निकला कि संवत् १२७२ के पाठ का अर्थ १२१२ निकालने पर और कार्तिकादि से इस संवत् का प्रारम्भ मानने पर जेठ बदी ६ को बुधवार पड़ता है जो कि संवत् १६६१ वाली प्रति में दिये गये पाठ का लगाया गया अर्थ है; लेकिन इसे मानने में इस संवत् के साथ नक्षत्र के उल्लेख का अभाव तथा इस प्रति के चार खण्डों में विभाजित होने के कारण इसके प्रामाणिक होने में सन्देह तथा बारह सै बहोत्तरा का लगाया गया अर्थ १२१२,

---

1 Indian Ephemaries vol IV, P. P 32, 34
2 „ „ vol III, P P 312, 314.
3 „ „ vol IV, P. P. 243, 245
4. „ „ vol IV, P. P. 103, 105.

आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके कारण इस तिथि को पूर्ण रूप से केवल दिन मिल जाने के कारण प्रामाणिक मानना उपयुक्त न होगा।

अन्त में कहना पड़ेगा कि प्राप्य संवतों के आधार पर बीसलदेव रासो की रचना तिथि का निर्णय करना शंकाओं से निर्मूल नहीं हो सकता।

प्राप्य प्रतियों में प्रति नं० २ (१६६९) तथा ६ (१७२४) ऐसी हैं जिनमें रचना तिथि प्रारम्भ में तथा अन्य प्रतियों में अन्त में दी गई है। इस आधार पर श्री अगरचन्द जी नाहटा ने यह तर्क उपस्थित किया है कि "ग्रन्थ के आरंभ में रचना काल का निर्देश करना मुसलमान ग्रन्थकारों की शैली है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में रचना-काल जहाँ दिया है वहाँ सदा ग्रन्थ के अन्त में ही दिया है प्रारम्भ में देने की पद्धति मुसलमानों की देखादेखी सोलहवीं शताब्दी के आस पास चली जान पड़ती है[१]।" लेकिन इस आधार पर यह कहना कि बीसलदेव रासो का रचयिता १६ वीं शताब्दी के लगभग का था, तर्करहित जान पड़ता है। रचना का समय ग्रन्थ के प्रारम्भ अथवा अन्त में देना रचयिता की रुचि का प्रश्न है। प्राचीन ग्रन्थों में जहाँ अनेक उदाहरण रचना तिथि को अन्त में देने के मिलते हैं वहीं कई अब ऐसे भी मिलते हैं जहाँ रचना तिथि आरम्भ में दी गई है। "जैन कवि" मान रचित "राजविलास" नामक ग्रन्थ में उसकी रचना का समय आरम्भ में ही स्तुतियों के बाद दिया गया है[२]।" ऐसे और भी अनेक उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं।

भाषा का दृष्टिकोण

ग्रन्थों के रचना-काल पर भाषा की दृष्टि से भी विचार किया जाता है। श्री अगरचन्द जी नाहटा ने इस दृष्टिकोण से विचार करते हुए लिखा है कि "बीसलदेव रासो" की भाषा सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी की राजस्थानी भाषा है। जिन विद्वानों ने ग्यारहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक की राजस्थानी भाषा का अध्ययन किया है, उनका यह मत हुए बिना नहीं रह सकता। अब में प्राचीन भाषा का अंश बहुत कम—नहीं के बराबर है।[३] और इस प्रसंग में पाद टिप्पणी देते हुए वे लिखते हैं कि "सोलहवीं शताब्दी में नरपति नाम का एक कवि हुआ भी है जिसका उल्लेख "जैन गुर्जर कवियो" भाग १ में है[४]।

---

१. राजस्थानी—भाग ३, अंक ३, पृ० १६ (पाद टिप्पणी)
२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका—सं० १९६७, पृ० १७१
३. राजस्थानी—भाग ३, अंक ३, पृ० २१
४. " " " " (पाद टिप्पणी)

इन्हीं आधारों पर वे शायद कहना चाहते हैं कि यह रचना १६ वीं शताब्दी की है और उसका रचयिता भी १६ वीं शताब्दी का है।

लेकिन जिन प्रतियों की भाषा के आधार पर श्री मोटाजी ने यह परिणाम निकाला है उन प्रतियों में ग्रंथ की अन्तिम स्थितियों तक की भाषा का मिश्रण हुआ है। फिर उनका यह कहना कि ग्रन्थ में प्राचीन भाषा का अंश बहुत कम नहीं के बराबर है" स्वयं यह सिद्ध करता है कि ग्रन्थ की भाषा में प्राचीन के कुछ उदाहरण मात्र हैं। उत्तरोत्तर उसमें अनेक प्रकार की बोलियों का मिश्रण शताब्दियों के व्यतीत होने के साथ-साथ होता गया। हमें सत्रहवीं शताब्दी की प्राचीनतम प्रति प्राप्त है। यदि ग्रन्थ का रचना-काल श्री नाथो रचनातिथि के अनुसार ११ वीं या १२ वीं शती मान लिया जाय तब भी प्राप्त प्रतियाँ तीन या चार सौ वर्षों के पश्चात् की रचित हैं। अतः तीन या चार सौ वर्षों के पश्चात् उस काल की भाषा का जिस काल में यह ग्रन्थ मूल रूप से रचित हुआ था, प्राप्त होना असम्भव है।

प्रसिद्ध विद्वान् पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी की भाषा के कुछ उदाहरणों को देते हुए कहा है कि "भाषा का प्रयोग कवि की रुचि पर निर्भर है। जैना के धर्मग्रन्थ (सूत्र) प्राकृत (अर्ध मागधी) भाषा में होने के कारण जैन लेखक अपने काव्य कार्यों में प्राकृत शब्दों की भरमार करते रहे हैं, जिससे उनकी भाषा दुरूह हो गयी है। चारण, भाट आदि प्राकृत से अधिक परिचित न होने के कारण अपनी रचनाएँ प्रचलित भाषा में करते थे, जिससे इन दोनों प्रकार के लेखकों की पुस्तकों की भाषा में अन्तर होना स्वाभाविक ही है। भाषा की कसौटी सदियाँ नहीं हैं। एक ही समय में कोई सरल भाषा में अपनी रचना करता है तो कोई कठिन भाषा का प्रयोग करता है।"[1]

डा० उदयनारायण तिवारी भी प० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की बातों को पुष्ट करते हुए लिखते हैं कि "भाषा के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह हो सकता है कि क्या इसकी भाषा उस समय की साहित्यिक भाषा है या सर्व-साधारण के बोलचाल की भाषा? अथवा सम्भव है कि यह इन दोनों में से एक भी न हो। इस सम्बन्ध में इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जैन लेखक तथा कवि प्राकृत (अर्द्ध मागधी प्राकृत तथा अपभ्रंश) का ही प्रयोग

१. ना० प्र० प०—सं० १९९७, पृ० १०१।

अपनी कविताओं में करते थे : किन्तु साधारण चारण और कवि प्राकृत से अपरिचित होने के कारण अपनी प्रचलित भाषा में ही रचना करते थे। नरपति नाल्ह न तो भाषा का पण्डित था और न तो कोई सुकवि। अतएव उसके लिए अपनी मातृभाषा राजस्थानी में कविता करना सर्वथा स्वाभाविक था।"[1]

कारकों के वियोगा तथा संयोगा अवस्थाओं के रूप, क्रियाओं के सहायक क्रिया से बने हुए तथा संस्कृत की ही भाँति मूल क्रिया में प्रत्यय जोड़ कर बने हुए रूप, राजस्थानी उच्चारण के अनुसार 'न' के स्थान पर "ण" का प्रयोग तथा संज्ञा शब्दों के अन्त में "दा","दी" और "दे" आदि के प्रयोगों के उदाहरणों को दिखाकर डा० उदयनारायण जी तिवारी ने यह सिद्ध किया है कि इसकी भाषा १२००—१३०० वि० संवत् की है।[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह मत है कि यद्यपि गाने की चीज़ होने के कारण मूल रासो की भाषा में समयानुसार बहुत कुछ फेर-फार होता रहा है किन्तु लिखित रूप में रक्षित होने के कारण इसका पुराना ढाँचा बहुत कुछ बचा हुआ है। अपने इस कथन की पुष्टि करने के लिये वे रासो में प्रयुक्त कुछ शब्दों की ओर संकेत करते हैं, जैसे 'चितह" = चित्त में, "रणि" = रण में, "ईणी विधि" = इस प्रकार, "ईसउ" = ऐसा, "नेयर" = नगर, "पसाउ" = प्रसाद, "पयोहर" = पयोधर, इत्यादि।[3]

विविध विद्वानों के भाषा-सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि ग्रन्थ की भाषा प्राचीन है और वह सं० ग्यारहवीं तथा बारहवीं के लगभग की हो सकती है। सोलहवीं शताब्दी की तो कदापि नहीं जैसा कि श्री नाहटा जी ने कहा है; क्योंकि पृथ्वीराज रासो तथा बीसलदेव रासो की भाषा के तुलनात्मक अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि बीसलदेव रासो की भाषा पृथ्वीराज रासो की भाषा से पुरानी है।

उपर्युक्त भाषा सम्बन्धी विविध विद्वानों के प्रकाशित मतों से यह निष्कर्ष निकलता है कि रासो की भाषा ग्यारहवीं तथा बारहवीं शती के लगभग की हो सकती है। अब प्रश्न यह उठता है कि ग्यारहवीं और बारहवीं शती में भारतवर्ष की भाषा कौन सी थी। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या महोदय ने अलबेरूनी

---

१. वीरकाव्य—पृ० २००।

२. वीरकाव्य—पृ० २००—२०३।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४४।

के भारत वर्णन का उल्लेख करते हुए अपनी पुस्तक "भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी" में लिखा है कि लगभग १०२५ ई० में भारतीय आर्य भाषा दो वर्गों में विभाजित थी, एक तो उपेक्षित बाह्य भाषा जिसका केवल साधारण जन में प्रचार था, और दूसरी शिष्ट, सुशिक्षित उच्च वर्ग में प्रचलित साहित्यिक भाषा, जिसे बहुत से लोग अध्ययन कर प्राप्त करते थे तथा जो व्याकरणात्मक विभक्ति, योग, व्युत्पत्ति, तथा व्याकरण के नियमों एवं अलंकार, रस शास्त्र की बारीकियों से बद्ध थी। इन दो वर्गों के बावजूद भी वह भारतीय भाषा को एक ही गिनता है। सुसंस्कृत ब्राह्मण वर्ग संस्कृत की परम्परा को ही चलती रखता और उसके संरक्षक क्षत्रिय एवं अन्य नृपतिगण उसे आश्रय भी देते रहते...यद्यपि वे स्वयं तथा उनसे नीचे वर्ग की प्रजा अपभ्रंश तथा देशी भाषाओं में ही अपना मनोरंजन करते थे।[1]

अलबेरुनी की उपर्युक्त उक्ति यह सिद्ध करती है कि ग्यारहवीं शती में भारतवर्ष में संस्कृत तथा अपभ्रंश दो प्रकार की भाषाएँ प्रचलित थीं। कालान्तर में अपभ्रंश से ही अन्य भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ। संस्कृत की तरह अपभ्रंश का केवल एक ही भेद नहीं था। विभिन्न प्रान्तों में बोली जाने वाली अपभ्रंश भाषा का प्राकृत चन्द्रिका में सत्ताईस भेद गिनाया गया है :—

> वाचडो लाटवैदर्भावुपनागरनागरौ।
> बार्बरावन्त्य पांचाल टाक्र मालव कैकयाः॥
> गौडौद्रहैव पाश्चात्य पाण्ड्य कौन्तल सैंहलाः।
> कालिंग्य प्राच्य कर्णाट कांच्य द्राविड़ गौर्जराः॥
> आभीरो मध्य देशीयः सूक्ष्म भेद व्यवस्थिताः।
> सप्त विंशत्यपभ्रंशाः वेतालादिप्रभेदतः॥

इन्हीं सत्ताईस प्रकारों के अपभ्रंशों में से एक अपभ्रंश जिसका नाम डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के मतानुसार सौराष्ट्रीय अपभ्रंश है, राजस्थान की ग्यारहवीं शती की भाषा थी।

अपभ्रंश के उदाहरण हमें हेमचन्द्र आचार्य द्वारा रचित अपभ्रंश के व्याकरण तथा मेरुतुङ्गाचार्य कृत "प्रबन्ध चिन्तामणि" में अनेक मिलते हैं। नीचे इन दोनों ग्रंथों के दो-दो पद उदाहरण-स्वरूप इसलिए प्रस्तुत किये जा रहे हैं कि इनकी भाषा की तुलना बीसलदेव रासो की भाषा से की जा सके।

---

१. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृ० १०६–१०७।

पुत्ते जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण ।
जा बप्पी की भुंहड़ी चंपिज्जइ अवरेण ।।

"अपभ्रंश व्याकरण, हेमचन्द्र आचार्य"

जेवड्डु अंतरु रावण रामहं तेवड्डु अंतरु पट्टणगामहं ।

"वही"

जा मति पच्छइ संपज्जइ सामति पहिली होइ ।
मुंज भणइ मुणालवइ विघन न वेढइ कोइ ।

"प्रबन्ध चिन्तामणि"

जइ यह रावणु जाइयउ दहमुह इक्कु सरीरु ।
जणणि वियंभी चिंतवइ कवणु पियावउं खीरु ।।

"वही"

उपर्युक्त उदाहरणों में :	बीसलदेव रास में :
संज्ञा	संज्ञा
पुत्तें, बप्पी, पट्टण	भूअड़ा, सेजड़ी, मोजड़ी,
गामहं, दह, मुँह, इक्कु	आटणि, नयण, बहुरणि,
सरीरु, जणणि, खीरु	पतडउ, प्रीतणउ, सुपिकउ,
भुंहडी आदि ।	सनरु, आदि ।
क्रिया	क्रिया
भणइ, वेढइ, चिंतवइ,	भणइ, गियाइ, जहइ,
पियावउं आदि ।	बोलावइ, आदि ।

संज्ञा और क्रिया के रूप जैसे "अपभ्रंश व्याकरण" और प्रबन्ध-चिन्तामणि में हैं वैसे ही बीसलदेव रासो में भी हैं। हेमचन्द्र आचार्य के व्याकरण का रचना-काल वि० संवत १२०० के लगभग और प्रबन्ध चिन्तामणि का संवत् १३६१ है, लेकिन हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण में उद्धृत की हुई पंक्तियाँ उदाहरण-स्वरूप आई हैं। अतः निश्चय ही ये पंक्तियाँ ग्रन्थ की रचना के पहले की हैं। इसी प्रकार "प्रबन्ध चिन्तामणि" की भाषा के लिए भी कहा जा सकता है कि जिस अपभ्रंश के व्याकरण का उल्लेख इसमें हुआ है वह इस ग्रंथ की रचना के बहुत पहले जन-साधारण की भाषा रही होगी और उसके पश्चात् ही "प्रबन्ध चिन्ता-मणि" के रचयिता ने उसी भाषा के संस्कृत रूप को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया

होगा। अस्तु, इसकी भाषा भी संवत् १२६१ से पहले की है, इसमें सन्देह नहीं। बीसलदेव रासो की भाषा जैसा कि ऊपर उदाहरणों द्वारा दरसाया गया है "अपभ्रंश व्याकरण" और "प्रबन्ध चिन्तामणि" में उद्धृत उदाहरणों की भाषा से बहुत अंशों में मिलती जुलती है। भाषा के उपर्युक्त आधार पर निर्भर होकर पूरा कहा जा सकता है कि बीसलदेव की रचना ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १२ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई होगी। लेकिन भाषा के आधार पर उपर्युक्त निर्णय करने में डा० उदयनारायण जी तिवारी द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि चूँकि नाल्ह न तो भाषा का पण्डित था और न कोई सुकवि, अतएव उसने अपनी मातृ भाषा राजस्थानी में बीसलदेव रासो की रचना की, बाधा उपस्थित करता है, यद्यपि डा० तिवारी का यहाँ "राजस्थानी" कहना अस्पष्ट है; क्योंकि इसके द्वारा उनका संकेत किस ओर है, इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। यदि डा० तिवारी का उद्देश्य 'राजस्थानी" से शौरसेनी अपभ्रंश से हो, तब तो उपर्युक्त निकाले गये निष्कर्ष से उनका मतव्य सिद्ध होता है, और यदि उनका अर्थ राजस्थानी से पूर्वी और पश्चिमी राजस्थान की बोलियों से है तब यह विचार करना होगा कि ये बोलियाँ कब से राजस्थान में प्रचलित हुईं। इन बोलियों के सम्बन्ध में डा० सुनीतिकुमार जी चाटुर्ज्या का कहना है कि पुरानी पश्चिमी राजस्थानी साहित्य 'अर्थात् पुरानी मारवाड़ी, गुजराती साहित्य' का इतिहास ई० चौदहवीं सदी के द्वितीयार्द्ध से शुरू हुआ, मारवाड़ और गुजरात में प्रचलित मौखिक अपभ्रंश से, 'जो शौरसैनी से निकट सम्बद्ध होती हुई भी उसे स्वतन्त्र अपभ्रंश थी ऐसा अनुमित होता है—इसे हम "सौराष्ट्र अपभ्रंश" कह सकते हैं। पुरानी पश्चिमी राजस्थानी का उद्भव, तेस्सीतोरी के मतानुसार, ईस्वी तेरहवीं शती में हुआ था। गुजरात और मारवाड़ के जैन आचार्य और पण्डितों के द्वारा सौराष्ट्र अपभ्रंश से उद्भूत पुरानी राजस्थानी में साहित्य सर्जना होने लगी, पर साथ ही साथ शौरसेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषा में पूर्ववत् काव्यादि साहित्यिक रचना की नीति अव्याहत रही। फिर, यह शौरसेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषा, पूर्व से बदलती गयी, इसका एक नवीन या *अर्वाचीन रूप, पिंगल नाम से, राजस्थान और मालव के कवियों में पूर्णतया गृहीत* हुई, पिंगल का एक साहित्य बन गया। फिर राजपुताने के भाट और चारणों में पिंगल की अनुकारी एक नई कवि भाषा मारवाड़ी के आधार पर बनाई, जो "डींगल" या 'डिंगल' नाम से अब परिचित है। डिंगल काव्य ईस्वी पन्द्रहवीं शती से उपलब्ध है। ज्यादातर इसकी शब्दावली साहित्यिक थी,

अर्थात् प्रचलित मौखिक मारवाड़ी की शब्दावली से पृथक् होती थी।[1]

प्रसिद्ध विद्वान् तेस्सीतोरी और डा० चाटुर्ज्या का उपर्युक्त मत यह सिद्ध करता है कि मारवाड़ और गुजरात में प्रचलित मौखिक अपभ्रंश से राजस्थानी का उद्भव तेरहवीं शती में हुआ था। अर्थात् इसके पहले वहाँ की बोलचाल की भाषा अपभ्रंश थी। तथा अपभ्रंश के बाद "पिंगल" और अब डिंगल का स्थान आता है। आज के प्राप्त इस ग्रंथ की प्रतियों में निस्सन्देह डिंगल और पिंगल भाषा की बहुलता है, क्योंकि १९ वीं शती के पश्चात् की ही ये सभी प्रतियाँ हैं लेकिन इन प्रतियों में अपभ्रंश संज्ञाओं और क्रियाओं का प्रयोग तो स्पष्ट सिद्ध करता है कि इस काव्य की रचना अति प्राचीन अर्थात् १२ वीं शती की थी और स्मरण के आधार पर लिखित होने के कारण केवल थोड़े बहुत शब्दों और क्रियाओं का ही प्रयोग लेखबद्ध करते समय किया जा सका। तथा इस कथन में भी अत्युक्ति न होगी कि इस ग्रन्थ की रचना आजकल की राजस्थानी में नहीं हुई थी, जैसा कि डा० उदयनारायण जी तिवारी का विचार है, यदि उन्होंने सचमुच राजस्थानी शब्द का प्रयोग आज की राजस्थानी के लिए किया हो।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से रचना-तिथि पर विचार करते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने सं० १०७३ को इतिहास के निकट माना है और अपने मत की पुष्टि में इतिहास के प्रमाण दिये हैं।[2] (लेकिन राजा भोज और बीसलदेव के समय को देते हुए भी वे यह कहना भूल गये कि किस बीसलदेव की चर्चा वे कर रहे हैं, क्योंकि इतिहास में बीसलदेव चार हो चुके हैं।)

श्री सत्यजीवन वर्मा ने सं० १२१२ को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ठीक समझते हुए कहा है कि "बीसलदेव" विग्रहराज चतुर्थ का दूसरा नाम है। बीसलदेव के शिलालेख सं० १२१० और १२२० के प्राप्त हैं। अजमेर बसने के पश्चात् केवल यही बीसलदेव हुआ है। यह अर्णोराज का पुत्र और जगदेव का छोटा भाई था। यह अपने बड़े भाई जगदेव के जीते जी उससे राज छीन कर गद्दी पर बैठा था। इसको विद्या से बड़ा प्रेम था। इसका रचा हुआ हरकेलिनाटक है। यह नाटक वि० सं० १२१० (सन् ११५३) की माघ शुक्ला

---

१. राजस्थानी भाषा...डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या...पृ० ६५।

२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० २६८-१०।

पञ्चमी को समाप्त हुआ था। यह शक संवत् में खुदाई करने पर प्राप्त हुआ है। इसी स्थान में बीसलदेव द्वारा स्थापित पाठशाला थी। दिल्ली के प्रसिद्ध फीरोज शाह की लाट पर वि० सं० १२१० वैशाख शुक्ला १५ का दूसरा एक लेख भी है। इत्यादि।[1]

श्री सत्यजीवन जी वर्मा ने १६६१ की लिखी हुई प्रति के आधार पर ही अपना यह मत प्रकट किया है। उस प्रति में "बारह सै बहोत्तराहाँ मझारि" का ही उल्लेख है। जब यह प्रति श्री वर्मा जी द्वारा सम्पादित हुई थी तब तक यही प्राचीनतम प्रति मानी जाती थी। अतः श्री वर्माजी के लिये यह स्वाभाविक था कि वे इसमें दिये हुए रचना काल को ही ठीक मानें और उसकी पुष्टि में प्रमाण दें। लेकिन उनके लिए भी अच्छा यह होता कि व अन्य प्रतियों की तिथियों पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार कर लेते और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अपना मूल्यवान विचार उपस्थित करते हुए मान्य तिथि की गणना भी कर लेते।

डा० उदयनारायण जी तिवारी ने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से रचना तिथि पर विचार करते हुए कहा है कि यदि बीसलदेव को विग्रहराज चतुर्थ मान लिया जाय तो राजमती से उसके विवाह की कथा इतिहास के विरुद्ध ठहरती है। राजमती को बीसलदेव रासो में भोज की पुत्री कहा गया है और भोज का समय लगभग सं० १११२ के आस पास था। बीसलदेव चतुर्थ का समय सं० १२०७ से १२२० तक का माना गया है। इस प्रकार सौ वर्ष पूर्व के किसी व्यक्ति की पुत्री से विवाह होने की कथा बड़ी असङ्गत होगी।[2] इस आधार पर बीसलदेव रासो का नायक बीसलदेव चतुर्थ नहीं ठहरता। बीसलदेव तृतीय के पक्ष में बिजोल्याँ के शिलालेख का प्रमाण, जिसमें चौहानों की वंशावली दी गयी है तथा जिसमें विग्रहराज तृतीय की रानी का नाम राजदेवी दिया गया है, और अन्य शिलालेखों के प्रमाण, जिसके अनुसार भोज के भाई उदयादित्य का विग्रहराज तृतीय का समकालीन होना सिद्ध होता है, तथा भोज की पुत्री राजदेवी अथवा राजमती का विवाह बीसलदेव तृतीय से होने की सम्भावना सिद्ध होती है, डा० उदयनारायण जी तिवारी देते हैं।[3] विग्रहराज तृतीय का समय डा० उदयनारायण जी तिवारी ने सं० ११५० वि० माना है। और ग्रंथ

---

१. बीसलदेव रासो—पृ० ६–७।
२. वीर काव्य—पृ० १६३।
३. वीर काव्य—पृ० १६४।

की रचना तिथि सं० १२७२ वि० मानते हैं। (इस प्रकार लगभग १२५ वर्ष पश्चात् इस ग्रंथ की रचना के सम्बन्ध में उनका विचार है कि इस ग्रन्थ को छन्दोबद्ध करने वाले कवि नरपति नाल्ह को केवल इतना ही ज्ञात था कि किसी भोज की पुत्री राजमती के साथ बीसलदेव का विवाह हुआ था। उसी के आधार पर उसने अनेक कल्पनात्मक नामों तथा घटनाओं का मिश्रण करके लोकरंजनार्थ एक काव्य गाने योग्य तैयार कर लिया। यह विवाह कब हुआ था, इसका उसको ठीक-ठीक पता न था, इसलिए राजमती के पिता के नाते, भोज के जीवन-काल में ही विवाह हो जाने का उसने वर्णन कर दिया है।[1]

डा० माताप्रसाद गुप्त ने स्थूल रूप से ग्रंथ के रचना-काल के विषय में विचार करते हुए इसके ऐतिहासिक तत्वों का विवेचन किया है। बीसलदेव तृतीय या चतुर्थ अजमेर की स्थापना, भोज द्वारा मगीवा, सोरठ, टोंक आदि कई प्रान्तों को बीसलदेव को दिये जाने की बात तथा बीसलदेव के उड़ीसा यात्रा की कथा का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए डा० गुप्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विग्रहराज तृतीय की रानी का नाम राजदेवी था। उसी के सम्बन्ध में राजमती नाम से कुछ कहानियाँ समय पाकर प्रसिद्ध हो गई। फिर भोज परमार आदि से उसे सम्बन्धित कर विग्रहराज तृतीय के बहुत बाद किसी नरपति नाल्ह नामक कवि ने इस ग्रन्थ की रचना कर डाली।[2]

प० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने ग्रन्थ के ऐतिहासिक तत्वों का विशेष रूप से विश्लेषण किया है। वे कहते हैं कि "बीसलदेव रासो में कवि ने मुख्यतया दो घटनाओं का वर्णन किया है—एक तो बीसलदेव के राजाभोज की पुत्री से विवाह होने की और दूसरा उसके (बीसलदेव) उड़ीसा जाने की। जहाँ तक पहली घटना का सम्बन्ध है, बीज रूप में उसमें सत्य का अंश अवश्य है, परन्तु शेष कथा कल्पित ही प्रतीत होती है। अपने इस कथन की पुष्टि में उन्होंने कहा है कि 'बिजोल्यां के शिलालेख में दी हुई चौहानों की वंशावली में विग्रहराज तृतीय की रानी का नाम राजदेवी दिया है। बीसलदेव रासो की राजमती और यह राजदेवी नाम एक ही रानी के सूचक होने चाहिये।" चौहान राजा बीसलदेव तृतीय से परमार वंशीय राजकुमारी राजदेवी राजा भोज की पुत्री के विवाह के सम्बन्ध में अपना अनुमान प्रकट करते हुए श्री ओझा कहते

१ वीर काव्य—पृ० १६४।
२. बीसलदेव रास—पृ० ५२।

हैं कि राजा भोज के कनिष्ठ भ्राता उदयादित्य ने सम्भव है अपना पुराना वैर मिटाने के लिए अपनी भतीजी भोज की पुत्री राजदेवी अथवा राजमती का विवाह बीसलदेव तृतीय से किया हो; क्योंकि राजपूतों में आपस के वैर प्रायः पुत्री विवाहने से मिट जाते थे, जिसके अनेक उदाहरण उनके इतिहास में मिलते हैं[१]।''

इसके अतिरिक्त डा० ओझा ने शिलालेखों का प्रमाण देते हुए यह सिद्ध किया है कि विग्रहराज बीसलदेव तृतीय परमार-राजा भोज के भाई उदयादित्य का समकालीन था, जो वि० सं० १११६ के आस पास गद्दी पर बैठा था।[२] इन्हीं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बीसलदेव रासो का नायक चौहान राजा—बीसलदेव तृतीय है और इसका रचना-काल कार्तिक वि० सं० १२७२ चैत्रादि १२७३ होना चाहिए।

आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल कहते हैं कि ''दिये हुए स० के विचार से कवि अपने नायक का समसामयिक जान पड़ता है। पर वर्णित घटनाएँ, विचार करने पर बीसलदेव के बहुत पीछे की जान पड़ती हैं, जब कि उनके सम्बन्ध में कल्पना की गुंजाइश हुई होगी। यह घटनात्मक काव्य नहीं है, वर्णनात्मक है। इसमें दो ही घटनाएँ हैं—बीसलदेव का विवाह और उनका उड़ीसा जाना। इनमें से पहली बात तो कल्पना प्रसूत प्रतीत होती है। बीसलदेव से १०० वर्ष पहले ही धार के प्रसिद्ध परमार राजा भोज का देहान्त हो चुका था। अतः उनकी कन्या के साथ बीसलदेव का विवाह किसी पीछे के कवि की कल्पना ही प्रतीत होती है। उस समय मालवा में भोज नाम का कोई राजा नहीं था। बीसलदेव की एक परमार वंश की रानी थी, यह बात परम्परा से अवश्य प्रसिद्ध चली आती थी, क्योंकि इसका उल्लेख पृथ्वीराजरासो में भी है। इसी बात को लेकर पुस्तक में भोज का नाम रखा हुआ जान पड़ता है। अथवा यह हो सकता है कि धार के परमारों की उपाधि ही भोज रही हो और उस आधार पर कवि ने केवल यह उपाधि-सूचक नाम ही दिया हो, असली नाम न दिया हो। कदाचित् इन्हीं में से किसी की कन्या के साथ बीसलदेव का विवाह हुआ हो। परमार कन्या के सम्बन्ध में कई स्थानों पर जो वाक्य आये हैं, उन पर ध्यान देने से यह सिद्धान्त पुष्ट होता है कि राजा भोज का नाम कहीं पीछे से न

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका सन् १९९७—पृ० १६६–६८
२. ,, ,, ,, १६६

मिलाया गया हो। जैसे "जनमी गोरी तू जेसलमेर" : "गोरड़ी जेसलमेर की"। आबू के परमार भी राजपूताने में फैले हुए थे। अतः राजमती का इनमें से किसी सरदार की कन्या होना सम्भव है। पर भोज के अतिरिक्त और भी नाम इसी प्रकार जोड़े हुए मिलते हैं। जैसे—माघ, अचारज, कवि कालिदास।

जैसा पहले कह आये हैं, अजमेर के चौहान बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) बड़े वीर और प्रतापी थे और उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध कई चढ़ाइयाँ की थीं और कई प्रदेशों को मुसलमानों से खाली कराया था। दिल्ली और हाँसी के प्रदेश इन्होंने अपने राज्य में मिलाये थे। इनके वीर चरित का बहुत कुछ वर्णन इनके राजकवि सोमदेव रचित "ललित विग्रह-राज" (संस्कृत) में है, जिसका कुछ अंश बड़ी-बड़ी शिलाओं पर खुदा हुआ मिला है और राजपूताना म्यूजियम में सुरक्षित है। पर नाल्ह के इस बीसलदेव रासो में, जैसा कि होना चाहिए था, न तो उक्त वीर राजा की ऐतिहासिक चढ़ाइयों का वर्णन है, न उसके शौर्य-पराक्रम का। श्रृङ्गार रस की दृष्टि से विवाह और रूठकर विदेश जाने का (प्रोषित पतिका के वर्णन के लिए) मनमाना वर्णन है। अतः इस छोटी-सी पुस्तक को बीसलदेव ऐसे वीर का "रासो" कहना खटकता है। पर हम देखते हैं कि यह कोई काव्य ग्रंथ नहीं केवल गाने के लिए रचा गया था, तो बहुत कुछ समाधान हो जाता है[१]।"

डा० श्यामसुन्दर दास का मत है कि "विग्रहराज के विषय में दो और शिलालेखों का पता लगा है। पहिले पर तो सोमेश्वरदेव का बनाया हुआ एक नाटक खुदा है जिसमें वसन्तपाल की कन्या के साथ राजा विग्रहराज की प्रेम-केलि और मुसलमानों के विरुद्ध राजा के युद्धों का वर्णन है। दूसरे पर भी एक नाटक है जिसके रचयिता स्वयं विग्रहराज हैं। इस दूसरे शिलालेख पर संवत् १२१० (११५३ ई०) खुदा है। इनसे अब यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि महाराज विग्रहराज का राजत्वकाल १२ वीं शताब्दी के मध्य में हुआ।

सोमेश्वर राज के समय का एक शिलालेख मेवाड़ में मिला है जिसमें लिखा है कि विग्रहराज अर्णवराज का पुत्र था और 'तस्य ज्येष्ठ भ्रातृपुत्रः पृथ्वी-राजः' था तथा "ज्येष्ठ भ्रातृ" का नाम आगे चलकर सोमेश्वर दिया है। बीसल-देव का नाम भी इस लेख में दिया है। पर विग्रह-राज से तीन पीढ़ी पहिले

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३४-३५। सं० २००३।

है। अतएव यह सिद्ध होता है कि विग्रहराज और बीसलदेव एक ही पुरुष नहीं थे।

इसके अतिरिक्त पृथ्वीराजरासो में लिखा है कि जिस समय बीसलदेव गुजरात के चालुक्य राजा से लड़ने गये तो राजा भोज का लड़का उदयादित्य उनके साथ था। बीसलदेव रासो के अनुसार बीसलदेव ने भोज परमार की कन्या से विवाह किया था और इस भोज का समय डा० राजेन्द्र लाल मित्र के अनुसार सन् १०२६-१०८३ के बीच में होता है—पृथ्वीराजरासो से यह पता चलता है कि बीसलदेव की एक पमार वंशीय रानी थी, क्योंकि आदि पर्व में यह दोहा मिलता है:—

ऊँच धाम विसराम किय रा लाड चहुरङ्ग।
प्रौढ़ा महल पमार सो कहिय सुकथा प्रसङ्ग॥

चन्द बीसलदेव का समय संवत् ८२१ देता है (पंड्या जी के अनन्द विक्रम संवत् के अनुसार यह ६११ होगा) और यह लिखा है कि बीसलदेव ने ६४ वर्ष राज्य किया था। अतएव इस गणना के अनुसार बीसलदेव की मृत्यु का संवत् ६७५ (९१९ ई०) होगा जबकि राजा भोज और उसके पुत्र उदयादित्य का जन्म भी नहीं हुआ था; परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि लेख के भ्रम से यह संवत् ८२१ बदल गया है क्योंकि एक-दूसरे स्थान पर चन्द चालुक्य राज पर बीसलदेव की चढ़ाई और गुजरात विजय का समय ६८९ बताता है। इसलिए ऐसा जान पड़ता है कि बीसलदेव का समय ८२१ न होकर ९२१ होगा। यह समय (९२१—९१+६४=१०७६ या १०२० ई०) भोज और उसके पुत्र उदयादित्य से भी ठीक ठीक मिल जाता है और इन दोनों का समकालीन होना सम्भवतः सिद्ध हो जाता है। पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल जी पंड्या का कथन है कि राजपूताने की ख्यातियों में ९२१ के स्थान पर ६३१ मिलता है। यदि यह संवत् ठीक है तो बीसलदेव का समय १०१० मानना चाहिए।

इतिहास में बीसलदेव का नाम इसलिए प्रसिद्ध है कि उसने कई बार मुसलमानों के विरुद्ध लड़ाई ठानी थी और एक बार उन्हें पुनः भारतवर्ष से निकालने में वह सफल मनोरथ हुआ था। इससे उसी युद्ध का आशय है जो राजपूताने के राजाओं ने महमूद गजनवी (६६७-१०३०) के विरुद्ध ठाना था और जिसमें वे कृतकार्य हुए थे। जो बातें ऊपर कही गयी हैं उनसे यही सिद्ध होता है कि बीसलदेव बारहवीं शती में नहीं हुआ वरन् ग्यारहवीं शताब्दी के

प्रथम खण्ड भाग में। फीरोजशाह की लाट पर जो लेख है उसके विषय में मेरा यह सिद्धान्त है कि यह बीसलदेव ही से कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं रखता। वरन् उसके नाम का उल्लेख उसमें इसलिए किया गया है कि यह विग्रहराज के प्रतापी और प्रसिद्ध पुरखाओं में से था। चौहानों के इतिहास में बीसलदेव का नाम निजदेश के हितार्थ अनेक साहसपूर्ण कार्यों के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। जो दिल्ली न जीत सका उसने समझा हो कि यदि अपने नाम के साथ बीसलदेव के नाम का उल्लेख हो तो जो कालिमा मेरे यश में लग गई है वह दूर हो जाय। इसी कारण इन दोनों का नाम उस शिलालेख पर है। इससे बीसलदेव और विग्रहराज को एक ही पुरुष मानना कदापि उचित नहीं जान पड़ता।"[1]

श्री रामनारायण जी दूगड़ ने अपना विचार इस सम्बन्ध में यों प्रकट किया है :—

बीसलदेव रासो के विषय में अपनी सम्मति प्रकट करने के पूर्व में बाबू श्यामसुन्दर दास जी के मन्तव्य पर कुछ कहूँगा। उक्त बाबूजी का पृथ्वीराज रासो के बीसलदेव, ललित विग्रह राज नाटक के नायक और फीरोजशाह की लाट के लेख वाले बीसलदेव तथा राजमति के पति बीसल को एक ही पुरुष मान लेना सर्वथा अयुक्त है। उन्होंने टाड राजस्थान के अनुसार रासे वाले बीसलदेव का पृथ्वीराज से ६ पीढ़ी पहिले होना लिखकर उस बीसलदेव के समय को, बीसलदेव रासे के बीसल से मिलाने का परिश्रम उठाया है। यही कारण है कि अन्त में उन्हें लाट पर के लेख वाले विग्रहराज और बीसलदेव जुदा-जुदा पुरुष ठहराने पड़े। यदि उक्त बाबू साहब को यह मालूम होता कि चन्द के रासे और टाड साहब की दी हुई चहुवाणों की वंशावली बिलकुल रद्दी है और विग्रहराज या बीसलदेव नाम के चार राजा चहुवाणों में हुए हैं तो वे कदापि ऐसा न लिखते।

पहिला विग्रहराज या बीसलदेव चहुवाणों के मूल पुरुष चापमान या चाहमान से पाँचवीं पीढ़ी में हुआ।

दूसरा विग्रहराज (पृथ्वीराज रासे का बीसलदेव) सिंहराज का पुत्र था, जिसने अणहिल वाड़े के राजा मूलराज सोलंखी को जीतकर वहाँ बीसलपुर नाम का नगर बसाया। पृथ्वीराज रासे में इस बीसलदेव को आनलदेव (अर्णोराज) का दादा कहकर सं० ९८६ वि० तक १६४ वर्ष अजमेर में उसका राज

---

1. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सन् १९०१, पाँचवाँ भाग, पृ० १४१–१४४।

करता लिखा है। परन्तु वास्तव में यह विग्रहराज या बीसलदेव सं० १०३० वि० में राज करता था।[1]

बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने अनन्द सनन्द संवत् की कल्पना के सहारे से पृथ्वीराज रासो में दिये हुए सं० से इस बीसलदेव का समय मिलाने का यत्न किया है[2] इस बीसलदेव का मालवे परमार राजा भोजदेव का तो नहीं किन्तु उसके पिता सिन्धुराज का समकालीन होना सम्भव है, क्योंकि भोजदेव सं० १०६७ वि० से कुछ पहिले गद्दी पर बैठा था और सं० ११११ या ११११ के लगभग मृत्यु को प्राप्त हुआ या मारा गया। बीसलदेव भोज से पहले मर चुका हो क्योंकि पृथ्वीराज विजय नाम की पुस्तक और शिला लेखों में दी हुई चहुआनों की वंशावली के अनुसार सिंहराज के विग्रहराज या बीसलदेव, दुर्लभराज, चन्द्रराज और गोविन्दराज नाम के पुत्र थे। वाक्पति के पीछे दुर्लभ और उसका भाई गोविन्दराज राजा हुआ। गोविन्दराज के पीछे वाक्पतिराज दूसरा और फिर उसके छोटे भाई वीर्यराम की बारी आई। यह वीर्यराम अवन्ती के राजा भोज के हाथ से मारा गया था। वीर्यराम का उत्तराधिकारी दुर्लभराज तीसरा मालवे के राजा उदयादित्य का, 'जिसके लिये लेखों में भोजदेव का सम्बन्धी होना लिखा है,' समकालीन था, जिसने सं० ११४१ वि० के निकट तक राज किया।

तीसरा विग्रहराज या बीसलदेव दुर्लभराज तीसरे का भाई था जिसका राज सं० ११५१०२ वि० के बीच में होना चाहिए। इसके लिए बिजोल्यॉं की प्रशस्ति में लिखी है कि श्री चण्डो रनिपे ति राय कुवर श्री सिंहटो दुमवारतद् भ्राता यत तोपि बीसल नृपः श्री राजदेवो प्रियः। अर्थात् यही बीसलराज राजमती का पति था। परन्तु यह नहीं कह सकते कि राजदेवी मालवे के राजा भोजदेव ही की कन्या थी।

चौथा विग्रहराज या बीसलदेव विजोल्यॉं की प्रशस्ति' में इसका नाम बीसल दिया है। 'अर्णोराज' 'आनल देव' का पुत्र और सोमेश्वर का बड़ा भाई था

---

1 Epigraphia Indica vol II P 119 हर्षनाथ के मंदिर का शेखावटी प्रान्त में लेख।

२ — अनन्द सनन्द संवत् की कल्पना मोहनलालजी विष्णुलालजी पंड्या ने की है लेकिन कोई प्रमाण नहीं मिलता। कहीं ६० और कहीं ९१ वर्ष पृथ्वीराज रासो में दिये हुए संवतों को शुद्ध ठहराने के लिए मिलाए हैं। लेकिन इतने पर भी पृथ्वीराज के सब संवत् ठीक नहीं मिलते।

जिसका लेख देहली में फीरोज़शाह की लाट पर है¹, उसकी मृत्यु सं० १२२० वि० के लगभग होना उस लेख में पाया जाता है। इसी बीसलदेव या विग्रहराज ने तँवरों से दिल्ली का राज लिया 'सं० १२०८ वि० के लगभग' और हिमालय से विन्ध्याचल पर्यन्त देश विजय कर आर्यावर्त्त से म्लेच्छों का उच्छेद किया था। यही 'ललित विग्रहराज' नाम के नाटक का नायक था।² इस बीसलदेव और उसके लेख के विषय में जो अनुमान बाबू श्यामसुन्दरदास ने किया है, वह ठीक नहीं है।

अब बीसलदेव रासो के विषय में यह कहा जा सकता है कि यदि यह ग्रंथ किसी नरपति कवि ने शक सं० १२०२ या १२१० में लिखा हो तो रचयिता ऊपर दिये हुए चारों बीसलदेवों में से किसी का भी समकालीन नहीं ठहरता।

ग्रन्थकार लिखता है कि भोजदेव ने अपनी कन्या का विवाह करने को पुरोहित भेजा, वह अजमेर, अयोध्या, दिल्ली और मथुरा गया परन्तु कोई राजा उसके मन में न आया। आखिर अजमेर के बीसलदेव से उसने राजमती का विवाह ठहराया। भाटियों की ख्याति के अनुसार जैसलमेर का नगर राजा जैसल ने सं० १२१२ वि० में बसा कर अपनी राजधानी बनाया था। अतः सम्भव नहीं कि भोजदेव का पुरोहित जो राव जैसल से करीब एक सौ वर्ष पहले मर चुका था, जैसलमेर में जाता और यदि उसका जैसलमेर जाना मानें तो राजमती को भोजदेव की कन्या नहीं मानना पड़ेगा। भोज राजा के समय में दिल्ली पर अनंगपाल तँवर 'दूसरा' राज करता था, अयोध्या में शालवंशी राजाओं का राज-भ्रष्ट होकर राठौड़ों का अधिकार शुरू हुआ था। मथुरा में उस समय कोई स्वतन्त्र राजा का होना पाया नहीं जाता, यह शहर दिल्ली के अधीन था। फिरिश्ता लिखता है कि (१०१७ ई० सं०) १०७४ वि० में सुलतान महमूद गजनवी मथुरा में गया जो किशन वासदेव का शहर कहलाता है। दिल्ली के राजा ने शहर की हिफाजत के वास्ते फौज भेजी थी मगर वह शिकस्त खाकर भाग गई और बीस दिन तक सुलतान ने उस शहर को लूटा।' साँभर में चहुवाणों का राज भोजदेव से बहुत पहले होना पाया जाता है, चित्तौड़ का गढ़ आठवीं

---

1 Indian Antiquary Vol 26 P 216—1860

२—एक ललित विग्रहराज नाटक कवि सोमदेव का बनाया हुआ और दूसरा हर-केलि नाटक खास विग्रहराजजी का बनाया हुआ अजमेर के अढ़ाई दिन के झोंपड़े में मिला था।

अन्नाल्लो (विग्रह वीर) के समय में मुसलमानों ने अजमेर के राजाओं से ले लिया था फिर मालवा का बल पर ऐसा अधिकार था कि वह वीसलदेव को देने से इन्कार करता। अजमेर का शहर वीसलदेव के बहुत पीछे जाकर चहुवाण राजाओं की राजधानी हुआ था। संवत् १२०० वि० के लगभग तक—जब कि गुजरात का चालुक्य राजा कुमारपाल, चहुवाण राजा अर्णोराज पर चढ़ गया था—चहुवाणों की राजधानी अजमेर नहीं थी क्योंकि अब बीसलदेवरासो के कर्ता अनुसार से नलचाताल था। नागौर व शाकम्भरी या सपादलक्षीय राज। लिखा था। इतना अवश्य है कि अजमेर का नाम अजयपाल के पिता अजयराज ने उस समय रखा लिया था, इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट है कि बीसलदेव रासो किसी बीसलदेव के समय में बना हुआ नहीं किन्तु पीछे से किसी ने लिख दिया हो और आश्चर्य नहीं कि यह ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो के पीछे बना हो क्योंकि उसी के अनुसार बीसलदेव रासो में भी बीसलदेव की परमार और यादव कुल की दो रानियाँ होनी लिखी हैं, और सिवा इसके कि राजा बीसलदेव ने राजा भोज की कन्या राजमती से विवाह किया अन्य इतिहास-सम्बन्धी कोई बात इसमें नहीं प्राप्त होती है। ग्रन्थ की पद्य रचना और भाषा के विषय में इस समय तक ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता जब तक कि संपूर्ण ग्रन्थ न पढ़ा जावे।"

ऐतिहासिक वर्णनों पर विचार करते समय हमें यह देखना होगा कि जिन दोनों रूपान्तरों को आधार मान कर सम्मति सम्पादन का कार्य किया गया है उनमें कौन-कौन सी घटनाएँ दोनों में समान हैं। तथा कौन सी ऐसी घटना है जो प्रथम रूपान्तर में है, द्वितीय में नहीं और द्वितीय में है प्रथम में नहीं। विश्लेषण करने पर ऐसा होता है कि प्रथम रूपान्तर की प्रायः सभी घटनाएँ द्वितीय रूपान्तर में पाई जाती हैं। तथा द्वितीय रूपान्तर में इनके अतिरिक्त और भी अन्य घटनाओं का वर्णन है।

दोनों रूपान्तरों में समान रूप से पाई जाने वाली ऐतिहासिक घटनाओं में से प्रथम और प्रमुख घटना है चौहान वंशीय बीसलदेव का धार के राजा परमार वंशीय भोज की पुत्री राजमती के साथ विवाह का होना। इस घटना के साथ ही साथ तत्सम्बन्धी कई एक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। बीसलदेव से कवि का तात्पर्य किस बीसलदेव से है क्योंकि इतिहास में चार बीसलदेव हो चुके हैं। दूसरा प्रश्न राजा भोज का है क्योंकि इतिहास-प्रसिद्ध राजा भोज का समय कब से कब तक था तथा समय स्थिर हो जाने के पश्चात् वह किस बीसलदेव का समकालीन था, इत्यादि बातों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। तृतीय

प्रश्न उठता है कि क्या इतिहास में कहीं भी राजमती का उल्लेख बीसलदेव की पत्नी के रूप में हुआ है? अथवा राजमती का उल्लेख राजा भोज का पुत्री कह कर कहीं हुआ है?

उपर्युक्त ऐतिहासिक गुत्थियों को सुलझाने के लिये आवश्यक यह होगा कि हम चौहानों और परमारों के वंश-वृक्ष को देखकर यह निर्णय करें कि राजा भोज का समय कब से कब तक था और उनके समय में चार बीसलदेवों में से कौन बीसलदेव वर्तमान था। राजा भोज का समय इतिहासकारों ने प्रस्तर लेखों, दान पत्रों और प्रशस्तियों [1] के आधार पर वि० सं० १०७६ से ११०२ (ई० सन् १०२० से १०४२) माना है। राजा भोज के काल में चार बीसलदेवों में से कौन-से बीसलदेव वर्तमान थे, इसका समाधान चौहान राजाओं के वंश वृक्ष के अध्ययन से सम्भव है। लेकिन इन चार बीसलदेवों के काल का निर्णय करने के पहले डा० श्यामसुन्दर दास द्वारा उठाये गये उस प्रश्न का भी समाधान आवश्यक है, कि "विग्रहराज और बीसलदेव एक ही पुरुष नहीं थे।" उनकी यह शंका निर्मूल सिद्ध हो जाती है दिल्ली के फिरोज़ शाह की लाट पर खुदी हुई निम्न वार्ता से, जहाँ बीसलदेव और विग्रहराज को एक ही व्यक्ति माना गया है:—

आर्यावर्त्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छ-विच्छेदनाभि-
र्देवः शाकंभरी या जगति विजयते बीसलक्षोणिपालः।
ब्रूते सम्प्रति चाहमान-तिलक शाकम्भरी भूपतिः
श्री मद्विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मनः॥१॥

संभव है कि डा० श्यामसुन्दरदास ने उपर्युक्त शंका इस कारण उठाई हो कि फिरोज़शाह की लाट पर खुदी हुई यह बात केवल विग्रहराज चतुर्थ के सम्बन्ध में है। इसमें संदेह नहीं कि इतिहास में विग्रहराज प्रथम और द्वितीय

---

१. (क) बांसवाड़ा का दान-पत्र—यह किसी ठठेरा की विधवा पत्नी के पास दक्षिणी राजपूताने में पाया गया था और इस पर भोजदेव के हस्ताक्षर के साथ सं० १०७६ माघ सु० ५ अंकित है।

(ख) बेतवा का दान-पत्र—यह मध्य भारत में इन्दौर से पश्चिम १६ मील की दूरी पर बेतमा ग्राम में पाया गया था। इसमें राजा भोज के किसी ब्राह्मण को कोंकन विजय के अवसर पर एक गाँव देने का उल्लेख है। इसकी तिथि वि० १०७६ की माघ सु० १५ है (ई० सन् १०२० जिवाय)।

के लिये 'बीसलदेव' का व्यवहार नहीं मिलता। लेकिन विग्रहराज तृतीय को हम्मीर महाकाव्य में "बीसल" और चतुर्थ को शेखावाटी तथा लोहारी गाँव के शिला लेखों में "बीसल" कहा गया है।

चौहानों के वंश वृक्ष के अनुसार बीसलदेव द्वितीय (विग्रहराज) का, जिसने गुजरात के सोलंकी राजा पर चढ़ाई की थी, वि० सं० १०३० में विद्यमान होना मिलता है। यह बीसलदेव (विग्रहराज) प्रथम विग्रहराज से दस पीढ़ी बाद तथा चौहान राजाओं की तेरहवीं पीढ़ी में आता है। इसके द्वितीय भ्राता का नाम दुर्लभराज द्वितीय था तथा इसके पिता का नाम सिंहराज था। इसको कोई पुत्र न हुआ। इसके भाई के वंश में विग्रहराज तृतीय हुआ। इसका समय कब से कब तक था, यह इतिहास में स्पष्ट नहीं है। और इसी का वंशज विग्रहराज चतुर्थ हुआ, जिसका समय लगभग सं० १२१० से १२२१ था।[1] विग्रहराज द्वितीय और विग्रहराज चतुर्थ के बीच जिनका समय हमें इतिहास में मिलता है, १८० वर्षों का अन्तर पड़ता है। और इन दोनों के राज्यकाल

(ग) उज्जैन का दान पत्र—यह दान-पत्र एक किसान ने द्वारा उज्जैन में नागभरी नामक झरने के पास जमीन खोदते हुए प्राप्त किया गया था। इस दान-पत्र के अनुसार राजा भोज ने किसी ब्राह्मण को एक गाँव दान किया है। इसकी तिथि दान-पत्र के ३० वीं और ३१ वीं पंक्ति में वि० सं० १०७८ (ई० स० १०२२) है।

(घ) देपालपुर का दान-पत्र—यह दान-पत्र इन्दौर से २४ मील दूर देपालपुर में पाया गया था। दान-पत्र की तिथि वि० सं० १०७९ चैत्र शुक्ल १४ (ई० सन् १०२२) है।

(च) यशोवर्मा का पत्र—बाम्बे प्रान्त के नासिक जिले के "कालवन" ग्राम में प्राप्त। इसमें किसी संवत् का उल्लेख नहीं है।

(छ) ब्रिटिश अजायब घर की मूर्ति का लेख—सरस्वती की एक मूर्ति है जिसके पाद-स्थल में लिखा हुआ है, राजा भोज के राज्य वि० सं० १०९१ में बनी हुई।

(ज) तिलकवाड़ा का दान-पत्र—यह दान पत्र बड़ौदा राज्य के तिलकवाड़ा के पास नर्मदा नदी के किनारे प्राप्त हुआ था।

दे० डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ नदर्न इण्डिया—डा० एच० सी० राय। भाग द्वितीय—पृ० ८६१।

१. वंश वृक्ष पृ० ७१ (क) पर देखिए।

के भीतर चौहान वंश के और अन्य १२ राजा हुए। हिसाब से प्रत्येक राज का औसत राजकाल १४ वर्ष होता है। यदि इस हिसाब को ठीक माना जाय तो बीसलदेव तृतीय का समय, जो हमें इतिहास में नहीं प्राप्त है, लगभग वि० सं० ११८० होता है; क्योंकि यह विग्रहराज द्वितीय का समय वि० सं० १०३०, विग्रहराज तृतीय का वि० सं० ११५० तथा चतुर्थ का वि० सं० १२१० था और ये तीनों विग्रहराज, राजा भोज, के समय जिनका समय ऊपर कहे गये आधार पर वि० सं० १००६ है, वर्तमान नहीं थे। इस ऐतिहासिक तथ्य से एक बहुत बड़ा असमंजस यह उपस्थित होता है कि क्या कवि नारद द्वारा कही गयी राजा भोज-बीसलदेव की कथा निरी कपोलकल्पित है? इसमें तो सन्देह नहीं कि कवि नारद इतिहास का पण्डित नहीं था और न उसने बीसलदेव रासो की रचना किसी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से की थी। फिर भी इसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि कवि नारद को इस बात का ज्ञान था कि परमार वंश और चौहान वंश का 'रोटी-बेटी' का सम्बन्ध है और बीसलदेव रासो की रचना करते समय यदि वह इतिहास के चार बीसलदेवों में से किस बीसलदेव के सम्बन्ध में कह रहा है इसका स्पष्ट उल्लेख कर देता तो शायद आज ग्रन्थ की रचना-तिथि तथा ग्रन्थ की भाषा आदि के सम्बन्ध में कोई सन्देह न रहता। लेकिन इस अभाव के कारण ही हमें ऊपर यह निर्णय कल्पना के आधार पर करना पड़ा है कि बीसलदेव तृतीय का समय क्या था और इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा है कि इनमें कोई राजा भोज के समय वर्तमान नहीं था।

लेकिन जैसा कि ऊपर कहा गया है कि कवि की इस उक्ति में सत्यता का अंश अवश्य है जहाँ तक कवि परमार और चौहान वंश के सम्बन्ध का वर्णन करता है, क्योंकि कवि की इस उक्ति की पुष्टि पृथ्वीराज रासो[1] और बिजोल्यों के शिला-लेख[2] में दी हुई चौहानों की वंशावली से होती है।

१—ऊँच धाम विसराम किय, रग साल चतुरग।
प्रौढ़ा महल पवांर सौं, कहिय सुकथा प्रसंग॥ समय १॥ छं० ४०६॥
पृथ्वीराज रासो ना० प्र० सभा

२—विप्रश्री वत्स गोत्रे भू दहि छत्रपुरे पुरासामन्तोनंत सामंतः पूर्णतल्लो-नृपस्ततः॥१२॥ तस्माच्छ्रीजयराजविग्रह नृपो श्री चद गोपेन्द्र कौ तस्माद्दुर्लभ गूवं कौशाश नृपो गवाक सच्चंदनौश्रीमद्वप्यम राज विंध्य नृपतिः श्री सिंह राव्वि-ग्रहो श्रीमल्दुर्लभ गुदुवाकपति नृपाः श्री वीर्य रामोनुजः श्री चंडो वनिपेति राणकधर श्री सिंह टो॥ १६॥ इसलस्तस्पदात्म तयनोवि विसलो नृपः श्री रानदेवी प्रियः पृथ्वीराज नृपोथ तत्तनुभवो रासत्य देवी विभुस्तत्पुत्रो जयदेव इत्यवनियः सोमल्लदेवी पतिः॥ १४॥ जे० आर० ए० एस० (बी०) की वोल्यू २५

*(1) Vasudeva
(2) Samatraj
(3) Ajayaraj (Ajayapal)
(4) Vigraharaj (i)

(5) Chandraj (i) — (6) Gopendraraj

(7) Durlabharaj (i)
(8) Govindaraj (Guvaka i)
(9) Chandraraj
(10) Guataka (ii)
(11) Chandraraj (iii)
(12) Vakpatiraj (i)
(13) Sinharaj

(14) Vigraharaj (ii) (A. D. 973) — (15) Durlabharaj (ii)

(16) Govindraj (ii)
(17) Vakapatiraj (ii)

(18) Viryaram (About A.D.1040) — (19) Chamundaraj

(20) Durlabharaj (iii) (About A.D.1075)

(21) Vigraharaj (iii)
(22) Prithviraj (i) (A. D. 1105)
(23) Ajayaraj (sahlana)
(24) Arnoraj (Anaji) (A. D. 1140)

(25) Jugdeva — (26) Vigrahraj (iv) (About A.D.1153–1164)

* दे० Ajmer Historical and Descriptive by H. B. Sarada P. 139.

उपर्युक्त प्रमाणों से यह निश्चय तो हो गया कि परमार और चौहान वंश का आपस का सम्बन्ध था तथा यह भी निश्चय हो गया कि राजा भोज के समकालीन इन तीन बीसलदेवों में से कोई नहीं था। लेकिन जहाँ कवि ये बीसलदेव रासो में यह नहीं लिखा कि बीसलदेव से उसका अर्थ किस बीसलदेव से है, वहाँ उसने यह लिखा है कि राजा भोज की पुत्री राजमती से बीसलदेव का विवाह हुआ था जिससे समझने में दुविधा हो जाती है कि कवि किस बीसलदेव की ओर संकेत कर रहा है।

बिजोल्याँ के शिला लेख से, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है यह बात प्रमाणित होती है कि बीसलदेव तृतीय की रानी का नाम राजदेवी था। बीसलदेव रासो की राजा भोज की पुत्री राजमती और यह राजदेवी एक ही रानी के सूचक होने चाहिए।[२] लेकिन चूँकि ऊपर यह प्रमाणित किया जा चुका है कि बीसलदेव तृतीय, राजा भोज का समकालीन नहीं था, वरन् राजा भोज के अंतिम समयों में राजा हुआ जिससे यह सिद्ध होता है कि सम्भवतः राजा भोज के भाई उदयादित्य ने, जिसका समय इतिहासकारों ने सं० ११२६ से ११४३ वि० सं०[१] माना है और जो बीसलदेव तृतीय का समकालीन था[२], भोज की पुत्री का विवाह बीसलदेव तृतीय से किया हो।

जयानक कृत "पृथ्वीराज विजय काव्य" तथा इतिहास में इसका उल्लेख मिलता है कि बीसलदेव, जिसका उल्लेख बिजोल्याँ के शिलालेख में सिंहट के नाम से हुआ है, विग्रहराज तृतीय का पिता था और इसे अवन्ती के राजा भोज

१—ना० प्र० पत्रिका—सं० १९९७, पृ० १६८।

२—ग्वालियर के उदयपुर का शिलालेख :—इस लेख में उदयादित्य का राज्य काल वि० सं० ११२६ तथा शक सं० ९८१ (ई० सन् १०५९–६०) दिया हुआ है तथा यह भी लिखा है उसने शंकर का मंदिर निर्माण करवाया।

दे०—कैप्टन बर्ट का लेख जे० ए० बी० वोल्यूम ७ पृष्ठ १०५६
उदयपुर मन्दिर का शिलालेख :— यह लेख ग्वालियर के उदयपुर के मंदिर के पूर्वीय दरवाजे के भीतर सुन्दर रूप में सुरक्षित है। इसमें छः पंक्तियाँ हैं और उसमें उदयादित्य का नाम दिया हुआ है तथा तिथि वि० सं० ११३७ दी हुई है। यह लेख सम्भवतः पं० महीपाल रचित है।

ने मार डाला था।[1] इस कारण इन दोनों वंशों में अनबन हो गई थी। 'राजपूतों में ऐसी अनबन पुत्री विवाहने से मिटती थी, जिसके अनेक उदाहरण उनके इतिहास में मिलते हैं।[2] सम्भव है, इसी अनबन को मिटाने के लिए उदयादित्य ने अपनी भतीजी राजा भोज की पुत्री राजदेवी अथवा राजमती का विवाह बीसलदेव तृतीय से किया हो, क्योंकि जहाँ इतिहास में उपर्युक्त अनबन की कथा प्राप्य है वहीं यह वृत्त भी मिलता है कि परमार राजा भोज के अन्तिम समय *उसके राज्य पर सोलंकी राजा भीमदेव प्रथम तथा चेदि के राजा कर्ण ने चढ़ाई* की और राजा भोज की मृत्यु के पश्चात् उदयादित्य ने विग्रहराज तृतीय की सहायता से सोलंकी राजा कर्ण को जीता। ऐतिहासिक सत्य से यही अनुमान दृढ़ होता है कि चौहान और परमार वंश का पारस्परिक वैर मिट गया था एवं राजा भोज की पुत्री के विवाह की सम्भावित कथा की पुष्टि भी इससे होती है।

उक्त ऐतिहासिक सत्य को प्रामाणिक मान लेने के पश्चात् यह भी स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि बीसलदेव रासो की रचना बीसलदेव तृतीय तथा उनके समकालीन परमार वंशी उदयादित्य के समय में हुई होगी, जिनका राज्य काल विक्रम की बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में था। लेकिन प्राप्य प्रतियों में से किसी भी प्रति में बीसलदेव तृतीय के काल का निर्देश नहीं है। अवश्य इनके राज्य काल के पूर्वार्द्ध सं० १०७७ या १०७३ तथा उत्तरार्द्ध सं० १२१२ या ११७२ का उल्लेख प्राप्त प्रतियों में है। पूर्वार्द्ध संवत् के लिये डा० रामकुमार वर्मा ने गणना का सहारा न लेकर केवल इतना ही कहा है कि चूँकि

झालरा पाटन का शिलालेख—यह लेख दे० फ्लिहार्न का लेख आई० ए० वोल्यूम २० पृ० ८३ झालावाड़ राज्य के झालरा पाटन नामक स्थान में पाया गया था। इसमें किसी तेली द्वारा शंभु के निर्माण की बात खुदी हुई है। इसकी तिथि उदयादित्य के राज्य काल वि० सं० ११४३ (ई० सन् १०८६—८७) की है।

दे०, जनरल एण्ड पी० ए० एस० बी०, वोल्यूम १०, पृ० २४१।

१—अगम्यो यो नरेन्द्राणां सुधादीधिति-सुंदरः ॥
जघे यशाश्रयो यश्च भोजेनावन्ति-भूभुजा ॥६७॥ पंचम सर्ग

२—ना० प्र० प० सं० १६६७, पृष्ठ १६८।

यह संवत् इतिहास के अधिक समीप है इसलिए इस संवत् को मान्यता देने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। इसके विपरीत उत्तरार्द्ध संवत् के लिये डा० ओझा जी ने गणना की सहायता से तिथि वार आदि को ठीक मानते हुए कहा है कि इस ग्रन्थ की रचना प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् हुई थी। ग्रन्थ के नायक को बीसलदेव चतुर्थ मानने वाले विद्वानों ने इसका रचना काल १२१२ वि० सं माना है; क्योंकि बीसलदेव चतुर्थ का राज्यकाल संवत् १२१० से १२२० था। लेकिन ऐसे मानने वाले विद्वानों की आलोचना अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। एक बात विशेष रूप से दर्शनीय यह है कि काव्यागत सारी कथाएँ केवल बीसलदेव और राजमती से सम्बन्धित हैं। यदि राजमती को कथा से पृथक् कर दिया जाय तो कथा कुछ रह ही नहीं जाती। अस्तु, राजमती और बीसलदेव के सम्बन्ध को प्रामाणिक मान कर ही हमें ऐतिहासिक तथ्यों पर विचार करना चाहिये। इस दिशा में बीसलदेव चतुर्थ से प्रसिद्ध राजा भोज की कन्या राजमती से विवाह की संभावना को न देखकर (राजा भोज से लगभग सौ वर्ष पश्चात् बीसलदेव चतुर्थ का समय सिद्ध होता है) ग्रन्थ के नायक को बीसलदेव चतुर्थ मानने वालों ने एक तर्क यह उपस्थित किया है कि "हम्मीर काव्य के कवि ने भोज द्वितीय के लिये,–'भोजो भोज इवापरः,'" लिखा है। अतः यह भी अनुमान किया जा सकता है कि भोजवंशीय किसी अन्य के लिये कवि नाल्ह ने भोज शब्द का व्यवहार किया है।[1] लेकिन इस आधार को मान लेने पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करना कि प्रसिद्ध राजा भोज के वंश के दूसरे किसी शासक की कन्या का नाम राजमती था और उसी का विवाह बीसलदेव चतुर्थ से हुआ था तथा उसी का उल्लेख कवि ने अपने ग्रन्थ में किया है बिल्कुल आधारहीन जान पड़ता है। माना कि बीसलदेव तृतीय की रानी का नाम राजदेवी था राजमती नहीं, जैसा कि बिजोलियाँ के शिलालेख में प्राप्त है, लेकिन सम्पूर्ण रूप से आधार-रहित बात पर आधारित होकर यह कहने से कि किसी भोज की कन्या का नाम राजमती था और यह भोज बीसलदेव चतुर्थ का समकालीन था, यह कहना विशेष संगतपूर्ण है कि राजदेवी को ही कवि ने राजमती कहा है। सम्भव है कि बीसलदेव तृतीय की रानी राजदेवी का ही नाम अपने पितृगृह में राजमती रहा हो और विवाह हो जाने के पश्चात् वह राजदेवी कहलायी हो। और इसी कारण बिजोलियाँ के शिलालेख में 'राजदेवी' के नाम का

१—बीसलदेव रासो...सं० सत्यजीवन वर्मा...पृ० १६ भूमिका।

लेकिन उपर्युक्त तर्क को उपस्थित करते हुए विद्वान् लेखक ने कहीं यह सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया कि बीसलदेव चतुर्थ की रानी का नाम राजमती उसे इतिहास में मिला है अथवा जैसलमेर नगर के बसाने वाले महाराज जयसलदेव के भतीजे रावल भोजदेव की कन्या का नाम इतिहास में कहीं उसे राजमती मिलता है। तब फिर क्यों कर बीसलदेव चतुर्थ का सम्बन्ध भोजदेव (रावल) से स्थापित किया जाय। अब रही बात कवि द्वारा राजमती को जैसलमेर की राजकुमारी कहने की। इस सम्बन्ध में तो ग्रन्थ के रचयिता ने ही ऐसी द्विविधा पैदा कर दी कि किसी निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन जान पड़ता है। जहाँ कवि ने राजमती को जैसलमेर की राजकुमारी कहा है वहीं ही वह राजा बीसलदेव के 'धार नगरी' में राजमती से ब्याह करने के लिये जाने की भी बात कहता है।[1] ऐसी स्थिति में प्रक्षिप्त का सहारा लेकर कुछ भी कहना ठीक न होगा। डा० माताप्रसाद जी गुप्त ने अनेक छान-बीन के पश्चात् केवल १२८ पदों को ही प्रामाणिक माना है। लेकिन इन्हीं प्रामाणिक पदों में ही जैसलमेर में राजमती के जन्म की बात तथा धार के राजा भोज की पुत्री होना दोनों बातें आती हैं। सम्भव है कि जैसलमेर विजय करने के लिये राजा भोज (मालवाधिपति) कभी गये हों और वहीं उन्हें कन्या-रत्न की प्राप्ति हुई हो और इसी कारण कवि ने ऐसा कहा हो अथवा यह भी सम्भव है कि राजमती को जैसलमेर की कुमारी कहकर कवि ने लक्षणा के सहारे यह कहने की चेष्टा की हो कि जैसलमेर की सुन्दरियों जैसी सुन्दर राजमती थी।

"मारवाड़ नरनीपजे, नारी जेसलमेर।
सिन्धा तुरही सांतरां, केरहल बीकानेर॥"

ग्रन्थ में वर्तमानकालिक क्रियाओं के प्रयोग के आधार पर कुछ विद्वान् ग्रन्थ के रचयिता को बीसलदेव का समकालीन तथा बीसलदेव को विग्रहराज चतुर्थ मानते हैं जिनका समय अनेक शिलालेखों तथा इतिहास से सं० १२२० से सं० १२३१ प्रमाणित हो चुका है।[2] लेकिन इस तर्क को मान लेने में यह असमंजस उपस्थित होता है कि ग्रन्थ का रचना काल जो कुछ प्रतियों में प्राप्त है और जिसके आधार पर उपर्युक्त

१—राजा उतर्‌य उधार मँझारि। मन माहें हरषियउ राजकुमारि ॥१६॥
—बीसलदेव रासो—सं० माताप्रसाद गुप्त।

२—फीरोजशाह की लाट पर खुदवाया हुआ विग्रहराज चतुर्थ का लेख।
वि० सं० १२२० बैशाख सुदी गुरुवार॥

तर्क उपस्थित किया गया है वह 'बारह सै बहोत्तर' है जिसका अर्थ कुछ विद्वानों ने १२१२ तथा कुछ ने १२७२ लगाया है। परन्तु यदि 'बारह सै बहोत्तर' का अर्थ १२१२ माना जाय तब तो बीसलदेव चतुर्थ के राज्यकाल से ८ वर्ष पूर्व, और यदि १२७२ अर्थ लगाया जाय तो ५१ वर्ष बाद इस ग्रन्थ की रचना सिद्ध होती है; ऐसी अवस्था में कवि की समकालीनता का दावा कहाँ तक ठीक होगा यह विवाद का विषय बन जाता है। फिर डा० उदयनारायण जी तिवारी का तो यह भी कहना है कि जहाँ तक क्रियाओं के प्रयोग का सम्बन्ध है, अनेक ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं जिनमें समकालीन न होने पर भी वर्तमानकालिक क्रियाओं का प्रयोग मिलता है। प्रायः घटनाओं को सत्य का रूप देने के लिए ही कवियों ने ऐसा किया है।[1]

अजमेर के बसने का प्रश्न उठाकर कुछ विद्वान् कहते हैं कि चूँकि विग्रहराज तृतीय के समय अजमेर बसा नहीं था इसलिये इस ग्रन्थ के नायक बीसलदेव तृतीय नहीं हो सकते। ऐसे विद्वानों के मतानुसार अजमेर नगर विग्रहराज तृतीय के वंशज महाराज अजयराज ने बसाया था।[2] इसमें तो सन्देह नहीं कि वि० सं० ११६५ (ई० स० ११०८) के लगभग चौहान अजयदेव ने अजमेर बसाकर उसे इस वंश की राजधानी बनाया। लेकिन कवि जहाँ गढ़ अजमेर का उल्लेख करता है वहाँ बीसलदेव के लिये 'सहँभरिवाल' का भी।[3] और बीसलदेव, शाकम्भरीश्वर या सांभरीराज अपने वंशज वासुदेव के अहिच्छत्रपुर से शाकम्भरी (सांभर) में आकर अपना राज्य सं० ७२३ के लगभग कायम कर लेने के पश्चात् ही कहलाने लगे थे।[4] ज्ञात तो ऐसा होता है कि कवि को अजमेर बसने की तिथि का ज्ञान न था। और चूँकि कवि ने ग्रन्थ की रचना, विग्रहराज तृतीय के समर्थक

१—वीर काव्य—प० उदयनारायण तिवारी—पृ० १६० ।

२—हमारा हिन्दी साहित्य—भवानीशंकर त्रिवेदी—पृ० ५१ ।

३—मारवाड़ का इतिहास—प० विश्वेश्वरनाथ रेउ—पृ० ६–१२ ।

४—गरव करि बोलियउ सइंभरि वाल ।
मो सारिखउ नहीं अवर भुआल ॥
म्हां घरि सइंभरि उग्गहइ ।
चिहुं दिसइं थांणा रे जेसलमेर ।
लाख तुरीय पाखर पड़इ ।
गोरी राजकउ थइसणउ गढ़ अजमेर ॥ ३८ ॥ बीसलदेव रास
सं०, डा० मातापसाद गुप्त ।

विद्वानों के मतानुसार करीब १५० वर्षों के पश्चात् की जब अजमेर बस चुका था इसलिये उसने अजमेर का उल्लेख कर दिया लेकिन बीसलदेव को सर्वदा सांभरीराज ही कहा। सांभरीराज कह कर कवि ने यह संकेत किया कि उसका उद्देश्य 'सपाद लक्ष' के राजा से है जिसमें नागौर आदि के प्रान्त और बहुत संभव है कि यह स्थान भी, जिसे बीसलदेव के वंशज अजयराज (अजयदेव) ने बसा कर उसका नाम अजमेर रखा, सम्मिलित रहा हो। और इसीलिये कवि ने शायद अपने काल के प्रचलित नाम अजमेर को लिखना विशेष उचित समझा इसके बदले कि उसके काल से डेढ़ सौ वर्ष पुराने नाम को वह लिखे। अथवा यह भी संभव है कि उस पुराने नाम से कवि परिचित ही न रहा हो।

दोनों रूपान्तरों में समान रूप से पायी जानेवाली घटनाओं में से दूसरी घटना राजा बीसलदेव की उड़ीसा यात्रा की है जिस पर ऐतिहासिक रूप से विचार किया जा सकता है। बीसलदेव तृतीय को ग्रन्थ के नायक मानने वाले विद्वानों ने इस घटना को कवि की कल्पना माना है क्योंकि इतिहास में या कहीं भी बीसलदेव तृतीय के उड़ीसा विजय करने का प्रमाण नहीं मिलता। लेकिन बीसलदेव चतुर्थ के पक्ष के समर्थकों का कहना है कि चूंकि विग्रहराज चतुर्थ के तीर्थ यात्रा के प्रसंग में विन्ध्याचल से लेकर हिमालय तक के देशों को विजय करने का उल्लेख 'भारत के प्राचीन राजवंश'[1] में मिलता है, इसलिये कवि नाल्ह के ग्रंथ का नायक बीसलदेव चतुर्थ है।

किन्तु इस प्रमाण में कितना सत्य का अंश है यह कहना कठिन है। डा० सत्यजीवन वर्मा ने इसी प्रमाण को आधार मान कर इस प्रसंग से सम्बन्धित बीसलदेव की भावज की इस बात को कि "वह बीसलदेव उड़ीसा जाने के पूर्व भी सात बरस बाहर रहा था और इस प्रकार वह जन्म भर बाहर ही रहता है" असत्य एवं असंभव न मानते हुए कहा है कि चूंकि बीसलदेव चतुर्थ अपनी वीरता और युद्ध कौशल ही के कारण अपने भाई का उत्तराधिकारी बनाया गया था इसलिए युद्धार्थ उसका सात वर्ष तक एक बार बाहर रहना असंभव नहीं।[2] इसमें तो संदेह नहीं बीसलदेव चतुर्थ, जिसका राजत्व काल वि० सं० १२१० से (क्योंकि इस समय का उसका लिखा हरकेलि नाटक मिलता है) वि० सं० १२२० तक माना जाता है, बड़ा पराक्रमी था। दिल्ली के फीरोज

१—भारत के प्राचीन राजवंश—पृ० २४४।

२—बीसलदेव रासो—सं० सत्यजीवन वर्मा भूमिका—पृ० २०।

शाह की लाट पर बीसलदेव चतुर्थ द्वारा खुदवाए हुए लेख की पंक्तियों से यह भी ज्ञात होता है कि उसने आर्यावर्त को मुसलमानों से रहित कर विन्ध्य से लेकर हिमालय तक की भूमि विजय की। लेकिन इस शिलालेख में कहीं भी उड़ीसा विजय का प्रसंग नहीं आता। फिर आर्यावर्त को मुसलमानों से रहित करने का यह अर्थ नहीं होता कि भारत के प्रत्येक प्रान्त पर विजय प्राप्त की जाय। दिल्ली पर विजय प्राप्त करना ही यह अर्थ रखता था—कि सारे भारतवर्ष पर विजय प्राप्त कर ली गई। और इतिहास के पन्ने भी यह भी सिद्ध करते हैं कि बीसलदेव चतुर्थ ने दिल्ली जिसमें हरियाणा—आजकल हरियाना कहा जाने वाला प्रदेश—शामिल है तोमर राजपूतों से जीता था। इसके समय तक दिल्ली में मुसलमानों की राजधानी नहीं बनी थी। महमूद गजनवी अवश्य समय-समय पर भारतवर्ष पर हमला करता था और लुटेरे के समान धन लूट कर अपने देश को लौट जाता था। संभव है कि इसके साथ बीसलदेव चतुर्थ का कोई लड़ाई हुई हो और इसको पराजित कर बीसलदेव ने आर्यावर्त को इसके जैसे लुटेरे से स्वतन्त्र किया हो और इसी का उल्लेख फिरोजशाह की लाट में हो। अस्तु, किसी भी अवस्था में यह नहीं स्वीकार किया जा सकता कि बीसलदेव चतुर्थ का उड़ीसा गमन ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक है तथा यह भी नहीं कहा जा सकता कि युद्धार्थ बीसलदेव चतुर्थ उड़ीसा जाने के पूर्व सात वर्ष तक बाहर रहा। सम्भव है कि विन्ध्य से लेकर हिमालय तक के प्रदेशों को म्लेच्छों के आक्रमण से मुक्त करने में उसे अपने राज्य से बाहर जाने की भी आवश्यकता न पड़ी हो क्योंकि मुसलमानों के आक्रमण का द्वार तो अजमेर ही था और इस प्रकार उनके (मुसलमानों के) आक्रमण का सामना तो उसे अपने किले में ही बैठ कर करना पड़ा होगा। इसलिए उसके सात वर्ष तक बाहर रहने की कथा जिसका उल्लेख बीसलदेव रासो में हुआ है और जिसे श्री सत्यजीवन वर्मा ने सत्य प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है सत्य नहीं प्रतीत होती। इसके अतिरिक्त श्री सत्यजीवन जी वर्मा के उस तर्क में तो कोई सार ही नहीं दिखाई पड़ता, जहाँ वे कहते हैं कि बीसलदेव का राजत्व काल सं० १२१० से १२२० तक माना जाता है, लेकिन इसने इन्हीं दश वर्षों में विन्ध्य से लेकर हिमालय तक की भूमि विजय की हो और आर्यावर्त को मुसलमानों से रहित किया हो, यह माननीय नहीं है।[1] क्योंकि अपने इस तर्क के लिये वे कोई पुष्ट प्रमाण नहीं उपस्थित करते।

---

१. बीसलदेव रासो—स० सत्यजीवन वर्मा—भूमिका पृ० २०

उड़ीसा जाने की कथा के साथ बीसलदेव रासो में नाल्ह यह भी कहता है कि उड़ीसा जाते समय बीसलदेव ने अपना राज्य अपने भतीजे को सौंपा था। लेकिन कवि की यह उक्ति भी उसको इतिहास से अनभिज्ञता सिद्ध करती है, क्योंकि इतिहास में कहीं भी बीसलदेव तृतीय या चतुर्थ द्वारा अपने भतीजे को राज्य सौंपने की कथा नहीं मिलती। लेकिन इस प्रसंग को भी सत्य प्रमाणित करने तथा ग्रन्थ के नायक बीसलदेव चतुर्थ को मानने के लिये श्री सत्यजीवन वर्मा जी यह तर्क उपस्थित करते हैं कि "बीसलदेव के उड़ीसा जाने का समय यदि हम विक्रम संवत् १२०७–८ ही मानें तो उस समय उसके पुत्र अमर गांगेय का जन्म नहीं हुआ था, यह मानना पड़ेगा। और यदि हम उड़ीसा प्रवास के बाद बीसलदेव का लौटना संवत् १२१२ ही मानें, तो उस समय भी उसके पुत्र का होना नहीं मान सकते। सम्भव है कि उसके पुत्र का जन्म उसके पश्चात् हुआ हो। ऐसा हो भी सकता है, क्योंकि बीसलदेव के पश्चात् उसके पुत्र का कोई शिलालेख नहीं मिलता। इससे यह अनुमान होता है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र की मृत्यु अल्प काल ही में हुई होगी। बीसलदेव और उसके पुत्र दोनों की मृत्यु संवत् १२२१ और '२२४ के बीच किसी समय हुई, यह निश्चित है।[1] अब यदि अमर गांगेय की अवस्था मृत्यु के समय दस या बारह वर्ष मानी जाय, तो उसका जन्म १२१२ के बाद ही होगा। अतएव बीसलदेव रासो के निर्माण काल के समय बीसलदेव के पुत्र का जन्म नहीं हुआ था, इसीलिये उसे अपने भतीजे को राजभार सौंपना पड़ा था।

लेकिन इतिहास से यह बात सिद्ध होती है कि बीसलदेव चतुर्थ के, जिसकी मृत्यु सं० १२२० (ई० सन् ११६३) में हुई, बाद उसका पुत्र अमर गांगेय राजगद्दी पर बैठा। लेकिन जगद्देव के पुत्र पृथ्वी भट्ट (पृथ्वीराज द्वितीय) ने उससे राजगद्दी छीन ली और स्वयं राजा बन बैठा। मेवाड़ राज्य के जहाजपुर जिले के धौड़ गाँव के पास रूठी रानी के मन्दिर के स्तम्भ पर वि० संवत् १२२५ का एक लेख खुदा है। जिसमें पृथ्वीराज को अपने भुजबल से साकम्भरी के राजा को जीतने वाला लिखा है।[2] इससे यही सिद्ध होता है कि

१—बीसलदेव रासो—स० सत्यजीवन वर्मा—भूमिका पृ० २२।

२—अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव लेखक एच० बी० सारदा—पृ० १४५

वि० सं० १२२२ में जो कराड वीसलदेव चतुर्थ की मृत्यु के प्रायः पाँच या छः वर्षों के बाद आता है, पृथ्वी भट्ट ने अमर गांगेय से राज्य छीना। ऊपर कहा जा चुका है कि वीसलदेव चतुर्थ की मृत्यु सं० १२२० में हुई। अतः १२२१ से लेकर १२२५ तक अमर गांगेय ने राज्य किया और तब पृथ्वीभट्ट ने इससे राज्य छीना। इसमें संदेह नहीं कि राजगद्दी पर बैठने के समय अमर गांगेय नाबालिग था ऐसी दशा में उसका जन्म ही १२१२ में नहीं हुआ था यह कैसे माना जा सकता है। कल्पना के आधार पर यह कहना कि वीसलदेव चतुर्थ सं० १२०७ या १२०८ में उड़ीसा विजय करने गया और सं० १२१२ में वहाँ से लौटा ठीक नहीं है क्योंकि वीसलदेव चतुर्थ का समय १२१० से १२२० तक था। यदि किसी भी रूप में यह मान लिया जाय कि वीसलदेव उड़ीसा गया था तब भी यह मानना पड़ेगा कि उसका उड़ीसा गमन निश्चय ही सं० १२१० से लेकर १२२० के भीतर हुआ होगा। ऊपर कहा जा चुका है कि राजगद्दी पर बैठने के समय वीसलदेव चतुर्थ का पुत्र अमर गांगेय नाबालिग था। यदि उसकी नाबालिगी की अवस्था राजगद्दी पर बैठने के समय दस वर्ष की भी मान ली जाय तो भी यही बात सिद्ध होती है कि उसका जन्म वीसलदेव के उड़ीसा गमन के समय तक हो चुका था। ऐसी स्थिति में वीसलदेव का अपने पुत्र को राजगद्दी न सौंप कर भतीजे को राजगद्दी सौंप कर जाने की बात की कल्पना केवल कवि कल्पना मात्र है। फिर वीसलदेव चतुर्थ द्वारा उड़ीसा गमन के समय अपने भतीजे अर्थात् जगदेव के पुत्र पृथ्वीभट्ट को राज्य सौंपने के बात यों भी खरी नहीं उतरती कि जिस वीसलदेव ने अपने पिता की हत्या करने वाले अपने भाई जगदव से राज्य छीन लिया था और उसे देश निकाला कर दिया था वही वीसलदेव उसको या उसी के पुत्र को क्योंकर राज्य सौंप सकता था।

वीसलदेव रासो के दोनों रूपान्तरों में समान भाव से यह कथा पाई जाती है कि वीसलदेव उड़ीसा जाने के पूर्व राजमती से बातचीत करते समय उसे बारह वर्ष की गोरी कह कर सम्बोधित करता है। इस कथा का सम्बन्ध यद्यपि इतिहास से विशेष नहीं है फिर भी ऐतिहासिक रंग चढ़ाने के हेतु श्री सत्य जीवन जी वर्मा ने 'बारह बरस की गोरड़ी' का अर्थ युवती स्त्री से न लेकर यह माना है कि राजमती की अवस्था ब्याह के समय अल्प अर्थात् बारह वर्ष की थी क्योंकि 'हिन्दुओं में उस समय अधिकतर लोग 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी

टावयों व रोहियों पर अन्ध विश्वास करते थे।"[1] किन्तु जिस प्रसंग के साथ उपर्युक्त पंक्ति का उल्लेख है उससे तो यही सिद्ध होता है कि बीसलदेव राजमती के सौन्दर्य की ओर इंगित कर रहा है, न कि बारह वर्ष की अवस्था में उसके विवाह की ओर। बारह वर्ष की अवस्था का उल्लेख कवि इसलिए करता है कि इस अवस्था में नारी का सौन्दर्य एक विशेष प्रकार का होता है। यह अवस्था ऐसी होती है जब बाल्यावस्था का प्रस्थान तथा किशोरावस्था का आगमन होता है। और ऐसी स्थिति में सौन्दर्य का निखर कर मनमोहक हो उठना स्वाभाविक होता है। फिर कवि-जगत् तो इस अवस्था का सर्वदा प्रशंसक रहा है। अस्तु, इस अवस्था का उल्लेख तो ऐसा ज्ञात होता है कि कवि नाल्ह ने कवि परम्परा के निर्वाह के लिये ही किया है। अवस्था के क्रम को लेकर किसी ऐतिहासिक तथ्य से उसे जोड़ना उचित नहीं जान पड़ता और न तो इससे बीसलदेव चतुर्थ से कोई सम्बन्ध स्थापित कर ग्रन्थ की रचनातिथि वि० सं० १२१२ मानना ही उचित है।

बीसलदेव रासो की दोनों रूपान्तरों में समान रूप से पायी जाने वाली उपर्युक्त ऐतिहासिक घटनाओं के अतिरिक्त रूपान्तर न० २ में कुछ और ऐसी घटनाएँ हैं जिनको लोग इतिहास से सम्बन्धित बताते हैं। ऐसी घटनाओं में से प्रथम घटना बीसलदेव द्वारा अपने पिता के श्राद्ध और पिंडदान की है जिसे वह उड़ीसा जाने के पूर्व करता है। इस घटना के जरिये श्री सत्यजीवन जी वर्मा ने यह सिद्ध किया है कि बीसलदेव का उड़ीसा प्रवास बारह वर्ष नहीं माना जा सकता। कवि ने यों ही बारह वर्ष लिख दिया है जैसे राम के प्रवास के चौदह वर्ष।[2] निःसन्देह इस सम्बन्ध में श्री सत्यजीवन जी वर्मा द्वारा उपस्थित किया हुआ तर्क स्तुत्य है लेकिन इस घटना का इतिहास के साथ योग करने का उनका प्रयास निष्फल परिश्रम है। इस सम्बन्ध में उनका यह मानना कि बीसलदेव का उड़ीसा गमन १२०७ या १२०८ में हुआ, इतिहास की ग्रन्थियों को खोलने के बजाय और कस देता है।

दूसरी घटना बीसलदेव की अवस्था से सम्बन्धित है जो बीसलदेव के उड़ीसा गमन के पश्चात् राजमती द्वारा पांडे को पत्र लेकर उड़ीसा जाते समय

१—नोट—यह अन्धविश्वास हिन्दुओं में मुस्लिम काल से प्रारम्भ हुआ है।
२—बीसलदेव रासो—स० सत्यजीवन वर्मा—पृ० १८ भूमिका।

बताया जाता है। राजमती पति से कहती है कि उसके प्रिय को पहचानने का निशान यही है कि उसका प्रिय बीसलदेव बारह वर्ष का जवान है। यद्यपि बीसलदेव की यह अवस्था श्री सत्यजीवन जी वर्मा को किसी अंश तक मान्य नहीं है फिर भी इन्हें कवि नाल्ह के कथन में कुछ सत्य का अंश दिखाई पड़ता है। वे कहते हैं कि "बीसलदेव अधिक अवस्था को प्राप्त होकर नहीं मरा, *क्योंकि उसका पुत्र उसकी मृत्यु के समय अल्प अवस्था का था।*"[1] इसमें सन्देह नहीं कि बीसलदेव के पुत्र अमरगंगेय की मृत्यु अल्प अवस्था में हुई जैसा कि इतिहास से सिद्ध होता है लेकिन इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि बीसलदेव की अवस्था भी छोटी थी उचित नहीं जान पड़ता। बीसलदेव की अवस्था का हिसाब किसी हद तक लगाना सम्भव था यदि हमें इतिहास में उसके पिता की अवस्था का कोई उल्लेख मिलता। यों इतिहास में अर्णोराज (बीसलदेव चतुर्थ के पिता) का राज्यकाल वि० सं० ११९० से १२०८ तक माना गया है *जो गणना करने पर १९ वर्ष होता है। और इसी प्रकार बीसलदेव चतुर्थ का भी* राज्यकाल वि० सं० १२१० से १२२१ तक माना जाता है जो गणना करने पर ११ वर्ष होता है। यदि बीसलदेव रासो में दी हुई बीसलदेव की अवस्था उड़ीसा गमन के समय २२ वर्ष की मानी जाय तो यह मानना पड़ेगा कि उसका जन्म वि० सं० ११९० से पूर्व हुआ होगा जो कि पूर्ण रूप से कल्पना पर आधारित होगा। और यदि उसका जन्म काल उसके पिता के राज्यारम्भ में माना जाय तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उसकी मृत्यु २२ वर्ष की अवस्था में हुई होगी। ऐसी स्थिति में बारह वर्षों तक उसका उड़ीसा में रहना अथवा उसकी अवस्था का २२ वर्ष का उल्लेख सब कुछ कवि कल्पना ठहरता है। उचित तो यह जान पड़ता है कि २२ वर्ष की अवस्था के उल्लेख से कवि का तात्पर्य उसकी युवावस्था से है।

तीसरा प्रसंग बीसलदेव रासो में आनासागर के उल्लेख का है जो कि बीसलदेव को 'धार' से लौटते समय रास्ते में मिला था। इस घटना को सत्य का रूप देकर बीसलदेव रासो के नायक को बीसलदेव चतुर्थ बताने वाले विद्वानों ने यह तर्क उपस्थित किया है कि चूँकि आनासागर बीसलदेव चतुर्थ के पिता अर्णोराज ने बनवाया था और यह बीसलदेव तृतीय के समय वर्तमान नहीं था इसलिये बीसलदेव रासो के नायक बीसलदेव चतुर्थ थे न कि बीसलदेव

१— बीसलदेव रासो स० सत्यजीवन वर्मा—पृ० २४ भूमिका।

तृतीय। इतिहास में अवश्य आनासागर के लिये यह लिखा गया है कि इसे सम्राट् पृथ्वीराज के दादा अर्णोराज या अनाजी ने बनवाया था।[1] लेकिन डा० श्यामसुन्दरदास जी का कहना है कि अनाजी द्वारा बनवाया गया अनासागर उस अनासागर से बिल्कुल भिन्न है जहाँ बीसलदेव ने धार से लौटते समय विश्राम किया था। धार से लौटते समय बीसलदेव ने जिस अनासागर पर विश्राम किया था वह अनासागर हिन्दुओं की 'अन्ना' या 'अन्नपूर्णादेवी' के नाम पर एक प्राकृतिक झील है जिसके किनारे पुराकाल में 'बाबा' ऋषि रहते थे।[2] बीसलदेव रासो में उल्लिखित 'अनासागर' के वाद्-विवाद में पड़ना उस समय बिल्कुल निरर्थक जान पड़ता है जब हम यह देखते हैं कि रूपान्तर नं० २ के जिस सर्ग (चतुर्थ सर्ग) में इसका उल्लेख है वह पूर्ण सर्ग ही प्रक्षिप्त है।

उपर्युक्त ऐतिहासिक घटनाओं के विवेचन से निष्कर्ष यह निकलता है कि बीसलदेव रासो में उल्लिखित घटनाओं का सम्बन्ध इतिहास से बहुत कम है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि ग्रन्थ के रचयिता को इतिहास का ज्ञान यथेष्ट न था। अतः इन घटनाओं के आधार पर बीसलदेव रासो के निर्माणकाल का निर्णय करना खतरे से खाली नहीं।

काव्यागत कथा एवं काव्य का रचयिता

नारी के चरित्र को समझना साधारण मनुष्यों के लिए तो दूर काव्य के मूल वेदों के रचने वाले कवियों[3] के लिए भी एक समस्या है। ऐसा प्रतीत होता है कि नारी के चरित्र की विषमताओं को देखकर ही किसी कवि ने कहा था कि "स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः।" बीसलदेव रासो की कथा भी रानी राजमती के चरित्रविशेष का वह उद्घाटन है जिसके कारण चौहानवंशी पराक्रमी राजा बीसलदेव को भी अपना राजपाट छोड़ कर बारह वर्षों तक बाहर रहना पड़ा था। नारी की वाणी ही उसके द्वारा प्राप्त किये हुए सारे सद्गुणों को नष्ट कर देती है। कवि नारद कहता है कि :—

१—Ajmer Historical & Descriptive—H B Sarada P 60

२—हिन्दी हस्तलिखित खोज ग्रन्थों की रिपोर्ट सन् १९०१ पृ० ७८।

३—वेद काव्य का मूल है, अतएव सच्चिदानन्द घन श्री परमेश्वर द्वारा ही लोक में सबसे प्रथम इसकी प्रवृत्ति हुई है।

काव्यकल्पद्रुम-प्रथम भाग पृ० ८.

स्त्रीय चरित्र घण रूप लहइ।
एक ही अषर सरब विणास ॥

कवि कथा का प्रारम्भ गणेश की वन्दना और सरस्वती से यह वर मांगते हुए करता है कि वह उनकी रूठी हुई काव्यशक्ति को उसे लौटा दें ताकि वह ग्रन्थ की रचना करने में समर्थ हो सके। तत्पश्चात् कवि राजा भोज की सभा का वर्णन करता है। महाराज भोज की रानी उनसे प्रस्ताव करती है कि वे अपने अच्छे दिन रहते राजकुमारी का विवाह कर दें। रानी के इस प्रस्तावानुसार राजा ज्योतिषी को बुलाकर अपनी कन्या के लिये सुयोग्य वर खोजने के लिये आग्रह और निवेदन करता है,[1] तथा यह भी कहता है कि वह (ज्योतिषी) वीर विग्रहराज बीसलदेव चौहान को, जो हर प्रकार से उसकी कन्या के योग्य है, उसकी कन्या के लिये वर चुने। ज्योतिषी द्वारा शुभ सूचना प्राप्त होने पर राजा भोज लग्न निश्चित करता है और लग्न की सुपारी ब्राह्मण और भाट के हाथ अजमेरगढ़ भेजता है। अजमेरगढ़ पहुँचकर ब्राह्मण लग्न की सुपारी बीसलदेव को देता है जिसे प्राप्त कर बीसलदेव हर्षित होता है और कहता है कि परमार जाति की कन्या के कुल में आने पर चौहान कुल का उद्धार हो जायगा। यह कहकर बीसलदेव ब्राह्मण और भाट को नाना प्रकार की बहुमूल्य भेंट देकर उनको विदा करता है।

निश्चित तिथि पर बारात अजमेरगढ़ से प्रस्थान करती है। बारात में इतने अधिक घोड़े, हाथी, सैनिक तथा बराती हैं कि उनके पदों की धूल, उड़ने, से सूर्य आच्छादित हो जाता है और इस बड़ी बारात के साथ राजा बीसलदेव धार नगरी में पहुँचता है। राजमती राजा बीसलदेव को देखकर बहुत हर्षित होती है तथा अपनी सखियों से कहती है कि सम्पूर्ण कलाओं से युक्त पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति, स्वर्ग के देवताओं और मनुष्यों को मोहित करने वाले तथा गोकुल में प्रत्यक्ष गोविंद की भाँति बीसलदेव की आरती उतारो

१—रूपान्तर न० २ में राजा भोज की अनुमति से उनका पुरोहित वर ढूंढता हुआ चारों ओर जाता है। जैसलमेर, टोडा, अयोध्या, दिल्ली, मथुरा आदि स्थानों में जाकर राजमती के लिये वर ढूंढता है लेकिन उसे राजमती के अनुरूप कोई वर इन स्थानों में नहीं मिलता। तब वह अजमेर जाता है और बीसलराय को देखता है। इन्हें देखकर वह इनको राजमती के उपयुक्त, हर प्रकार से पाता है और इसकी सूचना राजा भोज को देता है।

जाय। इसी बीच बारात राजद्वार पर आती है। राजा बीसलदेव तोरण के नीचे सूर्य के समान उदित होता है और सजी-धजी स्त्रियाँ उसकी आरती उतारती हैं। शुभ मुहूर्त में राजा बीसलदेव और कुमारी राजमती का पाणिग्रहण सम्पन्न होता है। विवाह-मण्डप में बीसलदेव और राजमती कृष्ण और रुक्मिणी की तरह सुशोभित होते हैं।

मालवा देश में बड़े उत्सव मनाये जाते हैं। भाँवर के समय पहले फेरे के पायज में बीसलदेव को राजा भोज आलीसर (स्थान विशेष) तथा मालदेश (स्थान विशेष) देता है। दूसरे फेरे पर राजकुमारी की माता भानुमती अपने दामाद को धर्म, द्रव्य का भण्डार, सपादलक्ष देश, तोड़ा, टडक, बूँदी और कुडालदेश देती है। तीसरे फेरे पर राजा भोज राजमती के साथ ताजी और केकाण (घोड़े) मंडोवर का देश तथा समुद्र के साथ सोरठ और समस्त गुजरात देता है।[1] पाणिग्रहण सानन्द समाप्त होता है। बीसलदेव अपनी सास को नमस्कार करने के लिये जाता है और रानी भानुमती 'अजमेर' में अविचल राज्य करने का आशीर्वाद उसको देती हैं।

पहिरावनी (वस्त्र भूषणादि पहनाने का रस्म) होती है। सुहावनी धार नगरी को छोड़कर धार का दीपक (राजमती) अजमेर गढ़ को प्रदीप्त करने चलता है।[2] बारात के लौटने पर अजमेर गढ़ में बड़ा हर्ष मनाया जाता है और राजा अपने मंत्री से कहता है कि "या तो मुझसे सृष्टिकर्ता प्रसन्न हुआ या मैंने विधि का लिखा प्राप्त किया, जो मैं राजा भोज की चौरी पर चढ़ा अर्थात् राजा भोज की कन्या का पाणिग्रहण किया।"[3]

१—नोट—रूपान्तर न० २ में फेरों के समय पायज स्वरूप दिये हुए स्थानों के नाम में अन्तर है। इस रूपान्तर के अनुसार प्रथम फेरे में 'आलीसर' और कुडाल देश देने का, दूसरे फेरे में घोड़े, धन, मडोवर, सौराष्ट्र और गुजरात देने का, तीसरे फेरे में साभर, तोड़ा, और टोंक देने का तथा चौथे फेरे में चित्तौड़ देने का वर्णन है। रूपान्तर न० १ में चौथे फेरे का कोई वर्णन ही नहीं है।

२—रूपान्तर न० २ में विवाह के पश्चात् अजमेर लौटते समय रास्ते में 'अनासागर' मिलने का उल्लेख है। लेकिन ऐसा कोई उल्लेख रूपान्तर न० १ में नहीं है।

३—नोट—रूपान्तर न० २ में प्रथम खण्ड की कथा यहीं समाप्त होती है और द्वितीय खण्ड की कथा कवि पुन गणेश की वदना करके आरम्भ करता है।

एक दिन राजा तथा उसकी पत्नी रानी राजमती के विवाह के सम्बन्ध में रानी राजमती तथा बीसलदेव में वाद विवाद चल पड़ता है। राजा गर्वपूर्वक कहता है कि उसके समान दूसरा भूपाल नहीं है। रानी इस गर्वोक्ति को सुनकर कहती है कि उसका यह गर्व व्यर्थ है, क्योंकि उससे विशेष धनी तो उड़ीसा का राजा है जिसके राज्य में हीरे ही हीरे खानों से निकलते हैं। उड़ीसा देश की यह बातें सुनकर राजा रानी से कहता है कि उसका (रानी का) जन्म तो जैसलमेर में हुआ और विवाह अजमेर में, अतएव वह उड़ीसा देश के सम्बन्ध में उपर्युक्त बातें क्योंकर जानती है। इस विषय में जब तक वह नहीं बतायेगी तबतक वह (राजा) अन्न-पानी नहीं ग्रहण करेगा। राजा के इस आग्रह पर रानी अपने पूर्व जन्म की कथा बतलाती है कि कैसे वह पूर्व जन्म में हरिणी के रूप में उड़ीसा में रहती थी और कैसे एक अहेरी द्वारा मारे जाने पर उसने उड़ीसा में फिर जन्म न देने की ईश से प्रार्थना की थी तथा उसका बाद मारवाड़ में जन्म हुआ था।

रानी की यह बात सुनकर राजा कहता है कि "हे गोरी तूने उपर्युक्त बातें कहकर मेरी निंदा की। अत अब मैं तुझ छोड़कर बारह वर्षों तक प्रवास करूँगा। ताकि मैं भी हीरे की खान अपने घर ला सकूँ। राजा के इन वचनों को सुनकर रानी बड़ी दुखी होती है और कवि इस स्थान पर ऐसी परिस्थितियों के उपस्थित होने पर नारी द्वारा अपने पति को प्रवास से रोकने के हेतु अपनाये गये सभी उपायों का वर्णन रानी राजमती से करवाता है। लेकिन राजा उसकी किसी बात पर ध्यान नहीं देता और प्रवास के लिये हठ करता है। अन्त में राजमती की भावज भी राजा को अनेक प्रकार से समझा बुझा कर और कुछ कड़ुवी बातें कहकर उसे परदेश गमन से रोकने की चेष्टा करती है। फिर भी राजा परदेश गमन का हठ नहीं त्यागता।

राजा ज्योतिषी को बुलाकर यात्रा के लिये शुभ दिन और मुहूर्त पूछता है। लेकिन रानी ज्योतिषी से इसके पहले ही राजा की यात्रा का मुहूर्त चार महीने पश्चात् बतलाने का आग्रह कर चुकी थी क्योंकि उसे पूर्ण विश्वास था कि इन चार महीनों के अन्दर वह अपने पति को परदेश जाने से रोक सकने में समर्थ हो सकेगी। ज्योतिषी रानी के आग्रहानुसार ही राजा को चार महीने पश्चात् का यात्रा का मुहूर्त बतलाता है।

कार्तिक मास में ज्योतिषी द्वारा बताये गये शुभ मुहूर्त में राजा परदेश गमन करता है। भीगे हुए नेत्रों से रानी राजा को विदा करती है और नीति की शिक्षा देती है। राजा को विदा करके रानी की अवस्था बड़ी दुखद हो जाती

है। राजा के विरह में उसे अपने तन-मन का भी स्मरण नहीं रहता। सखियाँ उसे बहुत समझाती हैं लेकिन उसकी विरह वेदना किसी प्रकार कम नहीं होती।[1] कवि इसके पश्चात् बारह महीनों का वर्णन करते हुए प्रत्येक महीने में रानी के विरह वेदना की विभिन्न परिस्थितियों का मर्मस्पर्शी वर्णन करता है। रानी की दशा तो राजा के विरह में इधर खराब होती है उधर राजा को रास्ते में शुभ शकुन होते हैं और वह अपनी यात्रा निर्विघ्न समाप्त करता चलता है।

क्रमशः समय व्यतीत होता रहता है लेकिन रानी की व्यथा बढ़ती ही जाती है। उसके यौवन की दावाग्नि विरहाग्नि को द्विगुणित कर देती है। अन्त में वह राजा के पास एक दूत भेजती है। दूत को अपने पति की पहचान बताती है और एक मर्मस्पर्शी पत्र राजा को देने के लिये उसे देती है। उपालंभ और दुःख से यह पत्र परिपूर्ण है। दूत पत्र लेकर राजमती को वचन देता है कि वह दुःख न करे क्योंकि वह उसके स्वामी को अवश्य लेकर लौटेगा। रानी उसे शकुन की सामग्री देती और विदा करती है।

सातवें महीने दूत उड़ीसा पहुँचता है। राजा को रानी का पत्र देता है और कहता है कि "रानी राजमती ने यह संदेश भेजा है कि हे स्वामी! तुम घर आओ। क्योंकि पुनः इस जीवन में यौवन लाभ कहां करोगे?" पुनः दूत कहता है कि "हे राजा, यदि तुम आज नहीं चलते हो तो उस स्त्री का हृदय फट जायगा और वह (राजमती) मर जायगी।" राजा पंडित के इन शब्दों को सुनकर व्याकुल हो जाता है और उड़ीसा के राजा से घर लौटने की अनुमति चाहता है। उड़ीसा का राजा अपनी रानी को बुलाकर बीसलदेव के स्वदेश गमन की बात कहता है। रानी अनेक प्रकार से बीसलदेव को घर जाने से रोकती है। लेकिन बीसलदेव किसी प्रकार भी अब रहने को तैयार नहीं होता। तब उड़ीसा का राजा बीसलदेव से कहता है कि उसके नगर में एक ऐसा अपूर्व योगी है जो बहुत शीघ्र सांभर जा सकता है। बीसलदेव इस समाचार को सुनकर एक दिन के लिए उड़ीसा में रुक जाता है और उस योगी के हाथ राजमती के पास अपने आने का समाचार भेजता है।

योगी राजा बीसलदेव का पत्र लेकर उड़ीसा से रवाना होता है और राजमती की बायीं बाँह तथा आँख फड़क-फड़क कर इस बात की सूचना देती हैं कि या तो उसके स्वामी मिलेंगे या उनका कोई प्रेमपूर्ण पत्र ही प्राप्त होगा। योगी-

---

१ नोट—रूपान्तर नं० २ में द्वितीय खण्ड की कथा यहीं समाप्त होती है।

राजमती के शुभ शकुनों को सत्य प्रमाणित करता हुआ अजमेर पहुँच जाता है और राजमती को राजा का पत्र देता है। पत्र को राजमती गले से लगा लेती है और योगी को अच्छे भोजन आदि कराकर अपने प्रियतम की बातें पूछती है। योगी रानी को आज के तीसरे दिन राजा के अजमेर पहुँचने का शुभ समाचार देता है और अनेक प्रकार से रानी द्वारा पुरस्कृत होकर अपने स्थान को लौटता है।

योगी के कथनानुसार राजा बीसलदेव तीसरे दिन अजमेर लौटता है। अजमेर में उस दिन बड़ी खुशियाँ मनायी जाती हैं। रानी राजमती के हर्ष की कोई सीमा नहीं रहती और वह यह सोचकर अपने मन में और भी हर्षित होती है कि पति के प्रवास की इस लम्बी अवधि में उसे कोई कलंक नहीं लगा जो कि इस यौवन और बढ़ती हुई विरह ज्वाला में लगना बहुत सहज और स्वाभाविक था। कवि इसके पश्चात् कुछ पंक्तियों में प्रेम और प्रेमिका की उन दशाओं तथा बातों का वर्णन बड़े स्वाभाविक रूप से करता है जो प्रायः लम्बी अवधि के प्रवास के पश्चात् प्रेमी और प्रेमिका में होती हैं। अन्तिम पंक्तियों में कवि यह शुभकामना प्रकट करते हुए कि जिस प्रकार रानी राजा से मिली उसी प्रकार संसार में सभी मिलें ग्रन्थ समाप्त करता है।

प्रथम रूपान्तर की कथा उपर्युक्त स्थान पर शेष हो जाती है। लेकिन द्वितीय रूपान्तर में इसके पश्चात् चतुर्थ खण्ड की कथा प्रारम्भ होती है। इस खण्ड में कवि हनुमान की वन्दना करके धार नगरी से राजा भोज का आना वर्णन करता है। बीसलदेव के अजमेर पहुँचने पर उसका भतीजा राजा बीसलदेव का स्वागत करता है। राजा उसे युवराज के पद पर स्थापित कर चित्तौड़ में उसे रहने का स्थान देता है। फिर राजा भोज को अजमेर आने के लिये पुरोहित के हाथ निमन्त्रण भेजता है। राजा भोज बीसलदेव के निमन्त्रण पर अजमेर आता है। दोनों राजा मिलकर अतीव प्रसन्न होते हैं। अजमेर में भी आनन्द मनाया जाता है। राजा भोज कुछ दिनों तक अजमेर में रहकर अपनी राजधानी को लौट जाता है, और राजमती को अपने साथ ले जाता है। तीन महीने पश्चात् फिर रानी राजमती को लेने बीसलदेव धार जाता है और रानी को लेकर वापस लौटता है। चतुर्थ खण्ड की कथा कवि यहीं पर यह आशीर्वाद देकर समाप्त करता है कि "जब तक पृथ्वी पर सूर्य उदय होते रहें, जब तक गंगा में जल प्रवाहित होता रहे, जबतक पृथ्वी पर जलाशय रहें, तबतक राजा तुम अजमेर पर अविचल राज्य करते रहो।"

बीसलदेव रासो का रचयिता

बीसलदेव रासो के रचना काल की गुत्थी को सुलझाना जितना जटिल है उससे कम जटिल उसके प्रणेता के प्रादुर्भाव काल नाम और जाति की गुत्थी का सुलझाना नहीं। बीसलदेव रासो की यद्यपि अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्य हैं लेकिन उनमें से किसी भी प्रति में कवि के प्रादुर्भाव-काल का ऐसा संकेत नहीं मिलता जिसके आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सके कि कवि का जन्म अमुक तिथि को हुआ था। इन हस्तलिखित प्रतियों में ग्रन्थ का रचना-काल अवश्य दिया हुआ है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि ग्रन्थों के रचयिता ने भी उसी काल में जन्म ग्रहण किया होगा; लेकिन इस बात को स्वीकार करने में सबसे बड़ी समस्या हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त रचना-काल की वे तिथियाँ हैं जो विभिन्न प्रतियों में विभिन्न रूपों में पायी जाती हैं। समस्त हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त रचना तिथि के आधार पर मुख्यतः प्रतियों के दो विभिन्न भाग किये जा सकते हैं—प्रथम भाग में वे सभी प्रतियाँ आ जायँगी जिनमें रचना-काल का उल्लेख ११वीं शती है, और दूसरे भाग में अन्य वे सभी प्रतियाँ आयेंगी जिनका रचना-काल १३वीं शती ठहरता है। जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अस्तु ऐसी परिस्थिति में कवि का जन्म काल ११वीं और १३वीं शती दोनों मानना पड़ेगा, जिसे स्वीकार करना सम्भव नहीं। तब यदि रचना-तिथि का निर्णय कर लिया जाय तो कवि के जन्म काल का भी निर्णय करना सहज हो जायगा।

रचना-तिथि का निर्णय ग्रन्थ में प्राप्त ऐतिहासिक तत्वों और भाषा के आधार पर किया गया है, तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि इसकी भाषा ११००-१२०० वि० सं० की है और इसका नायक बीसलदेव तृतीय है। लेकिन इस निष्कर्ष पर पहुँच कर भी कवि के जन्म तिथि की समस्या ज्यों की त्यों रह जाती है क्योंकि गणना के अनुसार हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त रचना-तिथियों में से सर्वाधिक प्रामाणिक तिथि वि० सं० १२१२ ठहरती है। इसी समस्या को सुलझाने के लिए सम्भवतः श्री सत्य जीवन जी वर्मा ने ग्रन्थकार को बीसलदेव चतुर्थ विग्रहराज चतुर्थ का, जिनका समय वि० सं० १२१०-१२२० माना जाता है, समकालीन माना है। प्रगट किये गये अपने इस मत के प्रमाण में श्री वर्मा जी ने दो तर्क उपस्थित किये हैं—पहला तो ग्रन्थ में प्रायः सर्वत्र वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया जाना और दूसरा रचना-तिथि के सम्बन्ध में आयी

हुई। ति द्वादह सौ बहोत्तर का अर्थ १२१२ लगाया[1]। लेकिन इनके इन दोनों तर्कों में से प्रथम तर्क का खण्डन निम्नलिखित विद्वानों ने इस प्रकार किया है। प्रसिद्ध विद्वान श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसका खण्डन करते हुए कहा है कि भाषा का प्रयोग कवि की रुचि पर निर्भर है। जैनों के धर्मग्रन्थ प्राकृत भाषा में होने के कारण जैन लेखक अपने काव्यों में प्राकृत शब्दों की भरमार करते रहे हैं। जिससे उनकी भाषा दुरूह हो गयी है। चारण, भाट आदि प्राकृत से अधिक परिचित न होने के कारण अपनी रचनाएँ प्रचलित भाषा में करते थे, जिससे इन दोनों प्रकार के लेखकों की पुस्तकों की भाषा में अन्तर होना स्वाभाविक ही है। भाषा की कसौटी सदियाँ नहीं हैं। एक ही समय में कोई सरल भाषा में अपनी रचना करता है तो कोई कठिन भाषा का प्रयोग करता है[2]।

डा० उदयनारायण तिवारी ने भी ओझा जी के मत को पुष्ट किया है[3] और यह भी कहा है कि जहाँ तक क्रियाओं का सम्बन्ध है अनेक ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं जिनमें समकालीन न होने पर भी वर्तमानकालिक क्रियाओं का प्रयोग मिलता है। प्राय घटनाओं को सत्य का रूप देने के लिये ही कवियों ने ऐसा किया है।

श्री वर्मा जी का दूसरा तर्क जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है कुछ हद तक ठीक है क्योंकि वि० सं० १२१२ की गणना करने पर जेठ वदी नवमी को बुधवार पड़ता है। लेकिन इस तिथि और सवत् को ठीक मानने का यह अर्थ नहीं कि इस रासो के रचयिता ने बीसलदेव चतुर्थ के सम्बन्ध में कहा है और ग्रन्थ का नायक विग्रहराज चतुर्थ है क्योंकि ग्रन्थ से पायी गयी कथा इस बीसलदेव से सम्बन्धित नहीं है वरन ऐतिहासिक आधार पर कथा का सम्बन्ध तृतीय बीसलदेव से है।

अस्तु, उपर्युक्त सभी प्रमाणों द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता का प्रादुर्भाव-काल १२वीं शती का पूर्वार्द्ध था। उसकी भाषा प्राचीन थी अर्थात ११००-१२०० वि० सं० की थी तथा उसके ग्रन्थ के नायक थे बीसलदेव। तृतीय अन्त साक्ष्य के अभाव में जहाँ कवि के प्रादुर्भाव-काल का निर्णय करना जटिल है वहीं उसकी रचना में यत्र तत्र उसके नाम के उल्लेख के कारण यह सिद्ध होता है कि इस रासो की रचना करने वाला कोई नरपति

१—बीसलदेव रासो—पृ० ७।

२—नागरीप्रचारिणी पत्रिका—स० १९६५ पृ० १०१।

३—वीर काव्य पृ० २००।

नामक कवि था। लेकिन इस नाम के सम्बन्ध में भी डॉ० उदयनारायणजी तिवारी तथा श्री सत्यजीवन जी वर्मा जैसे विद्वानों का मत है कि नरपति कवि का मुख्य नाम तथा नाल्ह कौटुम्बिक नाम प्रतीत होता है।[१]

इसी प्रकार रासो की निम्न दो पंक्तियों को उद्धृत कर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि *नरपति और नाल्ह दो विभिन्न व्यक्ति थे और नरपति द्वारा गाई गई इस रासो को नाल्ह ने फिर से गाया।*

कर जोडि नरपति कहई।
नाल्ह कहई जिण लावई खोड़ि॥

कवि के नाम के सम्बन्ध में ये भ्रम सं० १६६९ में लिखी गई प्रति तथा इससे मिलती जुलती अन्य प्रतियों में कवि के दोनों नामों के उल्लेख के कारण उत्पन्न हो गये हैं लेकिन ऐसी प्रतियों में चूँकि बीसलदेव तृतीय और रानी राजमती की प्रेमगाथा चार खण्डों में गायी गयी है इसलिये इनकी प्रामाणिकता में सन्देह उत्पन्न होता है। और, तब इन प्रतियों के आधार पर नरपति और नाल्ह को दो विभिन्न कवि मानना उपयुक्त न होगा। उपर्युक्त दोनों पंक्तियाँ भी सं० १६६९ में लिखी गई प्रति से उद्धृत की गई हैं। इन पंक्तियों का अर्थ साधारण रूप से एक ही व्यक्ति के नाम का बोधक है; खींच तान कर इसका अर्थ दो विभिन्न व्यक्तियों के लिये लगा भले ही लिया जाय। फिर १६६९ वाली प्रति से अधिक प्रामाणिक और प्राचीन प्रति १६३३ वाली प्रति के, जो अबतक की प्राप्त प्रतियों में प्राचीनतम है, आधार पर यही कहा जा सकता है कि नरपति और नाल्ह दोनों एक ही व्यक्ति थे। इस प्रति में कवि का नाम 'नरपति' पहले पद के अतिरिक्त और कहीं नहीं आता।[२]

इसी प्रकार नाल्ह भी इसकी पद्य-संख्या ५,२ और इसके अतिरिक्त कहीं नहीं मिलता[३] जसके द्वारा यही सिद्ध होता है कि कवि का प्रचलित नाम नाल्ह था।

१—वीरकाव्य पृ० १६०।

२—करि जोडि नरपति भणाई।
जाणि करि रोइणी निमि तपउ सूरि॥१॥

३—तइ तूठी अक्षर जुड़इ।
नाल्ह रसायण रस भरी गाइ।
तुणी कई सारदा त्रिभुवन माय॥५॥
संवत् सहस सात्ति हित्तरइ जाणि।
नाल्ह कवीसरि कही अमृत वाणि॥२४॥

क्योंकि प्रचलित होने के कारण ही इस नाम का उपयोग एक स्थान से अधिक स्थानों में किया गया है और नरपति कवि का उपनाम इसलिये प्रतीत होता है कि इसका प्रयोग केवल एक स्थान पर हुआ है और वह भी हुआ केवल तुक के मेल के लिये ही।

कवि का नरपति नाम 'उपनाम' कतिपय विद्वानों में यह भ्रम उत्पन्न किये हुए है कि कवि कोई राजा था।[1] ऐसे भ्रम का कारण केवल एक यही हो सकता है कि नरपति का शाब्दिक अर्थ राजा होता है। लेकिन जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस शब्द का प्रयोग प्राप्त प्रतियों में प्राचीनतम प्रति में केवल एक स्थान पर हुआ है और उस स्थान पर इसका अर्थ कदापि राजा नहीं हो सकता, इसलिये इस शब्द का अर्थ राजा लगाकर नाल्ह और नरपति को दो विभिन्न व्यक्ति मानना उचित न होगा। लेकिन यदि किसी कारणवश नरपति का अर्थ राजा लगाना ही, विद्वानों द्वारा उचित समझा जाय तब भी श्रेयस्कर यही होगा कि नाल्ह और नरपति को दो विभिन्न व्यक्ति न मानकर नरपति को नाल्ह की उपाधि समझी जाय, जो बहुत कुछ सम्भव है कि उसे प्राप्त हुई होगी उसके गुणों के कारण। और यों भी कवि नरपुंगव तो होते ही हैं।

कवि की जाति

कवि के नाम की तरह कवि की जाति के सम्बन्ध में भी विद्वानों के विभिन्न मत हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार कवि भाट जाति का था।[2] श्रीसत्य-जीवन वर्मा जी भी इसी मत को पुष्ट करते हुए कहते हैं कि नरपति साधारण भाट था जो इधर उधर तुकबन्दियाँ करके गाता फिरता था। और अपने इस मत की पुष्टि में वे डा० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा द्वारा प्राप्त एक पत्र का उल्लेख करते हैं *जिसमें डा० ओझा ने उन्हें लिखा है कि राजपूतों में अभी तक नरपति,* महीपति आदि नाम मिलते हैं, जिन्हें' अब नापा, महपा कहते हैं[3] किन्तु इस

१—सेलेक्शन्स फ्रॉम हिन्दी लिटरेचर—लाला सीताराम बी० ए०—पृ० ३८–३९।

२—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २७–२८।

३—बीसलदेव रासो—सं० सत्यजीवन वर्मा—पृ० ४५ भूमिका।

मत का खण्डन श्री अगरचन्द जी नाहटा[1] तथा डा० उदयनारायण जी तिवारी[2] ने यह कह कर किया है कि ग्रन्थ में उसे व्यास या जोइसी लिखा गया है। राजपूताने में ये दोनों जातियाँ ब्राह्मण वर्ग के अन्तर्गत हैं। हमें नाल्ह ब्राह्मण ही जान पड़ता है। ग्रन्थ की प्राप्य प्राचीनतम प्रति सं० १६३३ में इसी शब्द का उल्लेख पद्य संख्या ४१, २४४ आदि कई पदों में है।[3] यह शब्द संस्कृत शब्द 'ज्योतिः' का अपभ्रंश है। ज्योतिषी किस जाति के होते थे इस सम्बन्ध में सर एथेलस्टन बेन्स का मत है कि "ज्योतिषी चूँकि ब्राह्मण जाति के ही होते हैं इसलिये जनगणना के समय इनकी पृथक् गणना नहीं होती है। ये राजाओं और महाराजाओं द्वारा सर्वदा सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं तथा इनके जीवन-यापन का प्रबन्ध भी इन्हीं राजाओं और महाराजाओं द्वारा राज्य की ओर से होता है। इनका कार्य जन्मपत्री बनाना और गार्हस्थ्य जीवन-सम्बन्धी प्रत्येक कार्य के लिये शुभ मुहूर्त आदि बताना होता है। इनके अतिरिक्त ज्योतिषियों का एक वर्ग और होता है जो 'जोशी' कहलाता है। ये अपना जीवननिर्वाह हाथरेखा और भाग्यरेखा की गणना, दुष्ट ग्रहों के लिये मास दान तथा ग्रहण आदि के अवसर पर मास दान से करते हैं। गणना के समय इनका पृथक् उल्लेख यही सिद्ध करता है कि ये किसी जातिविशेष के नहीं होते हैं। इस वर्ग का निर्माण कई जातियों के मिश्रण के फलस्वरूप हुआ है।

सर बेन्स द्वारा दी गयी ज्योतिषियों की जाति की उपर्युक्त कसौटी पर यदि नाल्ह की जाति को कसा जाय तो यह स्पष्ट सिद्ध होगा कि वह ब्राह्मण था। जोइसी शब्द के उल्लेख से तो उसका ब्राह्मण होना स्पष्ट है ही इसके अतिरिक्त भी उसके काव्य में आयी हुई निम्न पंक्तियाँ यही सिद्ध करती हैं कि वह ज्योतिष विद्या का ज्ञाता था। काव्य प्रारम्भ करते ही वह कहता है कि

> आणि करि रोहणी जिमि तपइ सूरि।
> भवग नइ देवहरे रवि तपइ ॥१॥

१—राजस्थानी—भाग ३, अंक ३—पृ० २१।

२—वीर काव्य—पृ० १८०।

३—रोहनी नक्षत्र सोहामणउ।
 सो दिन गिणि जोइसी जोडइ रास॥
 "सुदिन देई म्हाका जोइसी।
 कादि पतइउ अरू बोलिमइ साची।"

और इस प्रकार वह अपने ज्योतिष ज्ञान को प्रकट करते हुए उस ऐश्वर्यात्मक रोहिणी नक्षत्र की ओर संकेत करता है जो क्रान्ति वृत्त का ही एक भाग है और जिसका स्पर्शात्मक संबंध सूर्य के साथ प्रतिवर्ष एक बार होता ही रहता है और जिसका फल शास्त्रों में प्रायः शुभ माना गया है। इस प्रकार जहाँ कवि ने अपने ज्योतिष-ज्ञान को प्रकट किया है, वहीं उसने गणपति की वन्दना के साथ सौंदर्य, आकर्षण और शुभ के प्रतीक रोहिणी नक्षत्र का यश के प्रतीक सूर्य से सम्बन्ध बताकर इस ओर भी संकेत किया है कि उसका यह काव्य सुन्दर, आकर्षक, मंगलमय तथा यश का देने वाला है।

एक दूसरे पद्य में राजा[1] बीसलदेव के विदेश गमन के लिये शुभ तिथि को बताते हुये कवि ने फिर अपने ज्योतिषी होने का प्रमाण दिया है। अस्तु, इन प्रमाणों के रहते हुए कवि को ज्योतिषी स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं उठायी जा सकती और तब कवि को ब्राह्मण मानना ही ठीक होगा। यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि इस रासो में ऐसे अनेक स्थल आये हैं जहाँ यदि कवि 'जोसी' वर्ग का होता तो दानादि द्वारा दुष्ट ग्रहों की शान्ति की बात करता। लेकिन ऐसा उसने किया नहीं है। इसलिये वह 'जोसी' वर्ग का नहीं था यह सिद्ध है।

सं० १६३३ वाली प्रति में जिस प्रकार नाल्ह्मो जोइसी आदि शब्द कवि के साथ युक्त हैं उसी प्रकार सं० १६६९ वाली प्रति में व्यास शब्द युक्त है कवि के साथ। व्यास शब्द पुल्लिंग है और बना हुआ है वि + अस् + घञ् के संयोग से जिसका अर्थ होता है पाठक या कथक। 'शब्दकल्पद्रुम' में भविष्य पुराण के एक पद को उद्धृत करके व्यास के लक्षणों को बतलाया गया है।

विस्पष्टमद्रुतं शान्तं स्पष्टाक्षर पदं तथा।
कलस्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ॥

१—मास च्यार राजा दिन नहीं।
तिथि तेरस अरू मंगलवार ।।
इग्यारयउ चन्द्र थारा घाडलाजोग ॥
नोंका लाभइ नहीं।
पूर्वि नक्षत्र अरू कातिक मास ।।
तिण दिन राजा के गम करउ ॥
वउ आगलउ राउ पूरइ थारी आस ॥५॥

बुध्यमान : सदर्थ वै मन्यार्थं फलशो नृप ।
ब्राह्मणादिपु सर्वेपु मन्थार्थं श्रावयेन्नृप ॥
यः एव वाचयेद् ब्राह्मन् स विप्रो व्यास उच्यते ।

अर्थात् अन्य अनेक लक्षणों के साथ-साथ व्यास का ब्राह्मण होना भी आवश्यक है। मोनियर-विलियम्स ने भी अपने द्वारा सम्पादित शब्दकोष Sanskrit English Dictionary में लिखा है कि "Vyas—Masc = A Brahmin who recites or expounds the Puranas etc. in public. हिन्दी शब्द सागर में भी उपर्युक्त अर्थ की पुष्टि की गयी है। इसमें कहा गया है कि व्यास वह ब्राह्मण है जो रामायण, महाभारत या पुराणों आदि की कथा लोगों को सुनाता हो।

अस्तु, कवि को चाहे 'जोइसी' 'जोइसो' कहा जाय अथवा व्यास, इसमें सन्देह नहीं कि वह उच्चकुलीन ब्राह्मण था।

काव्य-सौष्ठव

बीसलदेव रासो हिन्दी जगत् की वह अमूल्य निधि है जो हमें आज से शताब्दियों पूर्व के भारत की अवस्था का दिग्दर्शन कराने में समर्थ है। जहाँ इसमें कोलाहलपूर्ण ऐतिहासिक वाद-विवादों की सृष्टि होती है, ताम्रपत्रों, वंशावलियों तथा शिलालेखों के जाँच की आवश्यकता पड़ती है वहीं काव्यगत रस, अलंकार, छन्द तथा वस्तु वर्णन आदि की अभिव्यञ्जना का समावेश भी है। खेद है कि कुछ विद्वानों ने इस ग्रन्थ को काव्य की कसौटी पर भलीभाँति न कस कर इसका साहित्यिक मूल्य न्यून समझा है।[1] अस्तु, इसके साहित्यिक मूल्यांकन के लिए आवश्यक यह है कि समूचे ग्रन्थ को काव्य की कसौटी पर कसा जाय।

---

१. क—यह कोई काव्य ग्रंथ नहीं केवल गाने के लिए रचा गया था।
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हि० सा० इ०—पृ० ३०।

ख—इसका विशेष साहित्यिक मूल्य नहीं है।—श्री सत्यजीवनवर्मा—बीसलदेव रासो पृ० ४३।

ग—न तो इसमें किसी प्रकार का साहित्यिक सौष्ठव है और न वर्णनों में किसी प्रकार की रोचकता मिलती है।—डॉ० उदयनारायण तिवारी—वीर काव्य—पृ० १६६।

वस्तु-वर्णन

काव्यों में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि विवरण के लिये कवि या तो स्वयं वस्तुओं का वर्णन करता है अथवा पात्रों द्वारा उनका वर्णन करवाता है। वस्तु-वर्णन की कुशलता काव्य में जीवन डालकर उसे सरस बनाने में समर्थ होती है। बीसलदेव रासो में सुन्दर वर्णनों का तांता तो नहीं है लेकिन दो चार स्थल ऐसे अवश्य हैं जहाँ कवि ने स्वयं वस्तुओं का वर्णन किया है अथवा पात्रों द्वारा उनका वर्णन करवाया है। देखिये :—

विवाह वर्णन—रासो में राजमती और बीसलदेव के विवाह का वर्णन हमें विस्तारपूर्वक मिलता है। हिन्दू जाति की परम्पराओं के अनुसार कन्या के बढ़ते ही उसके घरवालों को कन्या के विवाह की व्यग्रता (विशेष कर उसकी माता को) से प्रारम्भ कर वर की खोज, ब्राह्मण द्वारा लग्न भेजना, तिलक, बारात की तैयारी तथा यात्रा, अगवानी, कन्यादान, भाँवरी, दान, दहेज और वधू की विदाई आदि के वर्णन पढ़ने को मिलते हैं। विवाह का वर्णन कवि ने तत्कालीन भारत के दो प्रमुख शासकों विग्रहराज और भोज की मर्यादा के अनुकूल किया है। इसलिए इस वर्णन में हमें राजसी ठाट बाट का चित्र मिलता है। सांभर नरेश की बारात का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

"पूजियो गणपति चालीधर जान।
छहँड़ चवरासीय दुण जी मान॥
असी सहस घोड़ा चढ़ा।
साठ सहस पालकी अपारि॥
गूजर गवड़ चाल्या घणा।
रावराण तण अंत न पार॥"

विवाह वर्णन में जहाँ कवि ने राजसी ठाट बाट का दृश्य उपस्थित किया है वहीं प्रथम, द्वितीय, तथा तृतीय भाँवर के समय राजा भोज द्वारा सांभर नरेश को दहेज स्वरूप देशों को दिखाते समय यह भूल गया कि वह जिन देशों का दहेज दिला रहा है वे राजा भोज के अधिकार में थे भी या नहीं।

षड् ऋतु—बारह मास वर्णन—राजा बीसलदेव के प्रवास-काल के पश्चात् रानी राजमती के विरह का वर्णन करते समय कवि ने षड्ऋतुओं का वर्णन, उनमें प्राकृतिक उद्दीपन होने के कारण, रानी के विरह की व्यथा को प्रभावोत्पादक बनाने के लिये किया है। विरहाग्नि राजमती को प्रत्येक मास में सताती है।

विरह में राजमती का शरीर क्षीण हो गया है, और उसे माघ मास में तुषार-पात के कारण दाघ या खण्ड को देखकर संसार दाघ हुआ दिखाई पड़ता है। देखिये, वह कहती है :—

> "माह मास इसीय पड़इ ठंडार।
> दाधा छइ वनपल्ह कीधा हो छार।
> आप दहंती जग दहइ।
> म्हा की चोलीय माहि थी दाधउ छइ गात्र।
> घणीय विछुगी घण तालिकइइ।
> तूं तउ उवइठाउ रे आविइयो करह पलाणी
> जोवन छत्र उमाहियउ।
> म्हाको कनक काया माहे फेरवी आण।"

रानी राजमती को माघ की तरह वर्ष का प्रत्येक मास पीड़ा पहुँचाता है और वह विरहाग्नि में जल जल कर छटपटाती है। अन्त में वह ईश्वर से मर्म भरी प्रार्थना करती है। वह 'ढलगांया की नारी' (प्रवासी की पत्नी) को छोड़कर और जिसका भी चाहे सृजन करें। देखिये कसक, व्यथा और दर्द भरा उसका उलाहना—

> "अस्त्री जनम काइ दीयउ रे महेस।
> अवर जनम थारइ घणा रे नरेस।
> वनिन सिरजी रोझड़ी।
> घणइन सिरजी घवलीय गाइ।
> वनिहन सिरजी कोइली।
> इस बइसती आंबा नइ चम्पा की डाल।
> भखती दाख बिजोरड़ी।
> तइतउ काइ सिरजो ढलगाणा की नारि।।"

कवि नाल्ह का प्रस्तुत षड्ऋतु-वर्णन न तो कवि जायसी के पद्मावत के 'षड्ऋतु-वर्णन और नागमती वियोग खण्ड' के लम्बे-चौड़े वर्णन के समान ईश्वर से मिलन और उनके वियोग के मिस है, न भक्तप्रवर तुलसी के मानस के किष्किंधा काण्ड के पावस और शरद् के वर्णन की भाँति नीति और भक्ति का उपदेशक, और न रीतिकालीन कवियों की तरह शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों के घटाटोप में मन और बुद्धि को कुछ क्षणों के लिए आच्छादित करने वाला, वरन्

है अपने ढंग का आकर्षक, मुख्य कथा से जुड़ा हुआ स्वाभाविक और प्राकृतिक, तथा हृदय पर गहरा प्रभाव डालने वाला। यहाँ इस कथन में भी अतिशयोक्ति न होगी कि षड्ऋतु-वर्णन की परम्परा का आरम्भ करने का श्रेय हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम कवि नाल्ह को ही है; यदि हम बीसलदेव रासो को हिन्दी साहित्य का प्राचीनतम ग्रंथ मानते हैं, जिसे ऐसा मानने में हमें तब तक कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए जब तक इसे खण्डित करने के लिए कोई पुष्ट प्रमाण न मिल जाय।

चरित्र-चित्रण

श्रव्य काव्यों में महाकाव्य के अतिरिक्त अन्य काव्यों में समग्र रूप से किसी चरित्र का चित्रण सम्भव नहीं होता। चरित्र-चित्रण के दो प्रकार होते हैं एक 'आदर्श' और दूसरा 'यथार्थ'। आदर्श चरित्र-चित्रण में कवि अपनी भावना के अनुसार अपने काव्य के नायक अथवा नायिका के चरित्र में किसी प्रकार का दोष अथवा कोई त्रुटि नहीं आने देता। लेकिन 'यथार्थ' चरित्र के चित्रण के लिये कवि को अपने काव्य के लिये ऐसे नायक या ऐसी नायिका को चुनना पड़ता है जिनका सम्बन्ध संसार में नित्य प्रति देखे जाने वाले चरित्र के यथातथ्य रूप से होता है। 'आदर्श' चरित्र के भी दो प्रकार हैं—एक तो जातीय, राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक विचारों का अधिक से अधिक पूर्ण रूप से समन्वय करने वाला 'लोकादर्श चरित्र' जैसे रामचरित्र मानस के राम का और दूसरा उक्त ढंग के समन्वय या लौकिक औचित्य की भावना को गौण करके कोई एक भाव पराकाष्ठा तक *पहुँचाने वाला 'एकान्तिक आदर्श चरित्र'।*[1] इसे एकान्तिक चरित्र धर्म और अधर्म दोनों के आदर्श हो सकते हैं जैसे धर्म के आदर्श सीता, भरत, हनुमान आदि एवं अधर्म का आदर्श रावण। बीसलदेव रासो के नायक और उसकी नायिका का चरित्र-चित्रण 'यथार्थ' की कोटि में आता है।

इस रासो के नायक राजा बीसलदेव एक ऐतिहासिक पुरुष हैं। ग्रंथ की रचना-तिथि पर विचार करते हुए विशद रूप से इस बात पर भी विचार किया गया है कि ग्रन्थ के नायक कौन से बीसलदेव हो सकते हैं, तथा इस निष्कर्ष पर भी पहुँचना पड़ा है कि इस रासो के नायक बीसलदेव तृतीय हैं। यहाँ

---

१. रेवातट—पृथ्वीराजरासो—सं० डा० विपिनविहारी त्रिवेदी—भूमिका पृ० ४२।

उन ऐतिहासिक तथ्यों की पुनरुक्ति न होती यदि यह कहा जाय कि इतिहास में बीसलदेव चतुर्थ का जो चरित्र हमें प्राप्त होता है उसका कोई वर्णन इस रासो में नहीं है। इतिहास के अनुसार बीसलदेव चतुर्थ बड़ा वीर और प्रतापी राजा था। उसने मुसलमानों से कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं और उत्तर पश्चिम भारत में पुनः एक बार हिन्दू राज्य की स्थापना की थी। दिल्ली और हाँसी प्रदेश भी इसने अपने राज्य में मिलाया था।[२] इसके वीर चरित्र का बहुत कुछ वर्णन इसके राजकवि सोमदेव रचित 'ललित विग्रहराज नाटक' (संस्कृत) में है।[३] ऐसे पराक्रमी राजा के वीर चरित्रों के चित्रण का चूँकि इस रासो में अभाव है इसलिए ऊपर इस बात की सम्भावना प्रगट की गयी है कि इस रासो का सम्बन्ध बीसलदेव चतुर्थ से नहीं है।

बीसलदेव तृतीय का चरित्र इतिहास में बीसलदेव चतुर्थ के समान म्लेच्छों से आर्यावर्त का उद्धार करने वाला अथवा विन्ध्य से लेकर हिमालय तक अपना राज्य स्थापित करने वाला नहीं चित्रित किया गया है। अस्तु, बहुत कुछ सम्भव है कि इसी कारण प्रस्तुत रासोकार ने इस खंडकाव्य की रचना करते समय बीसलदेव तृतीय के गुजरात आक्रमण के समय चालुक्यवंशीय राजा कर्ण से युद्ध को गौण रखकर उसके जीवन की एक स्वतः पूर्ण घटना परमारवंशीय राजा भोज की कन्या के साथ विवाह को प्रधानता दी। बीसलदेव के चरित्र का विकास इस रासो में रानी राजमती के विवाह के पश्चात् से आरम्भ होता है। विवाह के पश्चात् रानी द्वारा सिर्फ इतना ही कहने पर कि बीसलदेव के समान और उनसे बढ़कर भी इस भू-खण्ड पर और अन्य नृप हैं, राजा प्रण करता है कि वह अवश्य उन राजाओं को जीतेगा और अपने राज्य को हर प्रकार से समृद्ध बनायेगा। अपने इस प्रण की रक्षा के हेतु वह जिस रानी को ब्याह कर वह कुछ मास पूर्व ही लाया है और जो अनन्य सुन्दरी है उसके रूप और यौवन की कुछ परवाह नहीं करता और बारह वर्षों का उड़ीसा प्रवास हीरे

---

२. आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवा म्लेच्छविच्छेदनाभि-
देंवः शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसलः क्षोणिपालः ॥
ब्रूते सम्प्रति चाहुवाणतिलकः शाकम्भरीभूपति
श्रीमान्विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मनः। —फीरोजशाह की
लाट (दिल्ली) पर वि० सं० १२२० वैशाख शुक्ला १५ का लेख

३. Indian Antiquary vol. XX P. 20।—D. Keilhorn

की धान को प्राप्त करने के लिए करता है। उड़ीसा पहुँच कर राजा बीसलदेव को अपने कार्य में सिद्धि बिना किसी लड़ाई के ही प्राप्त हो जाती है और वह उड़ीसा के प्रधान के यहाँ एक अति सम्मानित अतिथि के समान रहता है। कुछ समय पश्चात् रानी राजमती का यह समाचार दूत के हाथ प्राप्त होने पर कि अब रानी राजमती का जीवित रहना राजा के विरह में असम्भव है राजा उड़ीसा से लौटने की तैयारी करता है। उड़ीसा के राजा तथा रानी उसको रोकना चाहते हैं। रानी तो बीसलदेव से यहाँ तक कहती है कि वह अब लौट कर न जाय और उड़ीसा में ही उसके विवाह का प्रबन्ध सुन्दरी से सुन्दरी कन्या के साथ होने का कर दिया जायगा। लेकिन राजा बीसलदेव उड़ीसा प्रवास के समय रानी राजमती को दिये गये अपने वचन की दृढ़तापूर्वक रक्षा करता है और उड़ीसा की रानी द्वारा किये गये प्रस्ताव को अस्वीकार कर अतुल धन लेकर अजमेर लौट आता है। इतिहास में कहीं भी बीसलदेव तृतीय के उड़ीसागमन की कथा नहीं मिलती। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि ने राजा बीसलदेव के के चरित्र के विकास के हेतु ही इस कथा का सृजन कल्पना के आधार पर किया है। कल्पना की सहायता भले ही कवि ने बीसलदेव के चरित्र चित्रण में ली हो लेकिन इसे तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि बीसलदेव तृतीय के जीवन-चरित्र का यह अंश अधूरा ही रह जाता यदि कवि ने इस ग्रन्थ की रचना न की होती। साहित्य की रक्षा इसीलिए किसी देश अथवा जाति के लिए (इतिहास का भी साहित्य के अन्तर्गत ही मैं मानता हूँ) स्वतन्त्रता से बढ़कर होती है।

रानी राजमती के चरित्र को कवि ने स्त्री-सुलभ गुणों से पूर्ण चित्रित किया है। राजमती की प्रगल्भता से ही इस रासो का प्रारम्भ होता है। वह राजा बीसलदेव के गर्वयुक्त कथनों को नहीं सह सकती और ऐसा चुभता हुआ प्रत्युत्तर[1] उन्हें देती है कि राजा को अपना राज्य छोड़ कर विदेश गमन करना पड़ता है। लेकिन जहाँ उसमें इतनी प्रगल्भता है वहीं उसका हृदय स्नियाचित

१—गरव न कीजइ घणी समरि चालि।
तुहू समा छइ घणारि भूवाल।
ऐक उडीसा कउ घणी।
वचइ माका मानि न मानि।
जउ थारइ साभरिउ मइइ।
तिन्हउथा घरि उमहइ हीरा की पाणि ॥ ४१ ॥

कोमल भावनाओं से भी पूर्ण है। यह राजा के विरह को सहन करने के लिए तैयार नहीं है, और इसीलिए कहती है कि—

"म्हे थिर। स्या बोलियउ दोस।
पग को पाणही संकिसउ रोस।
कीडी ऊपरि कटकी किसी।
म्हे हरया थे करि जाणीयउ साथ।
तमी मेल्हि उलग चलउ।
जल विहुणीय किम जीवइ मछ॥ ४३॥"

लेकिन उसकी यह चातुरीपूर्ण बातें उसे राजा के विरह से वंचित करने में असमर्थ होती हैं। अत यह अपने उस अस्त्र का प्रयोग करती है जिस पर प्रत्येक स्त्री को ऐकांतिक भरोसा होता है लेकिन उसका यह अस्त्र भी चूक जाता है जिसे वह अपनी सहेलियों से राजा के विछोह के पश्चात् स्वीकार करती है—

सुणउ सहेलीय म्हारीय बात।
कंचूउ पोलि दिपाया गात्त।
त्रिय चरित्र मइ लप किया।
म्हरिय राउ न जाणए यात।...

अपने इस अस्त्र के चूक जाने के पश्चात् भी यह राजा के उड़ीसा प्रवास को रोकने का प्रयत्न जारी रखती है। राजज्योतिषी से प्रवास के लिये चार मास पश्चात् की तिथि देने के उसके आग्रह में उसके चरित्र का प्रगाढ़ पति-प्रेम एवं पतिव्रता हिन्दू पत्नी का पति द्वारा अनादर होने पर भी पति के प्रति शुभ कामना सन्निहित है।

चार मास के बाद निश्चित तिथि पर जब राजा उड़ीसा गमन के लिये तैयार होता है, रानी अपने विरह के समय आने वाले दुखों को भूलकर अपने नीतिपूर्ण उदात्त चरित्र का परिचय देते हुए राजा को शिक्षा देती है कि—

"उलग जाण की थरीय जगीस।
राज चालण को देइछइ सीष।
इणि विधि राज माहे संचरे।
चइठा राजा सभा परधान।
जिजि सं मीठा बोलिज्यो।
नाई साहणी दूणउ मान।

> षाढ़िय सरिसउ मति हसउ।
> वठइ राइ योल्याइसी भीतर गोठि।
> राजमत करि योलीज्यो।
> फाक नइड़ा अरु नीची दिठि। ८८॥"

राजा के उड़ीसा गमन के पश्चात् रानी राजमती राजा के विरह में व्याकुल हो जाती है। वर्ष की किसी ऋतु में उसे शान्ति नहीं मिलती। वह पूर्णयौवना है और युवावस्था में पति का वियोग कितना दु खदायी होता है यह तो एक विरहिणी नारी ही बता सकती है। ऐसी परिस्थिति में प्राय देखा जाता है कि नारियाँ पातिव्रत धर्म को ताख पर रखकर स्वैराचार की ओर प्रेरित हो जाती हैं। लेकिन राजमती एक आदर्श पतिव्रता हिन्दू नारी की भांति इन विकट परिस्थितियों का सामना करती है और कुटनी द्वारा भ्रष्ट आचरण के प्रस्ताव को ठुकरा देती है।[1]

अन्त में रानी राजमती के सुख के दिन लौटते हैं। बीसलदेव उड़ीसा से अगाध द्रव्य लेकर लौटते हैं। रानी को उन निर्जीव द्रव्यों को तो नहीं पर अपने सजीव द्रव्य को पाकर अत्यन्त सुखी होती है। कवि नायक मुखरा, प्रगल्भा, नीति निपुणा, तथा प्रतिव्रतपरायणा राजमती के चरित्र चित्रण में प्रत्येक दृष्टि से सफल हुआ है।

इस रासो में उपर्युक्त दोनों चरित्रों को छोड़कर अन्य चरित्रों का विकास नहीं हुआ है।

रस

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने रासो काल को 'वीरगाथा' काल की संज्ञा दी है। निस्सन्देह यदि 'पृथ्वीराज रासो' को इस काल का प्रतीक ग्रन्थ

१—असीय वरस की बुढइ वेसि।
दूत पठ्या तिरि पाहुरा वेस।
आइ आवीसइ सचरी।
गलि लागइ अरू रूदन करति।
किमदिन काढइ मायिणी।
राति दिवस मोनइ यारीय चीत।
जेतइ आवइ साभर धणी।
तेतइ चपल पाठव करउ ये मीत॥१२७॥

स्वीकार कर लिया जाय तो इतिहासकारों द्वारा दिया गया उपर्युक्त नाम सार्थक सिद्ध हो सकता है। लेकिन 'बीसलदेवरासो' जिसे इस काल का प्राचीनतम ग्रन्थ मानने में दो मत नहीं हो सकते, एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें वीर रस का तो सर्वदा अभाव है और है शृंगार रस की प्रधानता। अतएव प्राचीनतम ग्रन्थ होने के नाते यदि यह काव्य रासो काल का प्रतीक ग्रन्थ माना जाय तब तो इस काल को वीरगाथा काल कहना कहाँ तक सार्थक होगा यह विवादग्रस्त प्रश्न हो जाता है।

'बीसलदेवरासो' चूँकि शृंगार रस प्रधान काव्य है इसलिए इसमें शृंगार रस खोजने का प्रयास नहीं करना पड़ता। संयोग और वियोग शृंगार से सारा ग्रन्थ परिपूर्ण है। संयोग शृङ्गार का तो कम लेकिन वियोग शृङ्गार का अभाव ग्रन्थ में परिलक्षित नहीं होता। कहा तो यह भी जा सकता है कि वियोग शृङ्गार की ही प्रधानता है। वियोग शृङ्गार का चित्र इस खण्ड काव्य में हमें बीसलदेव के रानी राजमती के विवाह के पश्चात् उड़ीसा गमन पर मिलता है। रानी राजमती का विवाह राजा के साथ उसकी बारह बरस की अवस्था में होता है। विवाह के तुरन्त पश्चात् ही राजा के परदेश गमन से राजमती को विरह का सामना करना पड़ता है। प्रोषितपतिका नायिका राजमती के विरह को षट्ऋतु में घटने वाली प्राकृतिक घटनायें उद्दीप्त करती हैं। सावन का सुन्दर महीना है। वर्षा-ऋतु आरम्भ हो गयी है। पानी की छोटी-छोटी बूँदें पड़ रही हैं। युवतियाँ कजली गा रही हैं। पपीहा '*पी कहाँ—पी कहाँ*' की रट लगाये हुए है। लेकिन ये सारे सुन्दर दृश्य विरहिणी राजमती के हृदय में शूल पैदा करते हैं। वह कहती है—

सावण बरसइं लइ छोटिय धार।
प्रीयविण जीविजइ किसइ आधारि।
लह को खेलइ काजली।
तठइ चीडीय कमडीय पडिया जाल।
बाबीहा पीय पीय करइ।
मोनइ अणप लावइ सावण मास ॥ २९ ॥

विप्रलम्भ शृङ्गार के प्रवासहेतुक वियोग के भविष्यत् प्रवास का चित्र अंकित करते हुए कवि बीसलदेव के भविष्यत् प्रवास से व्याकुल राजमती के मुख से कहलाता है—

हिव छंडी स्वामी थाहरी आस।
जोगणि होइ सेवं वनवास।
कइ तप तपं थणर रसी।
यह सरीर संपउ देसि पैसारि।
कइहि, हिमालइ माहि गिलउ।
स्वामी घण सरिसी गंग नइ वारि ॥ ५० ॥

संताप, निद्रा भंग, कृशता, प्रलापादि विप्रलम्भ शृङ्गार के अनुभाव के कारण प्रवत्स्यत्पतिका नायिका की कृशता के चित्र अनेक लक्षण और लक्ष्य ग्रन्थों के रचयिता आचार्यों तथा रीतिकालीन कवियों द्वारा उपस्थित किए गये हैं। रासो का नायक भी यद्यपि न तो लक्षण या लक्ष्य ग्रंथ की रचना कर रहा था और न उसका उद्देश्य नायिकाभेद की रचना करना था, फिर भी रानी राजमती की कृशता का चित्र जो उसने चित्रित किया है वह रीतिकालीन कवियों अथवा उर्दू के शायरों के ऐसे चित्रित किये गये चित्र से किसी रूप में कम नहीं है। रानी राजमती राजा के विरह में इतनी कृशगात हो गयी है कि उसकी अँगुली की अंगूठी उसकी बाँह में आ जाती है।[1] देखिये कवि कहता है कि—

गोरडी पइठी छइ वंभणक जाइ।
करि जोडी थारइ लागू पाइ।
राजमती करइ वीनती।
पंड्या कहियो धण का नाह नइ जाइ।
आँगुली थाकी मुदड़ी।
ढलिकन आवइ हो धणकीय बाह ॥ १४२ ॥

रसराज शृङ्गार का जो निखरा सौन्दर्य हमें वियोग में देखने को मिलता है

१—सुनहु स्याम ब्रज में लगी दसन दसा की ज्योति।
जहँ मुंदरी अंगुरीन की बाह में ढीली होति ॥

× × ×

तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई तुम बिन या कहँ राम ॥—केशव

× × ×

जीवन की अब है कपि आस न मोहि।
कनगुरिया की मुँदरी कंकन होहि ॥—तुलसीदास

यह सम्भवतः संभोग में नहीं मिलता, और इसीलिए शायद किसी शायर ने कहा है कि 'जो मजा इन्तजार में देखा, वह नहीं वस्लेयार में देखा।' वियोग के पश्चात् सम्भोग का होना स्वाभाविक है। अस्तु, कवि नाल्ह ने वियोग के वर्णन की मार्मिकता देकर अपने कवि हृदय का परिचय देते हुए परम्परा के निर्वाह के लिए ग्रन्थ को समाप्त करते करते सम्भोग शृङ्गार का चित्र भी अंकित कर दिया है। नायक नायिका के पारस्परिक अवलोकन, आलिंगन आदि असंख्य भेदों को सम्भोग शृङ्गार के अन्तर्गत माना गया है, तथा कहीं यह नायिकारब्ध और कहीं नायकारब्ध होता है। इस रासो में नायकारब्ध सम्भोग शृंगार का उदाहरण ही हमें प्राप्त होता है। वीसलदेव बारह वर्षों के प्रवास के पश्चात् लौटकर जब रानी राजमती से मिलता है तो उसकी अंग शोभा वीसलदेव के मन में उद्दीपन भाव उत्पन्न करती है। उसके वक्षस्थल पर राजा का हाथ अनुभाव तथा राजा द्वारा उसका आलिंगन व्यभिचारी भाव हैं। नायकारब्ध सम्भोग शृंगार के इस चित्र का कवि ने अपने शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है—

> बारा वरस। घरि आवीयउ राव।
> हियडलइ हाथ गह्या गाहे बाह।
> अवली सवली चूंवणी।
> अति रंग थी राजा लीयउ दीपि।
> सही सहेली चमकउ हूवउ।
> म्हाकइ भइरव कचूउ भीनउ छइ पाक॥ २३६॥

विप्रलम्भ और सम्भोग शृंगार के अतिरिक्त न तो अन्य रसों की अवतारणा का कवि ने प्रयास किया है और न इस खण्ड काव्य में अन्य रसों के पूर्ण परिपाक की सम्भावना थी। कहीं-कहीं तो ऐसा भी देखने को मिलता है कि रस परिपाक तो दूर, वर्ण्य विषय को सुन्दर ढंग से रखने में भी कवि असमर्थ होकर रसाभास के उदाहरण उपस्थित करता है। राजमती द्वारा अनादृत होकर वीसलदेव जब उड़ीसा चला जाता है तब राजमती कलहान्तरिता नायिका की भाँति जहाँ विप्रलंभ शृंगार का उदाहरण सामने रखती है वहीं उगढ़ वीसलदेव की भैंस का पीडाइ (पाड़ा) कहकर वीभत्स रस उपस्थित कर देती है और ग्रामीण कलहान्तरिता नायिकाओं तक को भी लज्जित कर देती है। संदर्भ से सम्बन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सुणम महेलिय म्हारीय बात ।
कंचूउ पोलि दिपाया गात्त ।
तिय चरित्र मइ इपकिया ।
म्हारिय राउ न जाणए बात ।
वउ वउ उपरि भगस पीढाइ ।
जिण दीठा मुनिवर चलइ ।
म्हे तउ कर योलियउ कोपियउ नाह ।
तिणि कुवचनइ सपीघण छली ।
डालीयउ पांसउ चूकउ दाउ ॥ ६९ ॥

[अर्थात् हे सखी मेरी बात सुनो—मैंने कंचुकी खोलकर अपने अपूर्व यौवन का दर्शन राजा को कराया तथा अनेक प्रकार के त्रियाचरित्र भी किये ताकि राजा विदेश प्रमण न करें लेकिन राजा मेरी बात को मानने के लिए तैयार नहीं हुआ। जिस नारी सौन्दर्य ने बड़े बड़े मुनियों को भी वशीभूत कर लिया उसी सौन्दर्य की राजा ने उपेक्षा की। ऐसा करके राजा ने 'भैंस के आगे बीन बजावे भैंस खड़ी पगुराय' वाली उक्ति को चरितार्थ किया है। इत्यादि।]

ऐसे ही एक अन्य स्थल पर जहाँ बीसलदेव राजमती की पहिचान बताते हुए उसके सौन्दर्य का वर्णन नाना प्रकार की उपमाओं को देकर योगी को बताता है उसी जगह उसकी अंगुलियों की उपमा 'मूंगफली' से देकर हास्य रस उपस्थित कर देता है। देखिये —

भति जोगी कहइ नर नाथ ।
रतन कचोलउ धण कइ हाथि ।
मुगफली जिसी आंगुली ।
थणारा कवन पयचइर काजला रेषि ।
बोलतो बोलइ पर आकरी ।
धणरइ सोवन चूड़ली झलकइ हाथि ।
चूड़ि दहइ कइ चूड़िलउ ।
थे तउ थीरा तिण धण कइ हाथि ॥ २११ ॥

[अर्थात् रानी राजमती की अंगुलियाँ मूंगफली जैसी हैं, उसके पयोधर पर काली रेखायें हैं, वह सुन्दर वाणी बोलती है, उसके हाथों में सुवर्ण की चुड़िया सुशोभित हैं, इत्यादि।

यद्यपि भैंस और मुंगफली की उक्तियाँ शृङ्गार रस में रसाभास उत्पन्न करती है फिर भी इन उक्तियों के अप्रस्तुत रूप में लाये जाने के कारण इस काव्य के लोकगीत होने का प्रमाण भी मिलता है।

अलंकार

जिस प्रकार 'रस' काव्य की आत्मा है और काव्य के लिए अत्यावश्यक है उसी प्रकार अलंकारों के अतिरिक्त भी काव्य रचना संभव नहीं। क्योंकि अलंकार हैं क्या? वर्णन करने की अनेक प्रकार की चमत्कारपूर्ण शैलियाँ जिन्हें काव्यों से चुन कर प्राचीन आचार्यों ने नाम रखे और लक्षण बनाये।[1] शैलियाँ विभिन्न कवियों की विभिन्न हो सकती हैं। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि जितने अलंकारों के नाम आचार्यों ने निर्णीत कर दिये हैं उनके अतिरिक्त अलंकार नहीं हो सकते। देखा यह गया है कि नए आचार्य नये अलंकारों की सृष्टि करते आये हैं। अतः किसी ग्रन्थ विशेष में यदि हमें मिलने वाले अलंकारों में से कोई अलंकार नहीं मिलता तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह काव्यग्रन्थ अलंकार शून्य है, क्योंकि काव्य रचना के लिए किसी न किसी शैली की आवश्यकता कवि को पड़ेगी और जब वह किसी शैली का अनुसरण करेगा तब अलंकार भी उस काव्य में होगा ही।

बीसलदेव रासो में नाल्ह ने सादृश्यमूलक अलंकारों का ही आश्रय अधिक लिया है। इन अलंकारों के सहारे कवि को अपनी कल्पना की उड़ान में बहुत ऊपर तक उड़ने का अवसर मिला है। कहीं कहीं तो ऐसे उपमान और उपमेय का आयोजन हुआ है जिनका सम्बन्ध पृथ्वी के जीव से नहीं वरन् ज्योतिष शास्त्र से है। सादृश्यमूलक अलंकारों में से उपमा अलंकार का आरोप गौरीनन्दन की शोभा में देखिये :—

> गवर का नंदन त्रिभुवन सार।
> नाद भेदइ थारइ उदर भंडार।
> एक दंतउ मुषिक लहलहइ।
> सुविकउ वाहण तिलक संदूरि।
> करि जोडी नरपति भणइ।
> जाणि करि रोहिणी जिम तपउ सूरि॥ १॥

१—जायसी ग्रन्थावली—सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—पृ० १४६–१४७।

उपमा में भी श्रौती उपमा का उदाहरण कवि ने राजा बीसलदेव के मालव पहुँचने पर 'गोकुल माहि गोविन्द' से दिया है :—

राजा जी पहुँच्या नगर मझारि ।
मन माहे हरषीय राजकुमारि ।
आइ सखी करण आरती ।
जाणा सपूरण पूनिम चन्द ।
सुर नर मोह्या सुरग का ।
गोकुल माहि जिसउ प्रविश्य गोयंद ॥ २५ ॥

श्रौती उपमा की तरह 'आर्थी उपमा' का प्रयोग भी हमें निम्न पंक्तियों में देखने को उस समय मिलता है जब राजमती बीसलदेव को विदेश-गमन से रोकने के लिए यह कहती है कि विवाह के पश्चात् उसकी अवस्था ठीक बिकने वाले घोड़े के समान हुई है जिस पर व्यापारी सौ सौ दिनों तक हाथ नहीं फेरता ।

भाटिण कहइ सुणि राजा का पूत ।
एलग जाण कउ करउ कुसूत ।
बेटि व्याही राजा भोज की ।
सोनउ सोलहउ काइ करइ छार ।
मरणजीवण राजा पग तलइ ।
कनक कचोलउ उर धरइ भार ।
हेडाऊँ का तुरीय जिऊँ ।
हथ न फेरइ सउ सउ बार ॥ ८२ ॥

विरह वर्णन में कवि नाल्ह ने ऊहात्मक शैली का अवलम्बन किया है । इस शैली में अधिकतर ऐसा देखा जाता है कि ऊहा की आधारभूत वस्तु का स्वरूप तो सत्य रहता है लेकिन उसके हेतु की कल्पना कल्पित होती है । इस प्रकार के विधान में उत्प्रेक्षा का सहारा आवश्यक होता है । यह अलंकार उत्कर्ष की व्यंजना के लिये बड़ा शक्तिशाली होता है । प्रस्तुत को अप्रस्तुत रूप में सम्भावना के द्वारा कवि जिस क्रिया को हमारे सम्मुख उपस्थित करता है वह स्वाभाविक लगने लगती है और हम इस बात की छानबीन नहीं करते कि हेतु ठीक है या गलत । आसाढ़ माह में जल से परिपूर्ण मेघों को आकाश में घुमड़ते देख कर राजमती को ऐसा प्रतीत होता है कि मदगलित हाथी की भाँति प्रमत्त मेघ आकाश में चल रहे हैं । देखिये वह कहती है कि—

आसाढ़इ धुरि वाहुड्या मेह ।
पलिहल्या पाल नइ चढ़ि गई पोह ।
जइरि आसाढ़ न आवही ।
माता रे मइगळ जेठ पग देई ।
मद मत वाला जं दुलई ।
तिह घर ऊलग काइ करेइ ॥ १२८ ॥

प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप में सम्भावना कर कवि ने 'वस्तूत्प्रेक्षा' का सुन्दर उदाहरण उपर्युक्त पद में दिया है ।

'उत्प्रेक्षा' के समान अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग भी कवि ने इस रासो में कहीं-कहीं किया है । राजा बीसलदेव की बारात की विशालता का वर्णन करते हुए कवि कहता है :—

राजा चालौ परिणवा ।
खवइ खेहाडँबर छाडिय सूरि ॥ २० ॥

राजमती की चमत्कारपूर्ण उक्ति भी पण्डित को बीसलदेव के पास भेजते समय अतिशयोक्ति अलंकार का सृजन करती है । राजमती की यह उक्ति कि बीसलदेव के वियोग में उसके बायें हाथ की मुद्रिका खसक कर उसकी दाहिनी बाह में आने लगी है लोक सीमा का उल्लंघन कर जाती है । देखिये उसके अलंकार का चमत्कार :—

गोरडी बइठी छइ चमणक जाइ ।
करि जोडी धारइ लागू पाइ ।
राजमती करइ वीनती ।
पंड्या कहिज्यो धण का नाह नइ जाइ ।
आंगुली थाकी मुदडी ।
ढळिकन आवइहो धण कीयबाह ॥ १४२ ॥

सादृश्यमूलक अलंकारों में 'रूपक' का अपना विशेष स्थान होता है । इस अलंकार की झलक इस रासोकार ने कहीं-कहीं दिखायी है । इसके प्रयोग में यद्यपि कवि को पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हुई है फिर भी रूपक बाँधने की उसकी दक्षता अवश्य श्लाघ्य है । ऐसा एक स्थान देखिये :—

स्हासू कहइ बहु परिमाहे आइ ।
चंवरइ मोडइ गिळेसी राह ।

पंद्र पुनिर्दा यन गयउ ।
कुपू विगन परइ मंजारि कइ फेरि ।
सनुगाणा की गोरडी ।
थारउ नाह पटीएइ धण् अजमेरि ॥ १९१ ॥

[अर्थात्—राजमती का मुख पूर्ण चन्द्रमा है । उसके मुख रूपी चन्द्रमा को राहु रूपी सौन्दर्य कौतुक लम्पट कहीं प्राप्त न कर लें अथवा उसके यौवन रूपी दुग्ध को मार्जार रूपी कामी पुरुष कहीं भक्षण न कर जायें क्योंकि उसका पति परदेश में है और उसका उन्मत्त यौवन छिपाये नहीं छिपता । इसलिए राजमती की सास कहती है कि बहू घर में आओ ।]

छन्द

भारतीय छन्दों के गणित पक्ष तथा सूत्र लक्षण का विधान संसार के छन्द शास्त्रों में अद्वितीय है, इसे स्वीकार करने में किसी को संकोच न होगा । ब्राह्मण ग्रन्थों के रचना-काल से ही छन्दों का प्रारम्भ भारतीय साहित्य में हो जाता है, यद्यपि उन ग्रन्थों में छंदों की दार्शनिक धारणायें ही केवल प्राप्त हैं परन्तु उन्हें उनका सैद्धान्तिक विवेचन नहीं कहा जा सकता । ब्राह्मण युग के पश्चात् वैदिक युग के प्रारम्भ काल से लेकर अपभ्रंश काल तक छन्दों का क्रमश: विकास हुआ है । विद्वानों के मतानुसार वैदिक छन्दों में वर्ण विचार की प्रधानता पायी जाती है लेकिन डा० पुत्तूलाल शुक्ल के मतानुसार इनके पाठ में केवल अक्षर की गणना के अतिरिक्त स्वरों का भी प्रयोग किया जाता है, अन्यथा केवल अक्षर संख्या छन्द को जन्म देने में असफल हो जाती । वैदिक छन्द पाठकारों और उनके छन्दों के लिपिकारों ने उदात्त, अनुदात्त, स्वरित का प्रयोग तो किया, परन्तु वैदिक युग के छन्द-शास्त्रियों और परवर्ती युग के आचार्यों ने वैदिक छन्दों पर विचार करते हुए मात्रा मैत्री का विवेचन नहीं किया और फलत एतद्-विषयक कोई सिद्धान्त भी निश्चित नहीं किया गया । चूँकि अक्षर और मात्रा भाषा के आदि काल से इतने अभिन्न और एकाकार हैं कि उनमें भेद करना कठिन है, सम्भवत इसी कारण वैदिक छन्दों के सम्बन्ध में यह निश्चित सिद्धान्त नहीं बन सका कि वे केवल वर्णिक हैं या केवल मात्रिक । ऐसी विषम परिस्थिति में छन्द शास्त्रियों ने शायद इस नियम का, कि छन्द को पाठ पद्धति में जिस वर्ग के नियम प्रधान हों उसमें ही उन छन्दों की गणना होनी चाहिए, पालन किया है । वैदिक छन्दों को वर्णिक बताने में ही उपर्युक्त कहे गये नियम का अनुसरण

किया गया है क्योंकि वैदिक छन्दों में वर्णवृत्त की प्रधानता यहाँ तक विशेष थी कि १०४ अक्षरों तक के छन्द निर्मित होते थे। वर्ण और मात्रा की खिचड़ी संस्कृत काल के छन्दों में भी पकती रही! छंदों में वर्णिक और मात्रिक का भेद तब स्पष्ट रूप से स्थापित हुआ जब वैदिक छन्द, वर्ग विशेष का साहित्य बन गया और जनता से उसका सम्पर्क छूट गया। जनता ने यद्यपि अपना सम्बन्धविच्छेद वैदिक और संस्कृत छन्दों से कर लिया फिर भी उनमें छान्दसिक संस्कार वैदिक और सांस्कृतिक ही थे। अतः जिस लय में वर्ण पर स्वराघात देकर या उदात्त उच्चारण से छन्द पूरा किया जाता था जनता ने उस स्थान पर एक मात्रा का योग करके इस लय को पूरा किया। लय को पूर्ण करने के लिये मात्राओं के योग की यह जनपदीय पद्धति ही धीरे धीरे अपने अलग स्वरूप में विकसित होने लगी। प्राकृतकाल के आगमन तक यह इतनी जनप्रिय हो गई कि इस काल के छन्द प्रारम्भ काल से ही मात्रावृत्त होने लगे। मात्रावृत्त छन्दों के विकसित होने तथा जनता द्वारा अपनाये जाने के प्रधानतः दो कारण थे। प्रथमतः जन गीतों के चरण बहुत छोटे होते हैं जिनमें मात्रावृत्त छन्दों का ही सफल प्रयोग सम्भव होता है। द्वितीयतः मात्रावृत्त छन्दों में कवि को स्वच्छन्दता का अवसर रहता है जो वर्णवृत्त छन्दों में अपेक्षाकृत कम प्राप्त होता है। मात्रावृत्त छन्द जनता के आदर के पात्र इसलिए भी बन गये कि इसमें संगीत के उपयुक्त गुण भी वर्तमान थे। गीत में ताल का विधान प्रधान होता है जो कि मात्राओं पर निर्भर होता है, वर्णों पर नहीं।

मात्रिक छन्द अपनी उपर्युक्त विशेषताओं और सुविधाओं के कारण इतना विशेष जनप्रिय बन गया कि प्राकृतों के साहित्यिक रूप धारण करने पर जहाँ मध्यकाल की प्राकृत रचनायें संगीत विहीन हो गयीं वहीं अपभ्रंश में जनता द्वारा अपनाये जाने वाले मात्रिक छन्द इतने प्रचलित हुए कि इन छन्दों में आद्योपान्त महाकाव्यों की रचना होने लगी। चौरासी सिद्धों और जैनाचार्यों की कृतियों का सृजन, जो प्रायः नवीं शताब्दी के बाद हुआ, मात्रिक छन्दों में ही हुआ। इन छन्दों का प्रचार उत्तरोत्तर इतना अधिक हुआ कि संस्कृत के कवि गोवर्द्धनाचार्य तथा जयदेव ने भी अपनी कृतियों की रचना वर्ण-वृत्तों में न कर मात्रिक छन्दों में की। मात्रिक छन्दों में भी 'पज्झटिका' छन्द का प्रयोग बहुशः अपभ्रंश काव्य में पाया जाता है। इस छन्द में ८ मात्राओं के बाद स्वभावतः ही ताल लगने के कारण संगीत के लिये यह विशेष रूप से उपयोगी होता है। सङ्गीतोपयोगी छन्द पज्झटिका के समान ही नृत्योपयोगी 'घत्ता' और

जिस प्रकार हीरे का सौन्दर्य सफल खराद करने वाले के हाथों में जाकर प्रस्फुटित होता है उसी प्रकार काव्य भी छन्दों के प्रयोग से निखर उठता है। यद्यपि कवि छन्दों का मुखापेक्षी नहीं होता और न वह यति गति के नियमों से ही बँधा होता है फिर भी भावों की मधुरिमा के लिये लय की आवश्यकता होती है जो वर्णों और मात्राओं की योजना पर निर्भर करती है। अतः छन्दों के मुखापेक्षी न रहने पर भी अवश्य रूप से वे ही व्यञ्जना सिद्धि में प्रेरक हैं इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। छन्दों का चुनाव वर्ण्य विषय और भाषा को दृष्टिगत रख कर ही होना चाहिए। आज तक के प्रकाशित ग्रंथों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि न तो प्रत्येक छन्द हर प्रकार के वर्णन के लिये उपयुक्त होता है और न प्रत्येक भाषा में ही प्रत्येक छन्द का सफल प्रयोग हो पाता है। 'अवधी' में जितनी सफलता दोहा और चौपाई को मिली उतनी सफलता ब्रज भाषा में इन्हें नहीं प्राप्त हुई। ब्रजभाषा के सफल छन्द तो कवित्त और सवैया ही हैं। इसी प्रकार नीति और उपदेशात्मक विषयों की व्यञ्जना में दोहा छन्द जितना सफल रहा उतना अन्य छन्द नहीं। यह ठीक है कि छन्द शास्त्रियों ने ऐसा कोई विधान नहीं बनाया कि अमुक विषय अथवा अमुक भाषा के लिये अमुक छन्द का ही प्रयोग होना चाहिये फिर भी प्रकाशित रचनाओं की सफलता और विफलता को दृष्टिगत रखते हुए उपर्युक्त निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

बीसलदेव रासो के छन्दों का निर्णय करते समय हमें उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इस रासो का विषय शृङ्गार रस सिक्त है और इसकी भाषा डिङ्गल है, यद्यपि भाषा की अस्तव्यस्तता और डिंगल व्याकरण के नियमों की अवहेलना को देखते हुए ऐसा कहना निर्मूल न होगा। हाँ, इसकी भाषा को नागर अपभ्रंश और साहित्यिक डिंगल का मिश्रण कहने में सम्भवतः कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अस्तु, ऐसी भाषा और इस ग्रन्थ के वर्ण्य विषय के लिये कौन-सा छन्द उपयुक्त हो सकता था यह विचारणीय है।

यों तो दसवीं से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के राजस्थानी काव्य में सबसे अधिक प्रयोग दोहा और छप्पय छन्दों का हुआ है जिसका कारण इसके काव्य में वीर रस की प्रधानता है फिर भी इनके अतिरिक्त मन्दाक्रान्ता, मुक्तादाम, भु० प्रयात, पद्धरी, तोमर और गीत छन्दों का प्रयोग भी बहुत हुआ है—गीत छन्द डिंगल साहित्य में अपनी विशेषता रखता है। डिंगल रीति-ग्रन्थों में इसके ८४ प्रकारों के लक्षण उदाहरण सहित मिलते हैं।[1]

---

१. रघुवर जसप्रकाश।

बीसलदेव रासो के छन्द इसकी अस्तव्यस्त भाषा और गणनाशून्य मात्राओं से जड़ित रहने के कारण एक समस्या अवश्य उपस्थित करते हैं लेकिन सुविधा यह भी है कि आरम्भ से इति तक प्रायः एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग हुआ है। इसके कतिपय छन्दों की मात्राओं की गणना करने पर इस निर्णय पर पहुँचना पड़ता है कि छन्दों के चरणों की संख्या छप्पय छन्द के अनुसार प्रायः छः चरणों की होते हुए भी मात्राएँ प्रत्येक छन्द की भिन्न-भिन्न हैं और छप्पय छन्द के लिये आवश्यक नियम का—प्रथम चार चरणों की, रोला के (२४, २४ मात्रायें ११, १३ की यति से) तथा अन्तिम दो चरणों का उल्लाला के (२८, २८ मात्रायें, १५, १३ की यति से या २१, २६ मात्रायें १३, १३ की यति से)—पालन नहीं हुआ है। ये छंद, छंद-शास्त्र के नियमानुसार विषम कोटि के हैं—क्योंकि इनके प्रत्येक चरण की मात्रा असमान है और ये साधारण जाति के हैं क्योंकि प्रत्येक चरण की मात्रा ३२ से अधिक नहीं है। इस विचित्रता को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थ का रचयिता छन्द-शास्त्र का पण्डित नहीं था। इसीलिए बीसलदेव रासो की रचना छंद-शास्त्र की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि 'संगीत' शब्द का प्रयोग यहाँ शास्त्रीय संगीत के लिये नहीं वरन् उस 'संगीत' के लिये किया गया है। जो मानव जीवन के अन्तर्दर्शन और साथ ही उसकी रागात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति में सहायता पहुँचाता है। पशु पक्षी तक में अनुभूति और उनकी अभिव्यक्ति की क्षमता है। आनन्द या दुःख के कारण जिस प्रकार मानव में आत्मप्रसार का भाव जागृत होता है उसी प्रकार पशु-पक्षियों में भी। वैज्ञानिकों ने तो यहाँ तक सिद्ध कर दिया है कि उद्भिद् जगत् में भी राग-द्वेषात्मक अनुभूति वर्तमान है। लेकिन जहाँ मानव ने वाणी द्वारा अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को स्थायित्व देने की चेष्टा की है वहाँ पशु-पक्षी और उद्भिद् जगत् विवश हैं। पशु-पक्षी या उद्भिद् जगत् अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को स्थायित्व मानव की तरह भले ही न दे सकें पर इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सरिता का कलकल निनाद, अमराई में बैठे हुये पपीहे की 'पी कहाँ' 'पी कहाँ' की पुकार, नीड़ में सायंकाल लौटते हुए पक्षियों का कलरव, उषा के आगमन के साथ ही कलियों का विहसना स्थायी है और साथ ही है संगीतात्मक अर्थात् मधुर लययुक्त एवं भावात्मक।

मनुष्य ने अपनी अनुभूतियों को वाणी द्वारा संगीतात्मक रूप में अभिव्यक्त करने की चेष्टा कब से की यह कहना तो कठिन है लेकिन प्राचीन जातियों के

इतिहास में—जिसका अधूरा ज्ञान ही आज उपलब्ध है—इसका संकेत अवश्य मिलता है कि शब्दों का उस काल तक कोई विशेष महत्त्व नहीं था तथा विषय-विधान का विकास भी नहीं हो सका था। भाषा ऐसी अवस्था में थी जिसमें भावप्रकाशन की क्षमता न्यून थी और भावप्रकाशन के विस्तार के लिये भाषा के साथ वाद्य यन्त्रों की सहायता अपेक्षित थी। वाद्य यन्त्र भी अपने पूर्ण विकसित रूप में न थे वरन् साधारण वाद्य यन्त्र ही काम में आते थे। इस काल के प्राप्त काव्य यह भी सिद्ध करते हैं कि इस काल तक सामूहिक और वैयक्तिक भावना में अधिक अन्तर न आ सका था। अस्तु, इसके द्वारा कुछ अंशों में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काव्य में प्रकट किये गये मनुष्यों की भावनाओं से अधिक प्रभावित उनके संगीतात्मक रूप से होता रहा होगा क्योंकि समाज की अविकसित अवस्था में मनुष्य के लिये काव्य में प्रकट की हुई भावनाओं को समझना सहज सम्भव नहीं। स्वर सम संगीत की उत्पत्ति जिसका—उल्लेख ऊपर किया गया है—यहीं से मानी जा सकती है। काव्य के इसी संगीतात्मक स्वरूप का विकास होता रहा और क्रमशः इसकी दो शाखायें हो गयीं। एक शाखा का विकास संगीत के शास्त्रीय विधान के रूप में हुआ और दूसरी का काव्य के रूप में। काव्य में संगीतात्मकता और चित्रात्मकता दोनों का सामञ्जस्य और संतुलन हो चूँकि उसमें जीवन डाल देता है, इसलिये कवि की सफलता भी दोनों के सामञ्जस्य और समन्वय उपस्थित करने में ही है। ऐसे काव्य का जो अपने प्रारम्भिक काल में अवश्य लोक गीतों के रूप में रहे होंगे, नमूना अब प्राप्त नहीं है। आज तो लोकगीतों का वही नमूना मिलता है जहाँ संगीत (शास्त्रीय संगीत) और गीत का अंतर स्पष्ट होने लगता है। संगीत में जहाँ शास्त्रीय विधान की रक्षा का आग्रह होता है वहां लोकगीतों में भावुकता और आत्माभिव्यञ्जना का। विद्वानों के मतानुसार लोकगीत और संगीत के तीन प्रधान अन्तर हैं।

संगीत	लोक गीत
(१) संगीत में शब्दों का महत्व नगण्य है वे केवल स्वर के विस्तार और संकोच के लिये आते हैं। स्वर प्रसार ही उनका प्रधान लक्ष्य है। अर्थ की परिधि को केवल स्वरों मात्र करते हैं।	(१) लोक गीतों में शब्द केवल स्वर के विस्तार और संकोच के लिये नहीं आते वरन् अर्थ की परिधि को विस्तृत भी करते हैं।

(१) संगीत के लिये वाद्य यन्त्रों की अपेक्षा है।	(२) गीतों के लिये वाद्य यन्त्र अनिवार्य नहीं।
(३) संगीत शास्त्रीय विधान के बन्धन से बद्ध है।	(४) गीत शास्त्रीय विधान के विरोध में आत्मनिष्ठा का आधार लेकर चलते हैं।

लोक गीत जिस अवस्था में प्राप्त हैं उसमें शब्द और अर्थ दोनों की प्रधानता है और आग्रह है संगीतात्मक एवं रागात्मक अनुभूति का, शास्त्रीय संगीत का नहीं। एक विशेषता इन लोक गीतों की यह भी है कि इनका विरोध न केवल शास्त्रीय संगीत से वरन् काव्य के स्वीकृत मानों की कृत्रिमता के प्रति भी है। जो आत्मीयता, आत्मनिष्ठा और संवेदनशीलता उनमें है वह शास्त्रीय काव्य-विधान में नहीं।

कुछ पश्चिमी विद्वानों ने भी गीत के उपर्युक्त मानों को स्वीकार करते हुए कहा है :—

"गीत काव्य का कवि, जगत् के सारे तत्वों को अपने में समाहित करता है, अपने वैयक्तिक भावों के प्रभाव से इसे पूर्णतः आत्मसात् करता है और इस आत्मपरता को सुरक्षित रखने वाली शैली में अभिव्यक्ति करता है।"

(टिरोल—मेथड ऐण्ड मैटिरियल्स ऑव् लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० ५)

[इसी प्रकार 'पालग्रेव' कहते हैं कि—

गीत काव्य इकहरे विचार, अनुभूति या स्थिति का चित्रण है, जिसमें संक्षिप्तता मानवीय भावना का रंग और गति अवश्य होनी चाहिये।"

(पालग्रेव्स गोल्डन ट्रेजरी ऑव् सांग्स ऐण्ड लिरिक्स—प्रिफेस)

हिन्दी साहित्य में लोक गीतों के जो उदाहरण प्राप्त हैं वे हिन्दी भाषा की विभिन्न बोलियों' में ही हैं। इसका प्रधान कारण सम्भवतः एक यही है कि 'बोली' में जितनी सरसता और आत्मीयता पायी जाती है उतनी व्याकरण के नियमों से आबद्ध भाषा में नहीं। लोक गीतों के निम्न कतिपय उदाहरण सहज सिद्ध करेंगे कि काव्य के मानों और शास्त्रीय संगीतों के विधानों की अवहेलना करने पर भी वे गेय हैं और उनमें है सरसता और आत्माभिव्यक्ति। राजपूताने में स्त्रियाँ हवेलियों में गा रही हैं—

थाम चल्या छा भँवर जी ! पीपली जी,
रौंजी ढोला ! हो गयी घेर घुमेर।
बैठाँ की रुत चाल्या चाकरी जी,
ओजी म्हाँरा सास सपूती रा पूत।
मतना सिधारो पूरब की चाकरी जी॥

[गुजरात की कोई कन्या ससुराल जा रही है और कहती है—
अमे रे लीला वननी चरकलड़ी उड़ी जाशुँ परदेश जी।
आज रे दादाजीना देशमाँ काले जाशुँ परदेश जी॥

[बिहार युक्तप्रान्त और मध्यप्रान्त में आइये, कहीं सुहाग की रात है और आनन्द में मग्न वधू गा रही है—
आज सोहाग कै रात चन्दा तुम उइहौ।
चन्दा तुम उइहौ सुरुज मति उइहौ॥
मोर हिरदा बिरस जनि किहेउ मुरग मति बोलेउ।
मोर छतिया बिहरि जनि जाइ तू पह जिनि फाटेउ॥
आजु करहु बड़ी राति चन्दा तुम उइहौ।
धिरे धिरे चलि भोग सुरुज बिलम करि अइहौ॥

[अथवा 'मेघदूत' के संदेशवाहक मेघों की भांति विरहिणी का बादलों द्वारा पिया के पास संदेश भेजना कितना हृदयस्पर्शी है—
कारिक पियरि बदरिया झिमिकि दैव बरसहु।
बदरो जाइ बरसहु वही देस जहाँ पिया कोड़ करैं॥
भीजै आरर पाथर तम्बुआ कनतिया।
अरे भिवराँ से हुलसै करेज समुझि घर आवैं॥

और इन्हीं लोक गीतों के सदृश बीसलदेव रासो के भी पद हैं। रानी राजमती उसके (परदेश) जाते हुए अपने पति से विनय करती है कि वह भी उनके साथ चलेगी। एकाकी रहना उसके लिये दुर्लभ है—
हउ न पतीजुं राजा थाकी से बात।
साधाण चालिस्यइ राइ कइ साथ।
बादली हुइ करि वापरउं।
पावत सार सिरयाउ ढोलिसिया बाढ़॥
ऊभी पहरइ जागिसिउ।
अण परि सेविस्यउ आपणयउ राय॥—(पद्य संख्या ६२-)

निस्सन्देह उपर्युक्त लोक गीतों के उपस्थित किये गये उदाहरण यह सिद्ध करेंगे कि लोक गीतों में कल्पना की विशद उड़ान नहीं, संगीत का शास्त्रीय विधान नहीं, न छन्द के कृत्रिम मार्गों का आग्रह नहीं, है केवल साधारण शब्दों में सरलता की सहज स्वाभाविक और मार्मिक अभिव्यक्ति। लेकिन यदि काव्य रागात्मक हृदयों की आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति है तो ये लोक गीत निश्चय ही काव्यात्मक हैं। इनमें भावना और संगीतात्मकता का समन्वय है। छंदों में चूंकि छन्दों की यतिबद्धता ही उनके आन्तरिक लय को स्थिरता प्रदान करती है इसलिये छन्द शास्त्रियों ने प्रत्येक छन्द के लिये कितनी मात्राओं के पश्चात् यति आवश्यक है इसका निर्देश कर दिया है। इसके विपरीत संगीत के हेतु रचे गये पदों और लोकगीतों में यति-निर्धारण का नियम लागू नहीं होता वहाँ 'स्वरसम' का नियम ही साधारणतया स्वीकृत हुआ है। बीसलदेव रासो के रचयिता ने भी 'स्वरसम' के नियम को ही सम्भवतः स्वीकार किया है, और यही कारण है कि यद्यपि बीसलदेव रासो के छन्दों में यतिबद्धता का अभाव है फिर भी वे गेय हैं।

काव्य के कृत्रिम मार्गों के अभाव और शास्त्रीय संगीत के विधानों की अनियमितता के कारण ही शायद प० मोतीलाल जी मेनारिया ने कहा है कि "बीसलदेव रासो गीतकाव्य नहीं है। राजस्थान में यह कभी गाया नहीं गया, न आज गाया जाता है और न इसमें गीतकाव्य के कोई लक्षण मिलते हैं। गीतकाव्य की भाषा में जो चलतापन, छन्दों में जो गति, शब्दों में जो मर्मस्पर्शिता और विषय में जो लोकप्रियता होनी चाहिये वह इसमें नहीं है।"[1] लेकिन छंद और संगीत का जो मूल भेद ऊपर बताया गया है उस० अनुसार तो रासो की गेयता में सन्देह प्रगट करना उचित नहीं। 'रघुवर जसप्रकाश' अथवा 'रघुनाथ रूपक गीतांरो' में वर्णित गीतकाव्य के लक्षणों के बीसलदेव रासो के पदों में प्राप्त न होने के कारण यदि इसकी गेयता में प्रश्न चिन्ह लगाया जाता है तब यह कहना पड़ेगा कि 'गीतकाव्य' और 'गीत' का अन्तर समझने का प्रयत्न नहीं किया गया है। 'रघुवर जसप्रकाश' अथवा 'रघुनाथ रूपक गीतांरो' दोनों लक्षण ग्रन्थ हैं जिनमें 'गीत' छंद के लक्षणों का वर्णन है। बीसलदेव रासो 'लोक गीत' है इसलिए इसमें 'गीत' छंद के लक्षण नहीं प्राप्त होते। अब रही बात इसकी भाषा में चलतापन, शब्दों में मर्मस्पर्शिता

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० ८७।

तथा विषय में लोकप्रियता के प्रभाव की। इनके लिये तो यही कहना पर्याप्त होगा कि इसकी प्राचीनतम प्रति जो आज प्राप्त है वह १६३३ की है। और और इसका रचनाकाल यदि ११ वीं या १२ वीं शताब्दी का माना जाय जैसा कि अनेक कारणों से मानना पड़ता है तब तो यह कहना ही पड़ेगा कि भाषा में चलतापन, शब्दों में मर्मस्पर्शिता और विषय में लोकप्रियता के कारण ही यह चार सौ वर्षों पश्चात् लेखबद्ध हुआ।

भाषा

यह ठीक है कि आज की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति हमें यह सोचने के लिये बाध्य करती है कि यह ग्रन्थ कई शताब्दियों तक मौखिक रहा फिर भी इसी प्राचीनतम प्रति की भाषा के अन्य स्थल में छिपी हुई प्राचीनता ११ वीं शताब्दी की भाषा का परिचय देती है। यहाँ वि० स० १६३३ वाली हस्तलिखित प्रति से प्राप्त भाषा का संक्षिप्त व्याकरण इसलिये उपस्थित किया जा रहा है कि इसके द्वारा ग्रन्थ के रचना-काल की भाषा पर कुछ प्रकाश पड़ सके—

उच्चारण

[१] ग्रन्थ में तालव्य 'श' और मूर्द्धन्य 'ष' का प्रयोग नहीं हुआ है। 'ष' का प्रयोग 'ख' के रूप में हुआ है—

षाण	खान
षाल	खाल
षेद	खेद
षाडउ	खाडउ 'खारा'
षउलि	षउलि (खोरि)—इत्यादि।

[२] वर्णमाला के अक्षर 'ऋ' और 'लृ' का प्रयोग शब्दों के साथ नहीं है। मूर्द्धन्य 'ण' का प्रयोग शब्दों के अन्त तथा मध्य में दन्त्य 'न' के स्थान पर बराबर हुआ है। दन्त्य 'न' से प्रारम्भ होने वाले शब्दो में मूर्द्धन्य 'ण' का प्रयोग नहीं हुआ है—

बाहण	बाहन
भणई	भनई
गिणई	गिनई

आणिग्यो	आनिग्यो
मयण	मयन
नागिण	नागिन
मयण	मयन
जिण	जिन, इत्यादि।

[२] अपभ्रंश की भाँति संज्ञाओं के अन्त में 'डा', 'डी' और 'ड' का प्रयोग मिलता है।

गूजडा	सेजडी
मुखडी	गोरडी
रावडी	चूनडी
दुबडी	आपडी
धडवड	पतडड इत्यादि।
दोयड	

कारक

बीसलदेव रासो की १६१२ वाली प्रति में विभक्तियों की दशा बड़ी विचित्र है। डिंगल में प्रयुक्त होने वाली विभक्तियाँ जो प्रायः व्यवहार में लायी गयी हैं उसका प्रधान कारण 'रासो' का १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखा जाना ज्ञात होता है। डिंगल में कारक दो प्रकार से व्यक्त किये जाते हैं। एक प्रकार वह है जिसमें शब्दों के साथ विभक्तियों का प्रयोग होता है और दूसरा प्रकार वह है जिसमें शब्दों के साथ परसर्ग (Post position) का व्यवहार किया जाता है। रासो में इन दोनों प्रकारों का प्रयोग हुआ है। दोनों प्रकारों के प्रयोगों का उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :—

१. विभक्ति के साथ—

प्रथमा—राइ, गोरि, गोरडि, पंडइ, जोयिनउ।

द्वितीया—मुपिकउ, पतडउ, मीलणउ, सोहलउ, श्रीयमउ, कंपउ।

तृतीया—हस्ते, राइ, मुखि, दुखि, दिठि।

चतुर्थी—अजमेरी।

पञ्चमी— +

षष्ठी—सुरगह, सुरह, धनह, जोवनह।

सप्तमी—अजमेरि, उजगइ, ननहि, सिरि, घरि, दुवारि, देसि, मनि।

अष्टमी (सम्बोधन)—पंडिया, बासगदेव, गोरी, सखी— इत्यादि।

२. परसर्ग के साथ—

कर्त्ता— +

कर्म — माधवनइ, राणीनइ, जोगीनइ, राजमतीनइ, गोरीनइ।

करण—आणिकरि, मामासा, पुरषसिउ, स्वामी सिऊ, घरधीरयं।

सम्प्रदान— +

अपादान—गडहते, फलाते।

सम्बन्ध—गवरका, उसगाणा की, भोजकइ, सधालापइउ, 'बुलइव', जेसल-
जेसलमेररी', अजमेरा कपड।

अधिकरण—मनमाहे, राजमाहि, परदेसइ पर, पगे मो।

सम्बोधन—हे हिरणीय, हे चभणा, हे धण—इत्यादि।

सर्वनाम

पुरुष वाचक

	प्रथम पुरुष	द्वितीय पुरुष	तृतीय पुरुष
कर्त्ता	म्हे, म्हा	तुम्हें, तू ये, तउ	उण, उव, सो
कर्म	म्हाका, हमि, म्हानइ, म्हारइ, म्हाकइ, मोनइ, मोइ	तोहि, तोन, तूनइ, तूहेइ, तउ, तुमहो	उनवि, उणनइ, तिहा, तिणइ सोइ
करण	म्हां, स, हमस्यं	तुम्हस, तं	तिणि सं, तिणासं
सम्प्रदान	+	+	+
अपादान	+	+	+
सम्बन्ध	म्हाको, म्हाकइ, मउ, मो, म्हारइ, माका, म्हारउ, म्हारीय, म्हा, म्हारी, मुधि, म्हाका, म्हारा, मोरा	थारइ, थारउ, थारी, थारा, तिस, तेरो, थाकउ, तुम्ह, तोरीं	तिणि, उणरइ
अधिकरण	+	+	—इत्यादि।

अन्य सर्वनाम

'कोई' (अनिश्चय वाचक) 'जे' (सम्बन्ध वाचक)

'एइ' (निश्चय वाचक) 'किसउ' (सर्वनामिक विशेषण)

'जउ' (सम्बन्ध वाचक) 'सो' (सम्बन्ध वाचक)

'जिण' (सम्बन्ध वाचक) 'काइ' (प्रश्नवाचक
'कइ' (प्रश्नवाचक) 'सउ' (सार्वनामिक विशेषण),
'किंव' (प्रश्नवाचक) 'किमकइ' (अनिश्चयवाचक),
'कउ' (प्रश्नवाचक) 'काइ' (अनिश्चयवाचक),
'इसी' सार्वनामिक विशेषण) 'यही' (निश्चयवाचक)
'ए' (निश्चयवाचक) 'कउण' (प्रश्नवाचक',
'ते' (सम्बन्धवाचक बहुवचन) 'एह' (निश्चयवाचक)
'कुण' (प्रश्नवाचक)-इत्यादि ।

अव्यय

जिमि–जैसे । किम–कैसे । जाणि–मानों । कइ—या, अथवा किसा–कैसा । किसी–कैसी । तयइ–तब । इय–इस प्रकार तब—तब । सहि–साथ । किसा परि किस प्रकार । क–कैसे । सम—समान अद—और :

क्रिया

वर्तमान काल

कारक की भाँति क्रियाओं का रूप भी बीसलदेव रासो में प्राय डिंगल का वही है । हिन्दी में वर्तमानकालिक क्रिया के साथ जिस अर्थ में 'है' का प्रयोग होता है डिंगल में उसी अर्थ में प्राय. 'छइ' प्रयुक्त होता है । रासो में है के अर्थ में 'छइ' का प्रयोग प्रायः वर्तमान काल की क्रिया के अन्य पुरुष में पाया जाता है ।

अन्य पुरुष—बोलावइ छइ, वाजइ छइ, दीजइ छइ, बइठी छइ, बरसइ छइ, मेलइ, मोटर छइ—इत्यादि ।

वर्तमान काल की क्रिया में है के अर्थ में 'छइ' के तथा उकारान्त प्रयोग के अतिरिक्त अपभ्रंश के क्रिया पद 'इकारान्त' का भी प्रयोग अनेक स्थलों पर इस काव्य में किया गया है ।

	एक वचन	बहु वचन
अन्य पुरुष—	छाहलइ, भणइ, गिणइ, कहइ, गाइ, चितवइ, जाइ ऊचरइ, पुछइ, नाचइ, बोलावइ, हसावइ, बरिसइ, इत्यादि ।	+
मध्यम पुरुष-	धाउ, जाउ, जाणउ, लवउ—इत्यादि	+
प्रथम पुरुष—	वीनवउ, मनवउ, गरजू, पडउ, लागु, अयउ, कहउ—इत्यादि ।	+

भूतकाल

भूतकालिक क्रियाओं में डिंगल में मूल क्रिया के पीछे 'इउ' 'यउ' 'इउ'

तथा कहीं-कहीं 'इअउ' और 'ठउ' लगा कर सामान्य भूतकाल के रूप बनाये जाते हैं—रासो में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं—

	एक वचन	बहु वचन
अन्य पुरुष—	चालियउ, रहिउ, आयियउ, रच्यउ, कियउ, खोयउ, हरव्यउ, बोलियउ, आलिंगीयउ, दीठउ, मेलहउ, वइठउ—इत्यादि	+
मध्यम पुरुष—	कहउ, सुणउ, इत्यादि ।	+
प्रथम पुरुष—	छोड़उ, लिजउ, हुवउ, डालोयउ, चूकउ, परिहरयउ, इत्यादि ।	+

रासो में भूतकाल की क्रियाओं के उपर्युक्त रूपों के अतिरिक्त भी जो अन्य रूप प्राप्त हैं उनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

	एक वचन	बहु वचन
अन्य पु०—	सिरजी, दीन, बोल्हा, आया (खड़ी बोली) दिया (खड़ी बोली) हुई (स्त्री० खड़ीबोली), दिन्ही (स्त्री), रहा (खड़ी बोली), गयो, आवीया, छाड्या, कीन, गई (स्त्री० खड़ी बोली), गया (पु० खड़ीबोली,)—इत्यादि ।	+
मध्यम पु०—	देख्यो, लगाड़ा (खड़ी बोली) आइया, सिरजो, दिन्ही थी, पहुता—इत्यादि ।	+
प्रथम पु०—	बिसारा, करती (स्त्री० खड़ी बोली), बोलइ थी (स्त्री० खड़ी बोली) छुडी (स्त्री०) बोलिज्यो, थाकीय, कही (स्त्री० खड़ी बोली), पिछाणीया आदि ।	

भविष्यत् काल

भविष्यत् काल के रूप डिंगल में दो तरह से बनाये जाते हैं १—मूल क्रिया के अन्त में 'सी', 'स्यू' तथा 'स्यां' लगा कर और २—'ला', 'लो' तथा 'लौं' लगा कर। बीसलदेव रासो में द्वितीय प्रकार से बने भविष्यत् काल की क्रियाओं के रूप का अभाव है।

	एक वचन	बहु वचन
अन्य पु०—	आविसो, मरेसो—इत्यादि ।	+
मध्यम पु०—	+	+
प्रथम पु०—	चालिस्यां, आणिस्यां, मिलेस्यो, छोलिस्यां, पर्णालिस्यां, करेस्यां, आविस्यां, पूछिस्यां, इत्यादि ।	+

'सो' 'स्यू' तथा स्यां' लगा कर बने हुए भविष्यत् काल की क्रियाओं के

रूप के अतिरिक्त जो अन्य रूप 'बीसलदेव' रासो में प्राप्त हैं वे नीचे दिये जा रहे हैं—

	एक वचन	बहु वचन
अन्य पुरुष—	जाणिस्यइ, चलवालागउ, मिलिसीय, आविया, विसामइ, मिलैसइ (स्त्री०)।	+
मध्यम पुरुष—	+	+
प्रथम पुरुष—	करेस, जाणिसिउ (स्त्री०) सेविस्यउ (स्त्री०) मिलउ, बहुचिज्यो इत्यादि।	!-

पूर्वकालिक क्रिया—

डिंगल में क्रिया के अन्त में 'एवि' 'एविय' 'इ' 'ई' ,'प्र' 'य' 'नइ' 'करि' आदि प्रत्यय लगाकर पूर्वकालिक क्रिया के रूप बनाये जाते हैं। रासो में उपर्युक्त प्रत्ययों में से कई एक को लगाकर पूर्वकालिक क्रिया के रूप तो बनाये गये ही हैं लेकिन इन प्रत्ययों के योग से बने हुए पूर्वकालिक क्रियाओं के रूपों के अतिरिक्त भी कतिपय अन्य रूप इसमें प्राप्य हैं। नीचे दोनों प्रकार के रूपों का उदाहरण उपस्थित किया जा रहा है—

(अ) डिंगल के प्रत्ययों के योग से बनी हुई क्रियाएँ—

सुदाइ, कहइ, जाइकरि इत्यादि।

(ब) डिंगल के प्रत्ययों के अतिरिक्त पूर्वकालिक क्रियाएं—

सहणजाइ, कहिज्योजाइ, देयाडजाइ, मेल्हीजाइ—इत्यादि।

आज्ञा विधि—

रासो में आज्ञा और विधि के रूप निम्न प्रकार के पाये जाते हैं—

	एक वचन	बहु वचन
अन्य पुरुष—	कीजइ, सुणउ, देइ, गमकरउ, करउ, इत्यादि।	+
मध्यम पुरुष—	धाणिज्यो, देज्यो, जोइज्यो, करिज्यो, विटायायज्यो, मानिज्यो, सुणिज्यो, निरखाढिज्यो, चाखिज्यो, सुण, सुणउ, कहि, आवउ—इत्यादि।	+
प्रथम पुरुष—	+	+

———

गवरका[1] नंदन त्रिभुवन सार ।
नाद भेदइ[2] थारइ उदर भंडार ॥
एक दंतउ मुखि[3] झलहलइ[4] ।
मुषिकउ[5] वाहण तिलक सैंदूरि[6] ॥
करि जोड़ि[7] नरपति[8] भणइ ।
जाणि करि[9] रोहणी त्रिमि[10] तपउ[11] सूरि[12] ॥ १ ॥
भवण नइ देपउरे रवि तपई[13] ।

---

१. अ० २ गौरी । आ० ६, ६ गवरिवा । आ० १२ गउरि ।
२. अ० २ आ० ६, वेदा ।
३. अ० २ आ० ६, मुख । आ० १२ मुखे ।
४. आ० ६ झलमलइ (झलमलि = झलमलइ) ।
५. अ० २ मूषा आ० ६ मूसाका ।
६. अ० २ सैंदुर, आ० १२ सिंदूर ।
७. अ० २ जोड़ै ।
८. आ० ६ नाइलो (= नाल्हो) ।
९. अ० २ जाणिक, आ० ६ जाणकि ।
१० अ० २ रोहिणीउ, आ० ६ रोहिणीइउ, आ० ६ रोहिणीयु, आ० १२ रोहिणीजिउ ।
११. आ० ६ तपे आ० १२ तपइ ।
१२. आ० १२ सूर ।
१३ आ० १२ तलइ ।

यह छंद आ० ६ में १, अ० २ में २, आ० ६ में १, आ० १२ में १ है ।

इस छंद की अंतिम पंक्ति हस्त लिखित प्रति की छंद नं० २ की प्रथम पंक्ति है । लेकिन यह भूल से लिखी हुई बात होती है । क्योंकि यह पंक्ति ध्रुवक के रूप में है जो प्रत्येक छंद के अंत में आता है ।

हंस गमणि[१] मृगालोयनी[२] नारि ।
सीम सयारइ दिन गिणइ[३] ॥
सतपिण[४] उछोयइ राजदुवारि ।
चिहु दिसि नाह निहालती ॥
का' सिरजी[५] उलगाणा[७] की नारि ।
जाइ दिखाडउ झूरता[८] ॥ २ ॥

दुसरो[९] कडवउ[१०] गणपति गाइ ।
नवणि नवकरि[११] लागे जी पाइ[१२] ॥
तोंदि लंबोदर वीनवउ[१३] ।
सिद्धि बुधि का स्वामी मुगति दातार[१४] ॥

---

१. अ० २ हस वाहणि, आ० १२ गज गमणी ।
२ अ० २ मिगलोचनि, आ० ६ मृगलोचणी ।
३. आ० ६ गणै ।
४. आ० ६ सायधण, आ० १२ ततपिण ।
५. अ० २, आ० ६ जिण, आ० १२ काइ ।
६ अ० २ सिरजइ, आ० ६ सिरजा ।
७. आ० ६ उलिगणघर ।
८. आ० ६ झूरती, आ० १२ रे झूरता ।

यह छंद अ० २ में १, आ० ६ में २, आ० ६ में २, आ० १२ में ३ है । अ० २ में एक और अतिरिक्त पक्ति है—"इसी नारी न देव दुनिणीकाइ" आ० १२ में चौथी पक्ति है—"नाहनइ जोवइरे चिहुँदिसइ ।"

९ आ० १२ दूसरइ ।
१० आ० ६ कडवैजी, आ० १२ कडुवइजी ।
११. आ० ६ नमीकरी, आ० १२ नवण करूँ ।
१२. अ० २ बीनमू, आ० ६ बीनउ, आ० १२ वीनउ ।
१३ अ० २ भूलेउ, आ० १२ भूलोजी ।
१४. आ० १२ अदलागुजी पाइ ।

चउथि करउं थारउ पारखउ ।
तंजी भूलउजी[1] अक्षर आणिज्यो ठाइ ॥ ३ ॥

हंस वाहण देवी करधरउ[2] वीण ।
जूठउ[3] किरत कहइ[4] कुल हीण[5] ॥
वर देज्यौ[6] मातापारदा[7] ।
भूलउ[8] अक्षर आणिज्यो ठाइ ॥
तइ[9] तूठी[10] अक्षर[11] जुरइ[12] ।
नालह भणइ अति सरसीय वाणि[13] ॥ ४ ॥

---

१. आ० १२ सिद्धि नइ बुद्धि तणउ भंडार ।

यह छंद आ० ६ में ३, अ० २ में ४, आ० ६ में ३, आ० १२ में २ है । लेकिन अ० २ में १, २, ४ तथा ५ पंक्तियाँ निम्न प्रकार से हैं :—

१. तुठी सारदा त्रिभुवन-माई ।
२. देय विनायक लागू हू पाय ।
४. चउसठि जोगिनि का अगिवाण ।
५. चउथ जोहारू खोपरा ।

२. आ० ६ ग्रहइ, आ० १२ करिधरी ।
३. अ० २ कुकठकंथू नोलू , आ० १२ भूडउ जो कवित ।
४. आ० ६ कहूँ ।
५. आ० ६ मतिहीण ।
६. आ० ६ दीयो ।
७. आ० ६ देवी सारदा, आ० १२ सारदा ।
८. आ० १२ भूलोजो ।
९. अ० २ तो ।
१०. अ० २ तूठा, आ० १२ तूठइ ।
११. अ० २ वर ।
१२. अ० प्राविजइ, आ० १२ जुडइ ।
१३. आ० १२ वाण ।

यह छंद आ०६ में ४, अ०२ में ५, आ०६ में ४, आ०१२ में ४ है ।

नारद रसायण रस भरी गाइ।
तूठी छइ[1] सारदा त्रिभुवन माय ॥
ढलगाथा गुण[2] मनवइ[3] ।
मगुण[4] सामाणमा[5] सीपिजा[6] रानि ॥
स्त्रीयचरित्र[7] धण[8] दापू[9] लहइ ।
एकही अक्षर[10] वचन[11] निधान ॥ ५ ॥

किंतु अ० २ में २, ३, ५ और ६ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

२. कुकड कथू चोरू तुलहीण।
३. तो तूठा वर प्रापिजइ।
५. वीसलदे रास प्रगासता।
६. नाल्ह कहइ जिणि आनंद हा माडि।

इसी प्रकार आ० ६ में निम्न दो पंक्तियां अतिरिक्त है.—

सरसता सामणि करी ते पसाय।
रास कहूँ राजा वीसन्राय ॥

१. आ० १२ तूनह तूठी छै।
२. आ० ६ रस।
३. आ० ६ वराणउ, अ० २ वरणता, आ० १२ वरणवु।
४ अ० २ कुकउ, आ० १२ मुगुण।
५. आ० ६ सुमाणस, आ० १२ सुमाणसा।
६ अ० २ जिण कहई, आ० ६ तुम्हे नीपज्यो, आ० १२ सो नीपज्यो रास।
७ अ० २ अस्त्री चरित्र, आ० १२ स्तीय चरित।
८ अ० २ गति।
९. अ० २ फो, आ० १२ लपलहै।
१०. अ० २ आखर।
११ अ० २ रस सरइ।

यह छंद आ० ६ म ५, अ० २ में ३, आ० ६ में ४, आ० १२ म ५ है। किंतु अ० २ में और आ० ६ में ४थी पंक्ति इस प्रकार है.—

राजमतीय कुमरीय मनह चितवइ[१]।
हसिवि बेटी[२] बाग पहि जाइ॥
सुणउ नरेसर वीनती।
रूपक इम मोहनी जाणि[३]॥
सुरगिहि[४] मोहइ[५] देवता।
जोइज्यो वर अति सगुण[६] सुजाण॥ ६॥

पडिया[७] तोन बोलावइछइ[८] राय[९]।
लेपतडउ[१०] पाड्या[११] रावलइ[१२] आव[१३]॥

आ० २—सुकठ कुमाणस जिण कहई रास।
आ० ६—कुकठ कुमाणस सीप न लाय।
आ० १२ में प्रथम पक्ति है—नालद सायण रासभ गाय तथा अंतिम पक्ति है—एकणि कुनचन सरव विणास।
१. आ० ६ मनहि चिताय।
२ आ० ६ हस हस बेटी।
३. आ० ६ माही जाणि।
४. आ० १२ सरगहि।
५. आ० १२ मोह्याछै।
६ आ० १२ सुगण।

यह छद आ० ६ मे ६ है, आ० १२ में ६ है। लेकिन आ० १२ में इसकी प्रथम चार पक्तियाँ है —

१. राजमती यौवन भरी।
२. बापनइ पासितइ मेल्हा कुवरी।
३. सुणहु नरेसर वीनती।
४. रूपइक दर्प मेन्ती जाण।

७. आ० २ पाड्या।
८. आ० २ हा, आ० १२ ता नइ बोलावइ छै।
९. आ० १२ राव।
१०. आ० ६ पतइउ लेइ करि।
११. आ० २ जसा, आ० १२ थे।
१२ आ० २ मेगाउ, आ० १२ पैला जो।
१३. आ० २ आई।

सुरर[1] सीं[2] था म्हारा[3] पंडिया[4]।
आथि कोई नर[5] चतुर सुजाण ॥
सुरगद[6] मोहद[7] देवता।
घर धीसल विचिक्षण राजा वीसलदेउ चहुआण ॥ ७ ॥

गढ़ अजमेरि[8] वसइरि[9] भूवालि[10]।
चहुआण कुल[11] तिलक सिंगार[12] ॥

---

१. अ० २ सुदिन, आ० १२ सोनर।
२. अ० २ कहे, आ० ६ कवहि, आ० १२ सोये।
३. अ० २ रूड़ा, आ० ६ न।
४. आ० ६ ओवसी।
५. आ० १२ नागर।
६. अ० २ आ० ६ सुरनर, आ० १२ सुरगहि।
७. आ० १२ मोहइ छै।

यह छन्द आ० ६ में ८, अ० २ में १५, आ० ६ में १२, आ० १२ में ८ है। किन्तु अ० २ में पक्ति नं० ४ और ६ इस प्रकार हैं :—

४. चतुर नागण ईसउ आणच्यो चंद।
६. जिम गोवल माहिं सोहइ गोव्यंद।

और आ० ६ में पंक्ति न० ४ और ६ हैं :—

४. चतुर नर आणजो वींद।
६. उवाका चरण दीसि जिसा पुनिम चंद।

आ० १२ में अंतिम पंक्ति है—वीरविचक्षण वीसल चहुवाण।

८. आ० ६ अजमेरा, आ० १२ अजमेरे।
९. आ० ६ वसैजी, आ० १२ वसइरे।
१०. आ० ६ भूपाल, आ० १२ भोवाल।
११. आ० ६ वंश, आ० १२ चहुंवाणा कुल।
१२. आ० ६ नेलाडि।

तुलीय[1] घरी से[2] ऊलगइ ।
मइमत्तइ[3] स्त्रीय सहस अठार ॥
लाप तेरा घरे[4] पापरइ[5] ।
ईसउ वर वीसलदे[6] चहुआण ॥ ८ ॥

वामण[7] भाट[8] बोलाइइसइ[9] राय ।
लगन सोपारीय[10] दीन[11] पठाइ[12] ॥
गइ अजमेर[13] थेतन[14] करउ ।
उचइ था पाटि[15] बइसारि[16] नइ पपालिश्यो पाइ ।

---

१. आ० ६ चोरास्या ।
२. आ० ६ जिहा, आ० १२ सेई ।
३. आ० ६ मयदह ।
४. आ० ६ पाषर ।
५. आ० ६ पडै ।
६ आ० ६ वीसलते, आ० १२ सुवर वीसल ।
  यह छन्द आ० ६ म ६, आ० ६ म १७, आ० १२ म ६ है ।
किन्तु आ० ६ म पक्तियाँ ४ और ६ इस प्रकार हैं :—
    ४. वाध्या हस्ती घुरै नीसाण ।
    ६ पाडीया साखी वर वासल राय ।
  आ० १२ म ४ थी तथा ५ वीं पक्तियाँ हैं :—
    ४. मयमत्त हस्तीय गुजइलै नारि ।
    ५ लाप तुरी पाषर पडै ॥
७. अ० २ पाडया, आ० ६ पाडीया ।
८. अ० २ आ० ६, तोहि ।
९. अ० २ चालावइ, आ० १२ छै ।
१०. आ० १२ सुपारीय ।
११. आ० ६ दीय, अ० २ लेकरि आ० ६ लेई ।
१२. अ० २ जाहि, आ० ६ राजलैजाय ।
१३. अ० २ अजमेरा, आ० १२ अजमेरि ।
१४ आ० ६ आवश्या, आ० १२ गमन ।
१५. अ० २ चउरी, आ० ६ चाचर ।
१६. अ० २ वइसी, आ० ६ बैठ ।

बेटी परिणयो राजा भोज की।
राजमती वर बीसल राउ[1] ॥ ९ ॥

दीन[2] सोपारइ[3] हरषीयउ[4] राउ[5]।
मनह आणंदीयउ अतिहि उछाह ॥
वाजे वाजइछइ नीसाणे घाउ।
घरिघरि[6] गुडी रे उछली[7] ॥
दीयइ वाजइछइ दुदवडी।
कामणि गावइछइ[8] मंगल च्यारि[9] ॥
चहुआण कुलि[10] उधरउ[11]।
जइघरि[12] आवी[13] जाति पवारि[14] ॥ १० ॥

---

१. आ० १२ राव।

यह छन्द आ० ८ में १०, अ० २ में १६, आ० ६ में १६, आ० १२ में १० है। आ० १२ में ४थी पंक्ति है :—पाटि बैसारि पापालिग्यो पाइ।

२. अ० २ आ० ६ दई, आ० १२ दीन्ही।

३. आ० १२ सोपारी।

४. आ० ६, आ० ८, मनहरषीयउ, अ० २ मनिहरष्योल्हइ, आ० १२ मनहरष्यीयो।

५. आ० १२ राव।

६. अ० २, आ० ६, गढमाहिं।

७. अ० २, आ० ८, ऊछली।

८. अ० २, आ० ६, तोरणि, आ० १२ गावै।

९. आ० १२ च्यार।

१०. आ० ६, वस, आ० १२ कुल।

११. आ० १२ ऊधर्यो।

१२. अ० २ आ० ८, जोघरि, आ० १२ जउ।

१३. आ० ६ आवइछै, आ० ८ आवी, आ० १२ अविस्यै।

१४. आ० १२ पुवारि।

यह छन्द आ० ८ में १२, अ० २ में २१, आ० ६ में २१,

लग्न घउ बंभण[1] समदीयउछइ[2] राइ ।
दीन्हा तेजी[3] कुलइ कयाइ[4] ॥
दीन्हो[5] सोनउ सोलहउ[6] ।
पाट पटघर[7] पानाजी[8] पान ॥
घर ज्योरी[9] राजा भणइ[10] ।
श्रागिला[11] राउ[12] सिउ[13] रिपज्यो[14] मान[15] ॥११॥

आ० १२ म ११ है। लेकिन अ० २ तथा आ० ६ म २री तथा ५वीं पक्तियाँ नहीं हैं।

आ० १२ म ३री पक्ति है—राजारे वाज्या नीसाणें रे घाव।
४थी „ मनहि आणदिउ अधिक उछाह।
५वीं „ दुडवड़ वाजै छै दुडवडी।

१ आ० १२ बामण।
२ अ० २ समदरछइ, आ० ६ ने दीयै, आ० १२ समुदायो।
३ आ० ६ तेजीय, अ० २ घोडउ, आ० ६ घोडै।
४ आ० ६ कमाय।
५ अ० २ दीन्हो, आ० १२ दीहडलै।
६ आ० १२ सोनोजी।
७. अ० २ पगेला, आ० ६ बइसारी नै।
८ अ० २ आ० ६, बीडा।
९. आ० १२ ज्योडी।
१०. आ० ६ कहइ।
११. अ० २ पाडया, आ० ६ पाडीया।
१२ अ० २ थाडउ, आ० ६ तुम्ह, आ० १२ राव।
१३ अ० २ म्हाका, आ० ६ मादरा, आ० १२ सू।
१४. आ० १२ रापिज्यो।
१५. आ० १२ मन।

यह छन्द आ० ६ म १३, अ० २ म २२, आ० ६ म २२, आ० १२ में १२ है।

थामण महित भीतरि गयौ राउ ।
मनह[1] आणंदिय[2] अधिक उछाह ॥
गढ़ अजमेरि वधामणी[3] ।
पाट महादेवि राणी नीमीयडधीन[4] ॥
संगलउ अंतेउर कोपीउ[5] ॥
थोड़ो थोड़ो[6] म्हारो[7] राषिज्यो मान[8] ॥१२॥

राजा[9] मंत्रीय[10] लीयउ[11] रे बोलाय ।
थात कही राजा वरि[12] वइसाइ[13] ॥
आगहो[14] राजा मोहउ[15] धीरिकउ[16] ।
थे सजहु[17] हउयर[18] तुरीय केकाण ॥

---

१. आ० १२ मनहि ।
२. आ० १२ आणदिउ ।
३ आ० १२ वधामणा ।
४. आ० १२ धन ।
५. आ० ६ कोपियउ, आ० १२ सयल अतेवर कोपीयो।
६. आ० ६ थोडो थोडो, आ० १२ थोडउ ।
७. आ० ६ माकउ, आ० १२ म्हाकउ ।
८. आ० १२ मान ।
यह छन्द आ० ६ म १४, आ० १२ म १३ है ।
९. आ० १२ राज ।
१०. आ० १२ मत्री ।
११. आ० १२ लीयो ।
१२. आ० १२ चाचरि ।
१३. आ० १२ बैसाय ।
१४. आ० ६ आगै, आ० १२ आगै ।
१५. आ० ६ राजा मोहउ, आ० १२ राजा मोहउ ।
१६. आ० १२ धारको ।
१७. आ० १२ सजहुवो ।
१८. आ० १२ हयवर ।

संजडु[1] गूडर[2] पाजपी ।
संजऊ[3] पाजा[4] घडर[5] निसाण ॥
संजऊ[6] पाइक[7] पापर्‌या ।
ये निलंविण[8] वरिज्यो कहइ[9] चहुआण[10] ॥१३॥

तठइ[11] ज्याइण चालियऊ[12] वीसलराउ[13] ।
चिहु दिसे[14] थाणा मोज पाठइ[15] ॥
तुरीय भला चढि आविज्यो[16] ।
जे थाणा थाते[17] घोलावीया राय[18] ॥
तुलीय छत्तीसइ जे चडइ[19] ।
वाजा हो धामणा अवर मडाइ[20] ॥

---

१. आ० १२ सजडुवौ ।
२. आ० १२ घोडा ।
३. आ० १२ सजडु ।
४. आ० १२ वाराजा ।
५. आ० १२ अवर ।
६. आ० १२ सजहुवौ ।
७. आ० १२ पायक ।
८. आ० १२ विलबम ।
९. आ० १२ कहै ।
१०. आ० १२ चहुवाण ।

यह छंद आ० १२ में १४, आ० ९ मे १५ है ।

११. आ० १२ तठै ।
१२. आ० १२ चालीयो ।
१३. आ० १२ वीसलराइ ।
१४. आ० १२ दिसि ।
१५. आ० १२ पठाय ।
१६. आ० ९ तुरीअ भला चढि आविज्योराय, आ० १२ तुरीय भले रे आवियै ।
१७. आ० १२ ज्यु थाण थाते ।
१८. आ० १२ राइ ।
१९. आ० १२ चढै ।
२०. आ० १२ मदा ।

माग नाग पाइक गुडइ[1]।
भाइ पाभय तटइ[2] करइ[3] पराण ॥
मयमत[4] हसी सिंगारिअइ[5]।
इणि परि[6] चालीयउ[7] राइ चउआण[8] ॥१४॥

मेलि मिली सयइ चढीयउ एइ राय[9]।
गूरिअ मंडल[10] रहिउ छाइ ॥
कउतिग आया[11] देवता।
स्वर्गइ[12] आवीया[13] सुरह[14] पेमाय ॥
एग उतारइ[15] अपछरा।
तउधन[16] हो बीसल[17] चउआण ॥१५॥

---

१. आ० १२ गुडै।
२. आ० १२ तटै।
३. आ० १२ करै।
४. आ० १२ मइ मंत।
५. आ० १२ सिंगारि जै।
६. आ० १२ इणपरि।
७. आ० १२ हालीयउ।
८. आ० १२ रावचौहाण।
यह छंद आ० ६ म १६, आ० १२ मे १५ है।
९. आ० १२ तठै चढिउ छै राइ।
१०. आ० ६ खेड इयु, आ० १२ पैहै।
११. अ० २ आव्या, आ० १२ कउतिक आयर्ड।
१२. आ० ६ स्वरग्रइ, अ० २ आ० ६ कौतिग।
१३. अ० २ आव्या, आ० ६ मे आया।
१४. आ० ६ अमर, अ० २ इन्द्र, आ० ६ इन्द्र, आ० १२ अमर।
१५. आ० ६ उतारइछइ, आ० १२ उतारै।
१६. आ० ६ तु धनधन, आ० १२ धनधनतु।
१७. आ० ६ बीसलदे, आ० १२ बीसलदे चहुआण।
यह छद आ० ६ मे १७, अ० २, आ० ६ मे २०, आ० १२

पूजियो गणपति[1] चालीदद[2] जान।
छहइ चउरासीय[3] दूणउंजी[4] मान ॥
असी[5] सहस घोडा चढ़ा[6]।
साठि[7] सहस पालंगी अपारि[8] ॥
हुनर गउड[9] चाल्या[10] घणा।
रावराणा तणा[11] अंत न पार ॥१६॥

में १६ है किन्तु अ० २ और आ० ६ में १ ली तथा २ री पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

१. जान सजोई वीसलराव।
२. खेह उठी रवि गयो लुकाइ।

१. अ० २ विनायक।
२ आ० ६ चालीदइ, अ० २ चालयोळइ, आ० १२ चालीछै।
३ अ० २ चौरास्यासहु, आ० १२ लहैचौरासीया।
४. आ० ६ दूणजी, अ० २ दीधउछ्इ, आ० ६ दीधौ, आ० १२ दुणीजी।
५. आ० १२ असीय।
६. आ० १२ चढ़्या।
७ आ० १२ सात।
८ आ० १२ यपार
६. आ० १२ गौड।
१०. आ० १२ मिल्या।
११. आ० १२ तणउ।

यह छद आ० ६ में १८, अ० एव आ० ६ म २८, आ० १२ में १७ है। किन्तु अ० २ और आ० ६ म ३, ४, ५ तथा ६, पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

३ आठ सहस नेजा-वणी।
४ पालखी नइठा सहस पचास।
५. हाथी चाल्या दोइसौ।
६. असी सहस चाल्या केकाण।

इनके अतिरिक्त निम्न दो पंक्तियाँ और हैं :—

रथ ऊपरि धज फरहरई।
खेहाडवर नवि सूझइ (आ० ६-छाहीयो) भाण।

पाइ[1] पंचम गिरि[2] तिलक[3] दीवाइ[4] ।
प्रथम पयालउ[5] बीधउ[6] से देलाइ[7] ॥
तीयन मोडिय[8] झलहलइ[9] ।
तृतीय छत्री मे सधि मिली[10] आइ ॥
गुजर गउडतै दाहिमा[11] ।
कछवाहा हाडा चंदेला[12] ॥
भाटी हो जेसलमेर का ।
दलबल देपि हसउ चहुआण ॥
नरइ कटीसर सत[13] भणइ ।
सर[14] सामरि राजा किया[15] मेरहाण ॥१७॥

---

१. आ० १२, पाय ।
२. आ० १२, सिर ।
३. आ० १२, तिलका ।
४. आ० १२ पाउ ।
५. आ० १२ पयार्ण्यो ।
६. आ० ६ पयासाय (काघो बाद में बढ़ाया गया जान पड़ता है)
   आ० १२ कीयो ।
७. आ० १२ ठेन्उ ।
८. आ० ६ मौड श्रति, आ० १२ मौडति ।
९. आ० १२ झलहलै ।
१०. आ० ६ मिलीयछइ ।
११. आ० ६, तिहा दाहिमा, आ० १२, गूजरगौडति दाहिमा ।
१२. आ० ६, नलोय चदेल, आ० १२ घलोय चदेल ।
१३. आ० १२, इम ।
१४. आ० १२, सरिस ।
१५. आ० १२, की ।

यह छद आ० ६ में १६, आ० १२ में १८ है ।
आ० १२ में ४ थी पंक्ति है—"तुलोय छुत्तोसीई मीलीया छै आइ ।"

मर[1] सांभरि धी माचीयउ[2] राय[3]।
चंपावती पऊगलउ[4] जाइ॥
हइ[5] गय अंत न पाइजइ[6]।
पायदलह[7] हस्तीय सहस[8] मयंमत[9]॥ ×
साठि सहस राजा मिलिया।
पाली गिणत[10] न लाभइ[11] अंत॥१८॥

देव[12] घवेरइ दीयउ[13] मेवहाण।
ऊचरइ[14] यंभण वेद पुराण॥
मंगल गावइ[15] कामणी[16]।
पंच सबद करइ[17] सुरझुणकार[18]॥

---

१. आ० १२ सरस।
२. आ० १२ आवीयो।
३. आ० १२ राइ।
४. आ० ६ पहूतो, आ० १२ पहुतलि।
५. आ० १२ हय।
६. आ० १२ लाभिजइ।
७. आ० १२ मयगल।
८. आ० १२ एकसउ।
√ ९. आ० १२ मयमंत।
१०. आ० १२ पालागिणत।
११. आ० १२ लाभै।
यह छंद आ० ६ में २०, आ० १२ में १६ है।
१२. अ० २ जाइ।
१३. आ० १२ वधेरडै दीयो।
१४. आ० १२ वाचउ. आ० ६ जिहां पढ़ै।
१५. आ० १२ गावै।
१६. आ० १२ कामिनी।
१७. अ० २, आ० ६ तणा, आ० १२ करै।
१८. आ० ६, अ० २, आ० ६, झुणकार, आ० १२ भणकार।

मेघाडंबर सिरि[1] छत्र[2] धरइ[3]।
सुयण[4] सफउ थारउ[5] गइ[6] संसार ॥१९॥

पायक[7] पखुपधार कीयउ[8] आगैं प्राण।
वाजइ[9] हो वाजा[10] सुहिर नीसाण॥
भेरीवरगु[11] सिहा भरहरइ।
वाजइ[12] घरघू जे भला तूरि[13]॥
राजा चालौ[14] परिणवा।
तटइ[15] मेघाडंबर छाइउ[16] सूरि ॥२०॥

---

१. आ० ६ (में नहीं है)।
२. आ० ६ ताईयौ।
३. आ० ६ छुइ, आ० ७ दियउ, आ० १२ धरै।
४. आ० ७ आज।
५. आ० ७ सफलराजा, आ० १२ बसहु थारे।
६. आ० ६ हुइ, आ० ७ जनम, आ० १२ हुइ।
यह छंद आ० ६ में २१, आ० ७, आ० ६ में ३०, आ० १२ में २० है। किन्तु आ० ७ और आ० ६ में छठी पंक्ति इस प्रकार है:—
आज सफलराजा जनम संसार।
और आ० ६ में पहली पंक्ति नहीं है।
७. आ० १२ पाइक।
८. आ० ६ कीया, आ० १२ (में नहीं है)।
९. आ० ६ वाजइ, आ० १२ वाजा।
१०. आ० १२ वाजे।
११. आ० ६ नजारता।
१२. आ० १२ वाजैछै।
१३. आ० १२ तूर।
१४. आ० ६ चालिउ, आ० १२ चालियो।
१५. आ० १२ तठै।
१६. आ० ६ लुकिरह्यउ, आ० १२ छाईयो।
यह छंद आ० ६ में २२ है, आ० १२ में २१ है।
आ० १२ में ३ री पंक्ति है—भेरिवर तुरहिं भरहरइ।

पाय कड़्या सिरि[1] बंधियउ[2] मउड़[3] ।
पंचमी[4] मंजलि गयोउ[5] दुरग चीत्तोड़ ॥
राता ही फूंदा पाटका ।
कड़ी आलों[6] हीरा की जोडि ॥
चिहु दिसि मोतीय झिगमिगइ ।
कालीय पीलीय हलकइहइ[7] ढाल ॥
एक माता दूजो ऊमता ।
तवइ[8] राजा जाइ अरु वासी छइ[9] धार ॥२१॥

धारि वयउ राना सामहउ आइ ।
पाचमी मजलि वासउ वस्या[10] ॥

---

१. आ० ६ शिर ।
२. आ० १२ बंधियो ।
३. आ० १२ मौड ।
४. अ० २ और आ० ६ प्रथम, आ० १२ पाचमी ।
५. अ० २ पयाणउ, आ० ६ पीयाणो, आ० १२ गयो ।
६. आ० १२ वधी ।
७. आ० १ दलकैछै ।
८ आ० १२ तठै ।
६ आ० १२ छै ।

इस छद की पक्ति सख्या ४, ५, ६, अ० २ और आ० ६ में इस प्रकार है—

४. ब्राम्हण उचरइ वेद पुराण ।
५. मगल गावइ कामनी ।
६. उठी पेद नवी सम्फै भाण ।

तथा ७ वीं और ८ वीं पक्तिया अ० २ और आ० ६ मे नहीं हैं। यह छद आ० ६ में २३ और अ० २ मे २१ है तथा आ० १२ म २२ है।

१० आ० ६ वसयउ ।

लाग्यौ उगटिउ[1] वीसल राउ[2] ।
राजा हो भोज तणु[3] लागउ छइ[4] पाइ ॥
गर लाखी उर्वाळियउ[5] ।
कुसल पुछइ[6] राजा कंठि लगाइ ॥२१॥

संजइयइ[7] रातमाीरड वीर ।
मारिग मोतीय[8] जड्योड[9] जंजीर ॥
खाप मावा[10] पाखरि[11] पडइ[12] ।
पाळखी चढ्यो जपमवा गुरु ॥
आगइ हो नइयर बहु गुडइ ।
पाला हो पाइय अंत न पार ॥
नवरंग नाचइ[13] अपछरा ।

---

१. आ० १२ उत्रयो ।
२. आ० १२ गढ ।
३. आ० १२ राजाभोज रद वीसल ।
४. आ० १२ छै ।
५. आ० १२ वरिमाली ऊचउलीयाँ ।
६. आ० १२ पुछै ।
यह छन्द आ० ६ में २४, आ० १२ में २३ है ।
आ० १२ में प्रथम और द्वितीय पंक्ति है—
१. धारऊउ राजाजी सामुहोजाइ ।
२. पच मगल वासइ वररउ ॥
७ आ० १२ साम्हो जोवैछै ।
८. आ० १२ मोत्या ।
९. आ० १२ जडित ।
१०. आ० १२ सवा ।
११. आ० १२ पापर ।
१२. आ० १२ पडै ।
१३ आ० १२ नाचैछै ।

सामहेलउ हुवउ[1] राइ परिवार[2] ॥
मोट हो छाणी मालवइ ।
तठइ तुरीय संपिया चमर दुलाइ ॥
दलीम चंडीयउघुइ[3] राउ न लागइ वार[4] ।
स्वामी खोउ सामुही थाई घर धार[5] ॥
कुलीय छत्री सइगल छइ[6] ।
सरव सुहागण सुन्दर नारि ॥
लूण उतारइ अपछरा ।
राजा हो आवीय[7] माहे[8] दुवारि ॥२३॥

तोरण आवीयउ वीसलराउ ।
अउइव सूहव कउतिग जाइ ॥
मोत्यां का आषा पडइ[9] ।
चोवा[10] चन्दन तिलक[11] सिंदुरि ॥

---

१. आ० ६ सामुहउ हुई, आ० १२ सामहलउ ।
२ आ० राजा परवार ।
३. आ० १२ चडीयौछै ।
४ आ० १२ राय न लाईयउार ।
५. आ० १२ स्वामि सुसामह आई छै धार ।
६. आ० १२ कुलीय छतीसै सगलैछै ।

यह छन्द आ० ६ में ५५, आ० १२ में ५४ और ५५ है किन्तु आ० ६ और आ० १२ में पंक्ति ६-१० नहीं हैं ।

७ आ० १२ आईयो ।
८. आ० १२ सीह ।
९. आ० २ किया, आ० ६ हूया, आ० १२ पड़े ।
१०. आ० ६ कपू ।
११. आ० १२ तेल ।

थवली सवली करइ[1] आरती ।
आणि घरि तोरणि[2] ऊगा[3] सूरि[4] ॥२४॥

राजा बी[5] ऊनन्या[6] नयर[7] मझारि ।
मन माहे[8] हरषीय[9] राजकुमारि ॥
जाइ[10] सखी करउ[11] आरती ।
कलस[12] संपूरण[13] पूनिम चन्द ॥
सुरनर[14] जोवा सुरगण[15] ।

---

१. अ० २ आ० ६ (में नहीं है) ।
२. आ० १२ रोहिणी ।
३. अ० २ आ० ६ ऊगियो, आ० १२ ऊगीयो ।
४. आ० १२ सूर ।

यह छन्द आ० ८ में २७, अ० २ में ५२, आ० ६ में ४६ आ० १२ में २६ है । अ० २ में दूसरी पंक्ति इस प्रकार है—

पंच सखी मिली कलस वंदावि

आ० १२ में प्रथम दो पंक्तियां इस प्रकार है:—

१. तोरण आवीयो बीसल राय ।
२. आउछिय सुद व कौतिक जाइ ।

५. अ० २ बीसल, आ० ६ वीसल ।
६. अ० २ आव्यौ, आ० ६ आवीयो ।
७. आ० ८ नगर, आ० १२ नगर ।
८+९. अ० २, आ० ६ मंन हरषीयन, आ० ८ मनमाहे हरषीया, आ० १२ मन माहि ।
१०. अ० २ चाल्यो, आ० ६ चाली ।
११. आ० १२ करौ ।
१२. आ० २ आ० ६ सकल ।
१३. अ० २ दिसो जीसो, आ० ६ दीसै जमो ।
१४. आ० १२ सुरवर ।
१५. आ० ८ छइ देवता, अ० २ आ० ६ देवता ।

गोकल[1] माहि जिस[2] प्रतिव्य[3] गोवंद[4] ॥२५॥

सात सहेलीय[5] बइठी छइ[6] आइ ।
राजा हो[7] माय[8] पूजावूण[9] जाइ ॥
चन्दण सीप भरी छीय ।
काथ[10] सोपारीय पाका हो[11] पान ॥
रंग[12] हथलेवुड वाहिजइ[13] ।
आखि कि[14] वइठा[15] हो रुकमिणि[16] कान्ह ॥२६॥

---

१. अ० २ गोवल माहि ।
२. अ० २ जिय, आ० १२ जिसउ ।
३ अ० २ सोहइ, आ० ६ वसै, आ० १२ प्रत्यक्ष ।
४. आ० १२ गोविंद ।

यह छन्द आ० ६ में २८, अ० २ में ४६, आ० ६ में ४६ तथा आ० १२ में २७ है ।

५. अ० २, आ० ६ पच सखी मिलि ।
६ अ० २ (नहीं है) आ० १२ छै ।
७. अ० २ आ० ६ राजा है, आ० १२ राजाजी ।
८. आ० १२ माइ ।
९. अ० २ पुजावण, आ० १२ पुजावण ।
१०. आ० १२ हाथि ।
११ अ० २, आ० ६, आ० ६ पाका, आ० १२ सुपारिय पाका जी ।
१२ अ० २ हइ, आ० ६ हरपै ।
१३. अ० २ जोडियउ, आ० ६ मेलीयौ, आ० वाहीजे :
१४. आ० ६ जाणिकरि ।
१५. आ० १२ बैठी ।
१६. आ० १२ रुपमणी ।

यह छन्द आ० ६ मे २६, आ० ६ में ५२, अ० २ में ५७, आ० १२ में २८ है । अ० २ तथा आ० ६ म तीसरी पक्ति इस प्रकार है—

मोतीया का रे आखा पइइ ।

देसि[1] मालवइ[2] हुउ[3] उछाह[4] ।
राजमती वउ[5] दयवउ[6] पसाइ ॥
षन्दूय पाट वउ मांडहउ ।
मोती की[7] चउरी[8] मांणा[9] पी माज ॥
पहिल[10] फेरउ दीया[11] दाइजउ[12] ।
मण्डलगढ़ मंड[13] उदर[14] भात[15] ॥२७॥

दूजइ[16] फेरइ्रउ[17] फिरइ[18] राइ ।
भानमती राणी कुमर की माइ ॥

---

१. आ० ६ देस, आ० १२ देस ।
२. अ० २, आ० ६ मालागिर, आ० १२ मालवै ।
३. आ० ६ हूवउ, अ० २ हुवउ ।
४. आ० ६ उच्छाह ।
५. अ० २ राजकुंवर को, आ० १२ पेरउ ।
६. अ० २ हूवउ, आ० १२ रच्योरे ।
७. आ० ६ साना तणी ।
८. आ० १२ चारी ।
९. अ० २, आ० ६ मोती को, आ० ६ मोती री, आ० १२ मोती की ।
१०. आ० ६ पैहले, आ० १२ पहिलै ।
११. अ० २ राय, आ० ६ (में नहीं है), आ० १२ फेरै दीयो ।
१२. अ० २ दे डाइची (देराइजो) आ० ६ डाइचौ, आ० १२ दायोजउ
१३. आ० ६ सिउ , अ० ७, आ० ६ सौं ।
१४-१५ अ० २ देइ कुडाल, आ० ६ देस कुडाल ।

यह छन्द आ० ६ में ३०, आ० ६ में ५६, अ० २ में ६०, आ० १२ में २६ है । आ० १२ में अंतिम पंक्ति है—

मंडलिगढ़ मुक्त परिमाल ।

१६ अ० २ आ० ६ तीजो, आ० १२ दूजे ।
१७+१८. अ० २ आ० ६ जबफेरइ छै, अ १०१२ फेरे फिरियौछे ।

काई[1] देइछइ[2] दाइजउ[3] ।
उण दीन्हा[4] थरथ[5] गरथ[6] भंडार ॥
दीनउ छइ देस सवालषउ ।
सर[7] सांभरि[8] सिउ[9] नागर चाल ॥
टउंक टोडा[10] तेहविचाल ।
सातही बूंदी सरिस्यिउ देस कंडाल[11] ॥२८॥

तीजइ[12] फेरइ[13] फेरीयउ[14] राय[15] ।
सगल अतेउर बइठउ छइ श्राइ ॥
कायउ[16] दीजइ छइ दाइजउ[17] ।

---

१ श्रा० ६ काउ, श्र० २ श्रा० ६ राजकुवर, श्रा० १२ कायुं ।
२ श्र० २ श्रा० ६ (में नहीं है) श्रा० १२ दियो छै ।
३ श्र० २ दाडाइचौ, श्रा० ६ लौ डाइचौ, श्रा० १२ दायजइ ।
४+५ श्र० २ श्रा० ६ दीधा साथ न, श्रा० १२ उणि दीना छै, श्ररथ ।
६. श्रा० १२ दरब ।
७+८ श्र० २ दीधा सैभर, श्रा० १२ सरस सामरि ।
६. श्र० २ दीधा, श्रा० १२ सुं ।
१०. श्रा० १२ टोडा छै ।
११ श्रा० १२ कउडाल ।
यह छन्द श्रा० ६ में ३१, श्रा० ६ में ५८, श्र० २ में ६२, श्रा० १२ मे ३० है । श्र० २ में इस छन्द की दूसरी कड़ी है–"पाट महादे राणी लीई छइ बुलाई ।" तथा तीसरी कड़ी है–"राज कुवर दाडाइचौ ।" चौथी पंक्ति है, "दीधा सैंभर नागर चाल ।" छठी पंक्ति है–"माडल गढ़ से ऊपर माल ।" श्रा० ६ में भी अंतिम पंक्ति श्र० २ की तरह है ।
१२+१३ श्र० २ श्रा० ६ दूजो फेरो, श्रा० १२ तीजे फेरै ।
१४. श्रा० १२ फिरियो छै ।
१५. श्रा० १२ राउ ।
१६ श्रा० ६ काय, श्रा० १२ कायुं ।
१७. श्र० २ दाडाइचौ दाइ जौ २ श्रा० ६ का डायचौ (= को दायजौर) ।
श्रा० १२ दायजौ ।

दीन्हा भाणीय तुरीय गुमाइ ॥
दीन्हीं[1] लाख देस मण्डोवरउ ।
माल समुंद[2] सोरठ गुजराति[3] ॥२९॥

दीधि[4] जनोईय[5] पहिरणइ[6] चीर ।
हाथि[7] तम्बारइ[8] अंजल[9] नीर ॥
राजा पइछइ[10] दाइजउ[11] ।
सोवन पालखी साथइ सउडि[12] ॥
कुलीय क्षत्री मे पावती ।
पाय पखालिनइ पूजियउ मउड ॥

---

१. आ० ६ दीधो, आ १२ दीनउ ।
२. आ० २ समद ।
३. आ० १२ गुजरात ।

यह छंद आ० ८ में २२ आ० ६ में ५७, आ० २ में ६१, आ० १२ में ३१ है। इस छन्द की ४थी पक्ति आ० २ में है :—"दीधा साचन अरथ भंडार ।" तथा आ० ६ में है :—"दीधा सामेहणो नवसर हार ।" आ० १२ में दूसरी पक्ति है :—सगली अतेवर बैठो छै आइ ।

चौथी पक्ति है :—दीना तेजीय तुरी सउपाइ ॥

४. आ० ६ गलइ, आ० १२ बांधि ।
५. आ० ६ जनोई राजा, आ० १२ जनेऊ ।
६. आ० १२ रइपहिरणो ।
७. आ० ६ हाथे ।
८. आ० ६ तम्बाले राजा, आ० १२ त्रबालू ।
९. आ० ६ अचले, आ० १२ अजलि ।
१०. आ० ८ पिहछइ, आ० १२ दियो छै ।
११. आ० १२ दायजौ ।
१२. आ० १२ सौढि ।

धर जोरी राजा भणइ ।
तुम्ह[1] बारहा[2] गढ़[3] सिहगढ़[4] चीत्तोड़ ॥३०॥

राजा कहइ[5] धारि धुरारि[6] भीसाण ।
मनमाहे हरषीयउ[7] वीसल चहुआंण ॥
परणीयउ[8] राजा भोज कइ[9] ।
म्हारइ[10] अंचल बंधी[11] राजकुमारि ॥
सफल दिहाडउ[12] आज कउ[13] ।
जउ घरि आवीइ[14] नारि पधारि ॥३१॥

१+२. आ० ६ तुम्ह नइ बारह ।
३. आ० ६ गढ़ासु आ० १२ गढ़ासु ।
४. आ० १२ दुरग ।

यह छन्द आ० ६ में ३३, आ० ६ में ६४, अ० २ (में नहीं है) आ० १२ में ३२ है । आ० ६ में चौथी कडी है–"चोथो फेरो फेरीयो ।"
आ० १२ में ६ तथा ७ पंक्तियाँ हैं—
६–पाइ पपालिनै पूजीया मौड ।
७–कर जोडी राजा भणै ।

५. आ० १२ कै ।
६. आ० ६ धुराजी, आ० १२ धुरयारे ।
७. आ० १२ हरषीयो ।
८. आ० १२ परणवी ।
९. आ० १२ कै ।
१०. आ० १२ म्हाकै ।
११. आ० ६ बांधी छै, आ० १२ बाधी छै ।
१२. आ० १२ दिहाडो ।
१३. आ० १२ कौ ।
१४. आ० १२ आई ।

यह छन्द आ० ६ में ३४, अ० २ तथा आ० ६ (में नहीं है), आ० १२ में ३३ है ।

पाटि पइठीउइ[1] राजकुमारि ।
पहिरि पटोळी[2] सिरि चूनडी[3] सार ॥
कानिहि[4] कुंडल झिगमिगइ[5] ।
सोवन[6] राखडी[7] तिलक[8] निलाडि[9] ॥
रूप देखी राजा हसउ[10] ।
त्रिभुवन मोहीय[11] राजकुमार[12] ॥१२॥

जाणि वासइ[13] पधार[14] हो राइ[15] ।
राजा परीछिन्न कीयइ[16] योलाइ[17] ॥

---

१. आ० ६ बैठा अछइ अ० २ पइठा हुई, आ० १२ बैठो छै ।
२. अ० २ वस्त्र ।
३. अ० २ चादर, आ० ६ नवसर ।
४. आ० ६ कानिहि, अ० २ कान्हे, आ० ६ काने, आ० १२ काने ।
५ अ० २ झाहोया, आ० ६ ताहीया ।
६. अ० २ सरव आ० ६ सरव ।
७. अ० २ सानारी, आ० ६ सोनातणी ।
८. अ० २ मुकुट, आ० ६ मुगट ।
९. आ० ६ नेलाड, आ० १२ निलाडि ।
१०. आ० १२ हरषो ।
११. आ० ६ मोहइय, अ० २ मोहइ, आ० ६ मोहोरांणि, आ० १२ मोहे ।
१२. आ० ६ राजकुआरि, आ० ६ देप परमार । आ० १२ जानिपुवार ।

यह छन्द आ० ६ में ३५, आ० ६ में ५४, अ० २ में ५८ तथा आ० १२ में ३४ है ।

१३. आ० वासै ।
१४. आ० १२ पधार्‌या ।
१५. आ० १२ राउ ।
१६+१७. आ० १२ यवकउ ।

ब्याह करावण देइछइ[१] दान।
अरथ भंडार नइ[२] अति घणउ[३] मान ॥
दीन्हा छइ[४] तेजी हासला।
तुम्ह हासीय सरिसउ[५] कोड हसार ॥३३॥

जूरा रमण बइसारइ[६] छइ[७] राय।
सात सोपारी पूलिकियउ[८] पसाउ ॥
सवालाप कउ मुरडउ[९]।
राजाजी जीतउ छइ[१०] सातेदाइ[११] ॥
राजमती विलपी हुई।
हसइ मुलकइ वीसल राइ ॥३४॥

---

१ आ० १२ दीयैछै।
२. आ० १२ नै।
३. आ० १२ घण।
४ आ० १२ दीनछै।
५. आ० १२ सरिस।

यह छन्द आ० ६ में ३६ तथा आ० १२ में ३५ है।

आ० ६ में २री और तीसरी पक्ति के अनन्तर एक पक्ति और इस प्रकार है—

"आवो पुरोहित राउ का।"

६ आ० १२ बैसार्यो।
७ आ १२ छै।
८. आ १२ पलकियो।
९ आ० ६ मुदडउ।
१०. आ० १२ जीता छै।
११. आ० १२ सातेददाउ।

यह छन्द आ० ६ में ३७, आ० १२ में ३६ है।

आ० १२ में तीसरी पक्ति नहीं है। अंतिम पंक्ति है—

"हसै मुलकै तब वीसलराउ।"

हुई पहिरावणी दखीयड[1] राव[2]।
दीन्हा तेजीय[3] शुतह पचाइ[4] ॥
हीरा नह[5] माणिक घणा।
अणपरि[6] पहिरावीयड[7] जागबुयारि ॥१५॥

सुरिय पलाणीया ठामो ठामि[8]।
रहासु[9] सुहारण[10] चालीयड[11] राइ[12] ॥
खुलिय छत्तीसइ गडलछइ[13]।
माणिक मोती मरयट नाछेर ॥
सासू[14] आसीसन[15] पन्दिया[16]।
थे[17] अविचल राज करउ[18] अजमेर[19] ॥१६॥

---

१. आ० १२ रपीयो।
२. आ० १२ राउ।
३. आ० १२ तेजी।
४. आ० १२ कपाव।
५. आ० १२ अरु।
६. आ० ६, आ० १२ इणपरि।
७. आ० १२ पहिरा।
यह छन्द आ० ६ में ३८, आ० १२ में ३७ है।
८. आ० १२ ठाइ।
६+१०. आ० ६ सुहारकरण, आ० १२ सासुसुहारण।
११+१२. अ० २, आ० ६ चाल्योछइ राइ, आ० १२ चालीयोराइ।
१३. अ० २, आ० ६ सायछइ, आ० १२ छत्रीसेगयल छै।
१४+१५. अ० २ आ० ६ भागमती आसीस, आ० १२ आसीस।
१६. अ० २, आ० ६ दइ, आ० १२ तवेदीयै।
१७. आ० ६, तुम्हें, आ० १२ थेतउ।
१८+१६. अ० २, आ० ६ कीज्यो अजमेर, आ० १२ काणे अजमेर।
यह छन्द आ० ६ में ३६, आ० ६ में ६८, अ० २ में ७१ तथा आ० १२ में ३८ है।

परणि अरणि धरि चालीय चाय[1] ।
बाजा[2] वाजीया नीसाणेरे घाइ ॥
दीयइ बाजइ[3] दुदवणी ।
बाजइ[4] बरणू अरूयलीमेरि[5] ॥
धारिवी उभी धाइदै ।
धारकउ दीप[6] चालउ[7] अजमेर ॥३७॥

परिणउरण[8] घरि[9] आइयउ[10] राय[11] ।
सगली हे जानमाहि हुउ उछाह ॥

---

१. आ० १२ चालीयो राउ ।
२ आ० ८ बाजा हो ।
३. आ० १२ वाजाइछै ।
४. आ० १२ बाजै छै ।
५. आ० १२ भलीमेरि ।
६ आ० ८ द्विज, आ० ६ दीरक ।
७. आ० ८ (में यह शब्द बाद में बढ़ाया गया है) आ० ६ गढ अजमेर, आ० १२ चल्यो ।

यह छन्द आ० ८ में ४०, आ० ६ में ६६, अ० २ में ६६, आ० १२ में ३६ है । लेकिन अ० २ में इस छन्द का पाठ है—

हुई पहिरावणी हरषीयउ राई ।
अनल वधी राजकुमार ॥
चौरी चढोयो भोजकी ।
बाजइ बरगू भूगलभेर ॥
हुवउ पधारउ रावलइ ।
धार कउ द्विज चाल्यो अजमेर ॥

आ० १२ में ५वीं पंक्ति है :—बारि कि ऊभी धीहदइ ।

८ आ० ८ परणि अरणि, अ० २ परणी, आ० ६ परणी नै, आ० १२ परणि अरणि ।
९. अ० २, आ० ६ (में नहीं है) ।
१०. अ०, आयउ, आ० १२ चालीयो ।
११. अ० २, आ० ६, वीसलराय, राउ ।

राणा पहइ जन[1] मामछउ ।
म्हानइ[2] तूटउ हो[3] देवमुरारि ॥
घडरी घडउ[4] राणा भाँज धी ।
घडा घडेरा मेल्या करतारि ॥३८॥

हस्त गुणइ नितु[5] धागइदुइ भेर ।
देपि गउरि[6] म्हाकउ गढ़ अजमेर ॥
थाना हो सागर बीहली ।
पाप[7] तापहु वर आदि धराइ ॥
सोरठि साभरि कउ धणी ।
घर बीसल पश्चिम केरउ[8] राइ[9] ॥३९॥

गरव करि बोलीयउ[10] संभरि[11] वाल[12] ।

---

१. आ० १२, कहे जानी ।
२. आ० ६ भाइ, अ० ७, मोहि, आ० १२ म्हानै ।
३. अ० २ तूठउ छै, आ० १२ तूटो हो ।
४. आ० १२ चढयो ।

यह छन्द आ० ६ में ४१, आ० १२ मे ४० है । आ० १२ में दूसरी पंक्ति है—

"सगली ही जानमैहूत उछाही ।"

५. आ० ६ छुद, आ० १२ हस्ती गुणै नितु ।
६. आ० ६ गोरी, आ० १२ गोरी ।
७. आ० १२ पाप ।
८. आ० १२ कउ ।
९. आ० १२ राउ ।

यह छन्द आ० ६ में ४२ तथा आ० १२ में ४१ है ।

१०. अ० २ ऊभोछइ, आ० ६ ऊभो, आ० १२ बोली ।
११. आ० ६ सीभूर्यो }
१२. आ० ६ राय, } ११ + १२ – आ० १२ बीसलराउ ।

मउ समउ[1] अवर[2] न कोइ भूपाल ॥
मोधरि[3] साभरि उमहइ[4] ।
म्हारइ[5] चिहुँदिसि थाणा[6] जैसलमेर ॥
राजरउ[7] यइसणउ[8] गढ अजमेर ॥४०॥

गरव[9] न[10] कीजइ[11] धणी[12] सभरि वालि[13] ।
तुम समाँइइ[14] घणारि भुवाल[15] ॥
एक उड़ीसा कउ धणी ।
वचन मारा[16] मानि न[17] मानि[18] ॥

---

१. आ० ६ मोसमउ, आ० १२ मासम ।
२ अ० २ ऊर ।
३ आ० ६ मोधरे, अ० २ म्हाथरि, आ० ६ माहरिघरि ।
४. आ० १२ उमहे ।
५. आ० १२ म्हारै ।
६. आ० १२ थाणउ ।
७ आ० ६, राजा भो, आ० १२ राजा कौ ।
८. आ० ६, अ० २, थानिक, आ० १२ राजा बैसणा ।
यह छन्द आ० ६ में ४४, आ० ६ अध्याय २ में १, अ० २ अध्याय २ में २ तथा आ० १२ में ४२ है। आ० १२ में एक पंक्ति अतिरिक्त है—
"लाप दुरी पापइ पड़े ।"
९ अ० २ गरभ ।
१० + ११ + १२. अ० २ बोलो हो, आ० ६ करिहो, आ० १२ न कीजै धणी ।
१३. आ० ६ राव, आ० १२ सामरिवाल ।
१४. आ० १२ समग्रहै ।
१५. आ० ६ भूपाल, आ० १२ भूपाल ।
१६. आ० ६ हमारउत, आ० १२ हुइ म्हाका ।
१७ + १८. अ० २ मानिउ मानि, आ० ६ मान निसाव, आ० १२ मानि मैं मानि ।

जउ[1] थारइ[2] साभरि उमहइ[3] ।

तिन्ह[4] ठवा घरि[5] उमाहइ[6] हीरा की खाणि ॥४१॥

५ चलतइ चमकीयउ बीजलराउ ।

खणका[7] बचन[8] रह्या मन माहि ॥

म्हे[9] विसाराहा[10] गोरडी[11] ।

हम तुम्ह[12] प्यार घरस का कायि[13] ॥

कहउ[14] तुम्हारउ[15] जे सुणउ[16] ।

म्हे छउ जाइ देषा हीरा की खाण ॥

---

१ +२ आ० ६ थारि घरि, आ० १२ जइ थारे ।

३ आ० १२ उमहै ।

४ +५ अ० २ राजा उलि घरि, आ० ६ ठवा घरि, आ० १२ उहाघरि ।

६ आ० १२ उमहै

यह छन्द आ० ६ में ४५, आ० ६ अध्याय २ में २, अ० २ अध्याय २ में ४ है । आ० १२ में ४३ है ।

७ आ० १२ कणका ।

८ अ० २ बोल ।

९ अ० २ हूँ ।

१० अ० २ वीसहयो, आ० १२ विसराश ।

११ अ० २ ते वदिठा, आ० १२ तुम्हें गोरडी ।

१२ आ० ६ अप तम, अ० २ म्हानु, आ० १२ हम तुम ।

१३ अ० २, आ० ६ लान, आ० १२ कहि काणी ।

१४ आ० १२ कह्यो ।

१५ आ० १२ तुम्हारो ।

१६ आ० १२ सुणयो ।

यह छन्द आ० ६ में ४६, आ ६ अध्याय २ में ३, अ० २ अध्याय २ में ५, आ० १२ में ४४ है । इस छन्द की पाँचवीं और छठीं पंक्ति अ० २ और आ० २ में इस प्रकार हैं—

५ कउ म्हारइ हीरा उमहइ ।

६ नहीं तो गोरी तिजू हूँ पराणा ।

तथा आ० ६ में तीसरी पंक्ति है—

म्हैं[1] विरास्या[2] बोलियउ[3] दोस[4] ।
पग की[5] पाणहीस[6] रिसउ[7] रोस[8] ॥
कीडो उपरि मठकी क्रिसी ।
म्हैं हरया थे करि जाणीयउ साच ॥
कुमी[9] मेल्हिद[10] उलग[11] चलउ[12] ।
जल[13] विहुणीय किम जीवइ मछ[14] ॥ ४३ ॥

मन माहि कुमपाणीपरो ।

इस छुद की पहिली और दूसरी पंक्तियाँ अ० २ और आ० ६ में परस्पर स्थानान्तरित हैं।

१+२ अ० २ हूँ बरा की, आ० १२ म्हे विरासी।
३. अ० २ घणी, आ० ६ म्हाराघणी, आ० १२ बोलियो।
४. अ० २ रोस (इसके पहले इसमें 'गोकियउ' है)।
५. अ० २ पावकी आ० ६ (में नहीं है) आ० १२ पावनी।
६. आ० ६ पाणही सि, आ० ६ पाणही उपरि, अ० २ पाणहीसु आ० १२ पानहीं सु।
७+८ अ० २ कियउ रोस, आ० ६ एकसो रोस, आ० १२ किसो रोस।
९+१० अ० २ ऊभडी मेल्हे अ० १२ कुमीय मेल्हि।
११. अ० ६ उलगइ, आ०६ नै, अ० २ (में नहीं है) आ०१२ मतउलग।
१२. आ० ६ चलिउ, आ० १२ जाइ।
१३. अ० २ में (इसके पहले राजा है)। आ० १२ जलहि।
१४. अ० २ हास। आ० १२ जीवइलामाछ।

यह छुद आ० ६ में ४७, आ० ६ अध्याय २ में ४, अ० २ खण्ड २ में ६ तथा आ० १२ में ४५ है। अ० २ में इस छुद की तीसरी और चौथी पंक्ति इस प्रकार है—

३. 'मेघ दसतो बोलियो।"
४ "आपणइ मान हतौ मानस छइ सास।"

आ० ६ में इसी प्रकार चौथी पंक्ति है —

४ "आपणइ मनि तुम्हे मानियो साच।"

जनम[1] हुयउ[2] थारउ जैसलमेरि ।
परणि आणी तउ गढ़ अजमेर ॥
घरम थारइ[3] का दावड़ी[4] ।
पहारे[5] उडीसउ थरू जगनाथ ॥
धन छोडउ[6] पाणी निजर ।
तउ कदि[7] नइ[8] गोरी थारी[9] जनम की वात ॥ ४४ ॥

जनम की यात सुणउ[10] धरइ नरेस ।
वनपड[11] भोगवउ[12] हरिण कइ वेषि ॥
कोकउ भमण दिन गिणउ आज ।
नरनला करती गुजादमी ॥

---

१ + २–अ० २, आ० ६, जनमी गोरी तू । आ० १२, जनम हुउ ।
३ अ० २ बार ।
४. अ० २, आ० ६ गारढी ।
५ अ० २, बु समर्यो, आ० ६, किम समरूं ।
६ अ० २, आ० ६, मेल्हु ।
७ + ८ अ० २, कहित ।
९. आ० ६, अ० २, थारा ।

यह छंद आ० ६ में ४८, आ० ६ अध्याय ० म ५, अ० २ खंड २ में ७, आ० १२ म ४६ है ।

आ० १२ में २री पंक्ति है—परणिनै आणी तोनै गढ़ अजमेर ।
,, ४ थी पंक्ति है—पहारे उडीसवि देपु आवणी नयाण ।
,, ५ वीं पंक्ति है—उलगाणा हुइ गमकरूं ।
,, ६ ठा पंक्ति है—कोकि भतीजा नै सौंपिस्यु राज ।
,, ७ वीं पंक्ति है—छोडु दस सगलपो ।
,, ८ वी पंक्ति है—कोकु भमण दिन गिणु आज ।

१०. आ० ६ पूछइछइ ।
११ + १२ अ० वनपड रहती ।

एक आहेडीय[1] वनह मझारि ॥
विहु[2] बाणा उरिहा[3] हणी ।
मरण[4] हुवउ[5] जगनाथ दुवारि[6] ॥ ४५ ॥

हिरण मरण[7] समरथउ जगनाथ ।
आइ पहुतलउ[8] त्रिभुवन नाथ ॥
सप चक्र गदा धरु[9] ।
तू[10] तउ[11] मागि[12] हे[13] हिरणीय[14] चितइ[15] मझारि ॥
जउ तू[16] तुठउ[17] त्रिभुवन धणी ।
म्हारउ[18] पूरव[19] देसरउ[20] जनम निवार ॥ ४६ ॥

---

१. आ० ६ आहडी आयो ।
२ अ० २ ले, आ० ६ दोए ।
३. अ० २ उरह ।
४. अ० २ जनम ।
५ अ० २ दीजगो, आ० ६ हूवो, आ० ६ हुउ ।
६. आ० ६ कइ दुवारि ।
यह छद अ० २ खड २ में ८, आ० ६ खड २ में ६, आ० ६ में ४६ है । आ० १२ (में नहीं है) । इस छद की ३री पक्ति अन्य प्रतियों में नहीं है । ज्ञात होता है कि यह पक्ति इस छद म भूल से लिखी गई है ।
७. अ० २ मयि ।
८. आ० ६ यहूतो ।
९. अ० २ गजाधरीय ।
१०+११+१२+१३ आ० ६ मागिहो ।
१४. आ० ६ हिरणली ।
१५ आ० ६ त्रिनय ।
१६. अ० २ लो ।
१७. अ० २ तूठा ।
१८ अ० २ (में नहीं है) ।
१९+२० अ० २, आ० ६ पूरवदेस म्हारो ।
यह छद अ० २ खड २ मे ६, आ० ६ खड २ म ७, ।आ० ६ म ५० है । आ० १२ म नहीं है ।

पूरब देसनउ[1] पयनउ[2] लोक।
पान फूलाणउ[3] नइ[4] लहइ[5] भोग ॥
धण संचइ[6] सुकम भणइ।
अति चतुराई गढर ग्वालेर ॥
कामणी जेसलमेर री।
स्वामी पुरुष भलागड अजमेरि ॥ ४७ ॥

जनम दीयउ[7] मारवइ देसि।
राजकुंवरि[8] अरू[9] रूपि असेसि ॥
रूपि नइ[10] रूपिन[11] मेदन।
पहिरणइ[12] लोवड़ी[13] झीणइ[14] गलकि ॥

---

१. अ० २ देसके, आ० ६ देसका।
२. आ० ६ कचना, आ० ६ कछुहाजी, अ० पूरवया।
३. आ० ६ फूलाकउ।
४+५. अ० २ तुं लहइ।
६. आ० ६ सचवै।
यह छंद आ० ६ मे ५१, आ० ६ खंड २ में ८, अ० २ खंड २ में ११ है। आ० १२ मे नहीं है। अ० २ मे इस छंद की छठीं पंक्ति है—
"भोगी लोक दक्षण को देस।"
तथा आ० ६ में है :—"भोगी लोक दक्षण के देस।"
७. आ० ६ हूयो, अ० २ हूवउ।
८. आ० ६ राजघरिणि।
९. अ० २ अति, आ० ६ नइ।
१०+११. आ० ६ निरुपो।
१२. आ० ६ पहिरणि, आ० ६, अ० २ आछा।
१३. अ० २, आ० ६ कापड।
१४. आ० ६ जीणइ जी।

आछि गोरी धण[1] पातली[2]।
अहर[3] प्रवालि[4] नइ[5] दाडिमां[6] दंत ॥
इसीय विधाता विहि घडी।
कामणी कहइ कि रूप अनंत ॥ ४८ ॥

हउ न पती जी गोरी थारही[7] वमण[8]।
जा[9] नवि[10] देष[11] आपणइ नयण ॥
उलगाणउ हुवउ[12] गम[13] करउ[14]।
कोकि[15] भतीजउ[16] संपीसिउ[17] राज ॥
छोडउ[18] देस सवालषउ[19]।

---

१. आ० ६ (में नहीं है)।
२. अ० २ कूवली आ० ६ कूमली।
३. अ० २ अहिरष, आ० ६ अहैर।
४. अ० २ वाला, आ० ६ पवालो।
५+६. अ० २ निर्मल, आ० ६ जिसा निरमला।

यह छंद अ० २ खंड २ में १२, आ० ६ खंड २ में ६, आ० ६ में ५२ है। आ० १० (में नहीं है)। इस छंद को ७ वीं और आठवीं पंक्ति अ० २ और आ० ६ में नहीं है। इन दोनों प्रतियों में पाँचवीं पंक्ति है—

"ललयागी (ललागी—आ० ६) धन कूवली।

७+८. आ० ६ थारा हे वमण, आ० ६ थारइ हे भमण।
६+१०. आ० ६ जनही न।
११. आ० ६ देपु।
१२. आ० ६ हुइ।
१३+१४. आ० ६ निगम करू।
१५+१६ आ० ६ काक भतीजा नै, आ० ६ कोका भुतीजातु।
१७. आ० ६ थपू, आ० ६ सविसउ।
१८ आ० ६ छोडहा।
१६. आ० ६ मंडवरो।

कीरउ[1] हो पंमण दिन गिणइ[2] आज ॥ ४९ ॥

पंडिया[3] हो थारा गुण केरो[4] दासि[5] ।
जोसि[6] दिन[7] मउडउ[8] परगास[9] ॥
मास च्यारि[10] विलंबाय ज्यो[11] ।
तू नेइ सोवन सीगी कपिली गाइ ॥
लाप टका[12] कउ[13] मुंदडउ ।
स्वामी[14] पलटि ज्यो[15] दिन[16] मीयलिउ[17] समझाय[18] ॥५०॥

---

१. आ० ६ आ० ९ तेडे । २. आ० ६ घरू, आ० ९ गिणवो ।
यह छंद अ० २ (में नहीं है), आ० ६ खंड २ में ११, आ० ९ में ५३ है । आ० १२ (में नहीं है) ।
३. अ० २ पाड्या वीरा, आ० १२ पंडीया हूं ।
४. आ० ९ गुणाकी, आ० १२ गुणकरी ।
५. अ० २ दास ।
६. आ० ९ जोइसी, अ० २ दिनदस, आ० १२ जोइसी ।
७. अ० २ महूरत, आ० ६ चीस ।
८. आ० ६ माडा, आ० १२ मउडो । ९. आ० १२ परकसि ।
१०. अ० २ एक, आ० १२ मास च्यारे ।
११. आ० ६ लगि विलवज्यो, आ० १२ विलमाविज्यो ।
१२ + १३ आ० ९ लाएकउ, आ० ६ हाथा तणो ।
१४ + १५ + १६. अ० २ दूजइ फेरइ, आ० ६ फेरी, आ० ९ स्वामी ⌣पडिविज्यो दिन ।
१७. अ० २ (मे नहीं है) आ० ६ प्रीय लेइ, आ० १२ पिपलउ ।
१८. आ० ६ समझावि, आ० १२ मनाय ।
यह छंद अ० २ खंड २ में २४, आ० ६ खंड २ में २३, आ० ९ में ५४, आ० १२ में ४७ है । लेकिन आ० ६ में निम्न पंक्तिया और हैं—
१. राजकुयरि बोलि एक चित्त ।
२. विप्र हकारीयो वेगि तुरंत ॥
३. आया प्रोहित राव का ।
आ० १२ में ४थी पंक्ति है:— तोनै सोन सीगी अरु कपिलीय गाय ।

ऽडीया तोडि[1] बोलावइ[2] राय[3]।
पतडउ लेइ[4] राज माहि[5] आइ[6]॥
सुदन[7] देई[8] म्हाका[9] जोइसी।
काढ़ि पतडउ[10] अरु[11] बोलिनइ[12] साच[13]॥
मास च्यार राजा दिन नहीं।
तिथि तेरसि अरु[13] मंगलवार[14]॥
इग्यारयउ चन्द्रमइइ देवनइ[15]।
तीजउ[16] चन्द्र[17] थारा बोडला[18] जोग[19]॥
मीका लागइ नहीं।
पुषि नक्षत्र अरु[20] कातिग मास॥

---

१. आ० ६ तोनइ।
२ आ० ६ बोलावइछै, आ० १२ बोलावैए।
३ आ० १२ राउ।
४. आ०६ पतडउ लेइ करि, आ० १२ पतडउ लेई।
५+६ अ० २ बेगो आइ, आ० ६ रावलि चालि, आ० ६ राहु ले आइ, आ० १२ तैवलगुनै आवि।
७. अ० २ सूदन, आ० ६ सोदिन। आ० ६ सुदिन, आ० १२ सुदिन।
८+६ अ० २ आ० ६ कहे रूडा, आ० ६ देइ म्हारा।
१०. आ० १२ पतडी।
११ आ० १२ तु।
१२. आ० १२ बोलिनै।
१३+१४ अ० २ वार सामवार, आ० ६ नै सुभ सोमवार, आ० १२ नै मगलवार।
१५ अ० २ आ० ६ देव है, आ० १२ इगारमौ चद्रमा देव नै।
१६ अ० २ आ० ६ तीसरो, आ० १२ तीजो।
१७. अ० २ चद्र छुद, आ० १२ चद्रमा।
१८+१६. अ० २ पाडिला जोग, आ० १२ घोडिला जागि।
२०. आ० ६ धूरि।

तिण[1] दिन[2] राजा[3] घे गम करउ।
तउ आगलउ[4] राउ[5] पूरइ थारी आस[6] ॥ ४१ ॥

झूठउ[7] रे बम्भण[8] कहिउं[9] रे विचार।
किम रे दिन नहीं मास विचारी[10] ॥
कालचि लागउरे जोइसी।
म्हे तउ मामा[11] छाडिस्या गढ़ अजमेर ॥
काका[12] बरंउया[13] ना रहा।
ढलग घालिस्या निश्चइ आस[14] ॥ ४२ ॥

१+२+३. अ० २, आ० ६ जीण दिन सामी।
४ अ० २ उवुधणी आगइ, आ० ६ आगइ, आ० १२ आगिला।
५. आ० ६ तुमारी।
६. अ० २ पूरइ हो आस, आ० ६ पूरै जिम आस आ० ६ तुम्ह पूरइ आस, आ० १२ तुम्ह पूरवै आस।

यह छन्द अ० २ खण्ड २ में २६, आ० ६ खण्ड २ में २४, आ० ६ में ५५ तथा आ० १२ में ४८ है। इस छन्द की चौथी पंक्ति अ० २ में है—

"बाचइ पतडउ बोलइ छइ सांच।"

तथा आ० ६ में है — "बाच्यो पतडउ बोलियो साच।"

इसी प्रकार तीसरी पंक्ति अ० २ में है—"मास एक लगि राजा दिन नहीं।" आ० १२ में यह नयी पंक्ति है—"योगिनी का लभइ नहीं।" आ० १२ में १० वीं पंक्ति पुष्प नक्षत्र अ कातिक मास।

७. आ० ६ झूठारे। ८. आ० १२ बामण।
६ आ० १२ कह्यो। १०. आ० ६ च्यारि।
११. आ० ६ भाई। १२. आ० १२ थांकै।
१३. आ० १२ बरज्यै। १४. आ० १२ आसवेर।

यह छंद आ० ६ में ५६, आ० १२ में ४६ है। आ० १२ में दूसरी पंक्ति है —किम दिन नाहीय मास विच्यारि। तथा चौथी पंक्ति है— म्हेतो छाडिस्या जोइसी गढ़ अजमेर।

राजा श्ररु[1] गोइड़ी पढोय छइ कांणि[2] ।
जाणिकि चंक दं न्हीं[3] पलिहालि ।।
राजा गव्वे[4] बोलीयउ[5] ।
सो[6] वचन गोरडी[7] म्हाकउ वयउन सुहाइ[8] ।।
जीभ दोपउ दुहजिण हूयउ ।
तिणि वचन बाधियउ[9] उलग जाइ ।। ४३ ।।

उलग जाण कहइ[10] धणी[11] कउण[12] ।
जिहा की गाठड़ी गरथ न कूल्दइइ[13] लूण ।।
करि श्रकुलीणीय[14] कलि[15] करइ ।
कइ रिण का चंपीया[16] घर न सुहाइ[17] ।।

---

१. श्रा० १२ नै ।
२. श्रा० १२ छै काण ।
३ श्रा० १२ दीन्हा ।
४. श्रा० १२ गरबीय ।
५. श्रा० १२ बोलीयो ।
६ श्रा० १२ इसा ।
७. श्रा० १२ गोरी नै ।
८. श्रा० १२ किमन सहाइ ।
९ श्रा० १२ बाधीयो ।
यह छन्द श्रा० ९ में ५७ है । श्रा० १२ में ५० है ।
श्रा० १२ में पाचवीं पक्ति है—"जीभ दोषे दुहजण हूँउ ।"
१०+११. श्रा० ९ करिइधणी, श्रा० १, धणीकहै ।
१२. श्रा० १२ कुउ ण ।
१३. श्रा० १२ कुल्हयो ।
१४ श्रा० ९, कइ, श्रा० ९, श्रकुलेणी, श्रा० १२, परी श्रकुलीणी ।
१५. श्रा० ९, कलह ।
१६. श्रा० १२, चापीया ।
१७. श्रा० १२ परिनह सुहाइ ।

पढइ जांणी हुइ भीसइ ।
मइ[1] मुंदड[2] लेइ[3] नइ ऊगण[4] जाइ ॥ ५४ ॥

रहि रहि मोरड़ा मान म हारि ।
प्रथमइ[5] तड[6] अपकर घोलीयड[7] नारि ॥
सामरि[8] मंडी तव[9] नयखणी ।
तहु अपकर[10] मुंरइ[11] मनि रहउ लिपाइ ॥
हउरि[12] उडीसइ गम वर ।
एक मरी[13] घणुं ऊखग आइ[14] ॥ ५५ ॥

सामरि[15] घणीय[16] किम[17] ऊखग जाइ[18] ।
म्हा की गहणा[19] छै[20] करहा[21] पडाइ ॥

---

१ + २ + ३ आ० ६, सामरयो गउ, आ० १२, कइ मुंहो लेई ।
४. आ० ६, मंगुयालगै ।
यह छन्द आ० ६ में ५८, आ० ६ खण्ड २ में १२, आ० १२ में ५१ है ।
५ + ६ आ० ६. प्रथम तइ, आ० १२ प्रथमही ।
७. आ० ६, बोलिउ, आ० १२, अनुकर बोलीयो ।
८. आ० ६, नारि सइभर ।
९. आ० ६, तै, आ० १२ तठइ ।
१०. आ० १२ अउकर ।
११. आ० १२ मोरै ।
१२. आ० ६ हू रे ।
१३. आ० १२ रसी ।
१४ आ० १२, जाइ ।
यह छंद आ० ६ में ५६ है । आ० १२ में ५२ है । आ० १२ में ५ वीं पंक्ति है—"हूँ रे उडीसे गम करू ।"
१५. आ० २ रहि रहि आ० ६ जारे ।
१६ + १७. आ० २ रावनू, आ० ६ घणी तम्हे, आ० १२ घणीय क्यु ।
१८. आ० ६ जाउ ।
१९. आ० ६ गेलि, आ० १२ म्हा कायगयल ।
२० + २१. आ० ६ तू वर ही ।

पोहरि जाइ[1] करि[2] आपसाइ[3] ।
अणिहर्य[4] थरथ[5] गरथ[6] भंडार ॥
आणू[7] हीरा पाथरी[8] ।
म्हाकइ तउ भोज स्यूं आणंलीभार ॥ ५६ ॥

ना हमि[9] गरजू भोज की पार ।
ना हमि[10] गरजू थरथ भंडार ॥
ना हमि[11] गरज हीरा तणा ।
गोरी अधिक सराहीयइ पूरबउ राइ ॥
हमि तउनि किउ करि गिराया ।
उरग कइ[12] मिसी देषण जाइ[13] ॥ ५७ ॥

१+२. आ० ६ जाऊं हूँ ।
३ आ० ६ माहरै ।
४ आ० ६ आणूंजी आ० १२ आणिस्या ।
५+६. अ० २ नइ दरब, आ० ६, आ० ९ गरथ ।
७. आ० १२ आणिस्यु ।
८. आ० १२ पाथरी ।

यह छन्द अ० २ खण्ड २ में १५, आ० ६ खण्ड २ में १४, आ० ९ में ६०, आ० १२ में ५३ है । इस छन्द की छठी पंक्ति आ० ६ और आ० ९ में है—

६ "म्हा कइ तउ भोज स्यु आणलीभार ।"

आ० १२ में २री पंक्ति है :—"जाइस्यु पीहर आपणै ।"

आ० १२ में छठी पंक्ति है :—"आणिस्यु भोज सरेसीयधार ।"

९ आ० १२ ना हम्हे ।
१०. आ० १२ ना हम्हे ।
११. आ० १२ ना हम्हे ।
१२. आ० १२ रै । १३. आ० १२ जाइ ।

यह छन्द आ० ९ में ६१, आ० १२ में ५४ है । आ० १२ में चौथी पंक्ति है—"अधिक सराह्यो गोरी पुरब्यो राउ ।" आ० १२ में पांचवीं पंक्ति है—"म्हानै हो तैन क्यु करि गिराया ।"

हउ तउ बोलतां बोलइ[1] भी पुन सुहाइ[2]।
तउ धण पाइल लीयउ उचाय ॥
सोपम[3] ऊपरि राखीयउ[4]।
हियइ सूगण किम्हइ न देखउ जाइ ॥
उठइ[5] तवि हरि ध्याईयउ[6]।
तउ भीय पाव धरइ मेरहोय जाइ ॥ ४८ ॥

तइ तउ उठा गोरी बोलीया बोल।
तइ नवि राखीयउ प्रीत[7] तणउ तोल ॥
तइ कहउ[8] तिम कोई नवि कहइ[9]।
म्हे राज पाट सवि चलिया[10] मेल्हि[11] ॥
धवन धारा भणीम्हे नीसरा।
हस्ती बांधिया मेल्हि[12] या[13] जाइ[14] ॥
साभरि म्हेलिस्या मवखपी।
म्हे तउ[15] सांच करेस्या पूरम्या[16] राइ ॥ ४९ ॥

---

१. आ० ६ हो तो बोलतां बोल, आ० १२ हूतो बोलता बोली।
२. आ० ६ तीनइ न दुहाइ, आ० १२ थी बचन सुहाइ।
३. आ० ६ सोवग, आ० १२ सोवग।
४. आ० १२ राखीयो। ५. आ० १२ उठे। ६. आ० १२ धाईयो।
यह छन्द आ० ६ में ६२ है, आ० १२ में ५५ है।
आ० १२ में दूसरी पंक्ति है—"जब धण पाथर लीयो उचाइ।"
आ० १२ में चौथी पंक्ति है—"हिवे दासन किएही चौखी जाइ।"
आ० १२ में छठी पंक्ति है—"तउ मुझ मेल्हिप्रिय उलग जाइ।"
७. आ० १२ प्रिया। ८. आ० ६ तइ कह्या, आ० १२ तइ कह्यो।
९. आ० १२ कहै १० + ११ आ० ६ चालिस्या मेल्हि, आ० १२ चालिस्या म्हेलि
१२ + १३ + १४ आ० ६ मेल्हिस्या जाइ, आ० १२ म्हेलिइस्या जाइ।
१५. आ० १२ म्हेतो। १६. आ० १२ पूरस्यो।
यह छन्द आ० ६ में ६३ है। आ० १२ में ५६ है।

तिन गुनह यकसइ[1] स्वामी सइ कोइ।
सरस ते करहिं[2] सु तुरइ थीट[3] होइ ॥
धे न्हा लीनउ भरपमा[4]।
सइ सउ एक वच वहि वाली देई ॥
लालच करि कहइ कामिणी।
किम उलग चालइ नवल सनेह ॥ ६० ॥

उलग जाता किम रहइ[5] नारि।
वोलियां[6] वोलतें[7] चित्तइ[8] विचार ॥
वोल्यउ हीं पाल्यउ आपणउ।
उत्तइ[9] पांच उगाहिस्या हीरा की जाइ ॥
मुझ विण किण तू जिन्रहइ[10]।
वेगि[11] मिलिस्या तुझ नइ आइ[12] ॥ ६१ ॥

---

१. आ० ६ स्वामी तीनि गुनह बकसइ, आ० १२ जगसै।
२. आ० ६ करउ, आ० १२ करइ।
३ आ० १२ थी।
४. आ० १२ भारपमा।
यह छंद आ० ६ में ६४ है। आ० १२ में ५७ है।
आ० १२ में चौथी पंक्ति है—"एक वचन कहि वालीव देइ।"
आ० १२ मे पाचवीं पंक्ति है—"लालचकरि कामणि कहै।"
५. आ० १२ रहा।
६. आ० १२ वालियो।
७ आ० १२ वालसो।
८. आ० १२ चित्त।
९. आ० १२ (में नहीं है)।
१० आ० १२ तू जीना रहै।
११. आ० १२ गोरी वेगा।
१२. आ० ६ चली तुझपै आइ।
यह छंद ६ में ६५ है। आ० १२ में ५८ है।
आ० १२ में तीसरी पंक्ति है—"बोल्यो जी पाल्यो आपणो"।

हउ न पतीजु राजा मारवीनै रौ बात ।
मारवण चालिस्यइ राइ यइ साथ ॥
मादड़ी[1] हुइ[2] परि यापरइ ।
पाईराजा[3] मिरयाड[4] ढोलिया[5] याइ ॥
ऊभो[6] पदारइ[7] जागिसिउ ।
श्रण[8] परि[9] सेविस्यउ श्राप रायउ राय[10] ॥ ६२ ॥

गहिली है सुधि कि जागी याइ ।
श्रद्धी लेइ कोइ ठलग जाइ ॥
भोली[11] है[12] नारि[13] कि[14] बाउली ।
तू इइ[15] चांदि किम ढाक्यउ जाइ ॥
रतन छिपाथा गोरो किम[16] रहइ[17] ।
उइठइ[18] घाचाकउ[19] हीयउ पूरम्यउ[20] राउ ॥ ६३ ॥

---

१ + २. ग्र० ~ दासी हुइ ।
३ + ४ ग्रा० ६ पायतल सिर्यो, ग्रा० १२ पाउतला सिस्यु ।
५. ग्रा० ६ ढोलू, ग्रा० ६ घालस्यो, ग्रा० १२ ढालिवाव ।
६. ग्र० २ पुहर ।
७. ग्र० २ पुहर प्रति, ग्रा० ६ पोहरइ ।
८ + ६. ग्र० ~ इण हर, ग्रा० १२ इणपरि ।
१० ग्र० २ नाह, ग्रा० १२ उलगु आपणउ राउ ।
यह छंद ग्र० २ खंड २ में ३०, ग्रा० ६ खंड २ में २३, ग्रा० ~ में ६६, ग्रा० १२ में ५८ है ।
ग्रा० १२ म दूसरी पंक्ति है—"सजण चालिस्यै रावसै साथि ।"
ग्रा० १२ म तीसरी पंक्ति है—'ऊलभी पहुरै जागिस्यु ।'
ग्रा० १२ में पाँचवीं पंक्ति है—"अदीय हुइ करि हु रहुँ ।"
११ + १२. ग्र० २ ग्रा० ६ गहिली । १३ + १४. ग्र० २ ग्रा० ६ मूघउ त ।
१५ ग्रा० ६ कहो, ग्रा० १२ कुडै । १६ + १७ ग्रा० ६ किम रहै ।
१८ + १६ ग्र० २ ग्रागइ वाचा की । ग्रा० १२ वाचा किउ ।
२०. ग्रा० १२ पूरव्या ।

पाइ पडउं राजा मानिज्यो ओल।
काइ हसावइ[1] दुरजन लोग[2] ॥
कामिणी सुं सुमपा क्रिसी।
नयण नीर रहइ[3] जल पूरि[4] ॥
हीयइलइ साम न मावइय[5]।
✓काइ भुयंगम पावीय[6] पीर ॥ ६४ ॥

वरिइज[7] नइ रे घण वरसता मेह।
साठि[8] दिवस लगइ[10] तुझ स सनेह[11] ॥
मिलिस्या बरस बारा पछइ[12]।
सनइ उडाड़ी नइ कइ वाय ॥

यह छंद प्रा० २ खड २ में ३१, प्रा० ६ खड २ मे ७८, प्रा० ६ में ६७, प्रा० १२ मे ६० है।

प्रा० १२ में पहिली पंक्ति है— गहिलीय मूध किम लागीय वाइ।

प्रा० १२ मे पाँचवीं पंक्ति नहीं है।

१. प्रा० १२ हसावउ।
२. प्रा० १२ लोक।
३. प्रा० ६ रह्यो, प्रा० १२ रह्यो।
४. प्रा० १२ भरपूरि।
५. प्रा० १२ मावई।
६. प्रा० ६ पावए, प्रा० १२ पावउ।
   यह छंद प्रा० ६ म ६८, प्रा० १२ में ६१ है।
७. प्रा० बरजि, प्रा० १२ वरजि।
८. प्रा० १२ नेहे।
९. प्रा० ६ सात प्रा० १२ सात।
१०. प्रा० ६ लगि, प्रा० १२ दिरा लगै।
११. प्रा० १२ तुम्ह स्यु नेह।
१२. प्रा० १२ नारह पछै।

सांवरि[1] नीर अधीर भरि।
धधहकामणि धणउ नेह विराग[2] ॥ ६५ ॥

चालइ उछाग जाण न देइ[3]।
✓ कइ मुख मारि कइ सरीसीय[4] लेइ[5] ॥
अचल मइ साधण[6] कहइ[7]।
दुइ दुप सालइ हो सामीय साल ॥
जोवन सुरडीय मारिस्या[8]।
दोम सिसउ[9] जइ[10] साधण[11] वांस[12] ॥ ६६ ॥

---

१ आ० ६ साभर। २. आ० १२ विराम।

यह छन्द आ० ६ में ६८ तथा आ० १२ में ६७ है। इस छन्द की तीसरी पंक्ति आ० ६ में है—"नाल्ह रसायण इम भणै" तथा चौथी पंक्ति है—"मनहि उदि काटि तो कास"
आ० १२ में चौथी पंक्ति है—"मनहि उकादियो ना रहुमास"
तथा पाँचवी पंक्ति है—"साभरि नीर न बीमरा"

३. अ० २ आ० ६ देहि।
४. अ० २ साथ तु, आ० ६ मुक सरमी।
५. अ० २ लेहि।
६. आ० ६ अ० २ तै धन।
७ अ० २, आ० ६ रही. आ० १२ कहै।
८. आ० ६ मारिज्यु, आ० १२ मारिस्यै।
९. आ० ६ कमा को।
१०+११ आ० गोरडी को, आ० १२ राजा।
१२. आ० ६ नाह।

यह छंद अ० २ खड २ में ३२, आ० ६ खड २ में २६, आ० ६ में ७० है। इस छुद की ४, ५, छठी पंक्तियां अ० २ में इस प्रकार हैं—

४ इक इकेली जोवन पूर।
५. सूनी सेज बीदेस पिउ।
६. इदुइ दुप नाल्ह कइ दूणौ जुण।

आ० १२ में पहिली पंक्ति है—चालस्या उलगाणा जाण न देइ।
आ० १२ में चौथी पंक्ति है—दोइ दुप साले सामुही नाग।

छोडि नह[१] गोरी[२] सउ दे[३] मुक गाय।
वरस[४] दिन रहंउ धारी[५] हे[६] श्राय॥
मठन पयउद्दर[७] दिव[८] कीया[९]।
सब हसि करि गोरडी[१०] कहइ[११] विचार[१२]॥
ए[१३] दिव[१४] कीया[१५] श्रास्रा।
स्वामीय[१६] जा[१७] दिवा[१८] हुश्रा[१९] सुर नर छार॥ ६७॥

कातिग स्वामी तू आरण देहि।
बुदन न चालिनइ बरिसइ छो[२०] मेह॥
राखज करि कामणि कहइ[२१]।

---

१. श्र० २, श्रा० ६ श्रचल, श्रा० १२ छाडि नै।
२. श्र० २, श्रा० ६ धणि, श्रा० १२ गोरीडी।
३. श्रा० ६ देहि, श्रा० १२ (में नहीं है)।
४. श्र० १ दोय।
५+६—श्र० देवकी, श्र० १२ थाऽडी।
७. श्रा० १२ पयाणह।
८+६—श्रा० ६ देम कीया, श्रा० १२ दिवकह।
१०. श्र० २ गोरी, श्रा० १२ गोरीय।
११ श्र० २ पूछइछर, श्रा० ६ पूछर, श्रा० १२ करै।
१२. श्र० २ श्रा० ६ नाह।
१३+१४—श्रा० ६ एक दिव, श्रा० १२ ए दिन।
१५ श्रा० ६ समरण, श्र० २ छइ परिड, श्रा० १२ यका।
१६+१७+१८—श्र० २ इण दिवषी, श्रा० ६ इह दिवसा।
१६ श्र० २ हुया।

यह छंद श्र० २ खंड २ में ३३, श्रा० ६ खंड २ में ३०, श्रा० ६ में ७१ है। लेकिन श्रा० ६ में दूसरी पंक्ति छूट गई है।

श्रा० १२ में अंतिम पंक्ति है—"ए दिन न्य हुवै सुर नर सार।"

२०. श्रा० १२ वरिस्यै।
२१. श्रा० १२ कहै।

पगि पड़ी[1] हुइ नव पर नादि[2] ॥
सुणि नाहि करइ दया[3] आंगुहा ।
दाहा जोवनह माहि म छोड़ ॥ ६८ ॥

गहिली है सुधि[4] कि[5] परीय[6] गुवारि[7] ।
हीयडलइ नयण[8] गही है[9] नारि[10] ॥
तीरथराज प्रयाग ज्यौं[11] ।
मादइ[12] तिरी[13] उबीसा तणी[14] गोरीह ॥
रहस्या पहर न पल घड़ी ।
तउ सर्पी[15] घालिस्यौ विस्वा बीस[16] ॥ ६९ ॥

---

१. आ० १२ पगेपडि ।
२ आ० १२ वीनवी हुय कर जोडि ।
३. आ० १२ करिदस ।

यह छन्द आ० ६ में ७२ । आ० २ में ६५ है । आ० १२ । अंतिम पंक्ति है—"दाहा यौवन भर स्वामी हमहि न छोडि ।"

४. आ० ६ मूंध, आ० १२ मूध ।
५ आ० ६ (म नहीं है) ।
६ आ० ६ परी ।
७ आ० ६ गमार, आ० १२ गमारि ।
८. आ० ६ थारइ, आ० १२ हीयडले नीयण ।
६+१०. आ० ६ नार, आ० १२ थारैदे नारि ।
११ आ० १२ स्यौ ।
१२+१३. आ० ६ मोहै तिउरा, आ० १२ मोहि तुम्हीशा ।
१४ आ० १२ कीवरीय ।
१५. आ० १२ गोरडी ।
१६ आ० १२ विसवा हो बीस ।

यह छन्द आ० ६ में ७३ है तथा आ० १२ में ६६ है—
इस छन्द की पाचवीं पंक्ति आ०१२ में है—"रहिस्यां पल न एका घड़ी ।"

हिव[1] ढूंढी[2] स्वामी[3] थाहरी[4] धाम।
जोगणि होइ सेवू[5] वनवास॥
कइ तप तपं[6] वाणारसी।
कइ सरीर झंपउ[7] देसि[8] केदारि[9]॥
कइ हिमालइ माहि गिलउ।
स्वामी[10] धणी[11] मरिसी[12] गंग नइ[13] पारि॥ ७०॥

जइ[14] धण मरिसी गंग माहे[15] जाइ।
उजग जात[16] न[17] रहाइ[18]॥

---

१. अ० २, आ० ६ (में नहीं है), आ० १२ (में नहीं है)।
२. अ० २, आ० ६ मेल्हि, आ० १२ छाडी हो।
३. अ० २ में धणी, आ० ६ मेरे धणा।
४. आ० १२ थारडी।
५. आ० ६ सेवां, आ० १२ सेवु।
६. अ० २ तणुह, आ० ६ तपसी, आ० १२ तपीसि।
७ आ० १२ झपाइ।
८+६. आ० ६, देइ पेदारि, आ० १२ देउ कैदार।
१०+११. अ० २, कइ जाइ, आ ६ कै हूँ, आ० ६ स्वामीकै आ० १२ स्वामी कै।
१२. आ० ६ मरिस्यै, अ० २, आ० ६ सेवसूं, आ० १२ मरिस्यै।
१३. आ० ६, कइ, आ० १२ कै।

यह छंद अ० २ खड २ मे २५, आ० ६ खड २ में ३२, आ० ६ में ७४ तथा आ० १२ में ६७ है।

इस छंद की पाचवीं पक्ति आ० १२ मे है—

"कइरे हिमलैमाहि गलु।"

१४ आ० १२ (में नहीं है)।
१५. आ० १२ मरिसी।
१६+१७—आ० ६, जाताजी, आ० १२ जाता तो हमन।
१८, आ० ६ में 'तोन' और है।

घंस वचन[1] किम बोलिजइ[2]।
मरस्या[3] जे नकुलीणी नारि[4] ॥
तुं तउ कुलवंती किम मरइ।
पुत्तउ श्रोर मिखि छोडा है नारि ॥ ७१ ॥

डीग तीजइ[5] राजा गमया न होइ।
चउथि[6] गणपति पूजइ[7] सहु कोइ ॥
पांचमि छठि सुग्हं[8] दिन नहीं।
मातिमि सुहुदिमि[9] कपइ काल[10] ॥
तिणि दिन गाम न चालिजइ।
आठमि कइ दिन दइइ दिग्गसुख ॥
तिण दिन उजत गम नहीं।

---

१. आ० ६ इसावचन।
२. आ० १२ बोलिजै।
३. आ० ६ मरस्यइ, आ० १२ मरिस्ये।
४. आ० १२ जिका अकुलीणीय नारि।
यह छद आ० ६ में ७५ है और आ० १२ में ६८ है।
यह छद की ५ वीं पंक्ति आ० १२ में है—तू कुलवतीय।।।
इस छद की ६ ठी पंक्ति आ० १२ में है—
एमै तू कुरा मिसि छोडी हे नारि ॥
५. आ० १२ बीज तीजा।
६. आ० १२ चौथि।
७. आ० १२ पूजै
८. आ० १२ राजा।
९. आ० १२ चिहुं दिसि।
१०. आ० १२ टपइ मा।

एकादशी जोगनी[1] सामुही[2] जोगु[3] ॥
द्वादशी कइ दिन पाख्यो[4] ।
तेरसि तेजीयां[5] तीन्हेवार ॥
चउदिसि[6] तुरीय न[7] पलाणिजइ[8] ।
पूनिम कइ[9] दिन पूरउ[10] चंद ॥
रहिन सकइ[11] संभर[12] धणी ।
पडिवा कइ[13] दिन गुडइ[14] गयंद ॥ ७२ ॥

तिथ महूरत सो गिणइ[15] नारि ।
क्याइण चालिजइ[16] कोइ[17] कुआरि[18] ॥
ऊलग जात हो[19] दिन विसा[20] ।
वचन का वाधा हो निसरि जाइ ॥
भरणि भद्रा ते नवि गिणइ[21] ।
इहीं है गोरी म्हानइ[22] पुणल न देइ[23] ॥ ७३ ॥

---

१ आ० १२ योगिणी । २. आ० १२ सामुहउ ।
३. आ० १२ जोग । ४. आ० १२ पारणउ ।
५. आ० १२ तेउजीया । ६. आ० १२ चौदिसि ।
७. आ० १२ (में नहीं है) । ८. आ० १२ पलाणिजै ।
९. आ० १२ कै । १०. आ० १२ पूजै ।
११. आ० १२ सकै । १२. आ० १२ सामरि ।
१३. आ० १२ कै । १४. आ० १२ कि गुडहु ।
यह छन्द आ० ६ में ७६ तथा, आ० १२ में ६६ है ।
इस छन्द की ५, ६, तथा ७ पंक्तिया आ० १२ में नहीं है ।
१५ आ० ६ गिणै, आ० १२ गिणै ।
१६. आ० १२ चालै ।
१७. आ० ६ काइ, आ० १२ (में नहीं है) ।
१८. आ० १२ राजाकुमार । १९. आ० १२ जाता ।
२० आ० १२ किसउ । २१. आ० १२ गिणै ।
२२. आ० १२ म्हाने । २३. आ० मलाइ ।
यह छन्द आ० ६ में ७७ तथा आ० १२ में ७० है ।

पाछड डखागाइ घुंडोय चाखि ।
घरथ दरब धारा[1] औंड की हाथि[2] ॥
ता मुरइ[3] रावा[4] हम[5] मुरइ[6] ।
तउ[7] मुया[8] रानउ[9] ही घर जाइ[10] ॥
घरथ दरब गाडयउ[11] रहइ ।
जेह[12] म[13] सिर जीयो[14] सोईय[15] पाय ॥ ७४ ॥

वटूया याख न चाढि[16] है[17] नारि ।
मह[18] तउ[19] मेल्ही[20] चिगह धीसारि[21] ॥

---

१. अ० २, आ० ६ लाधा, आ० १२ धारे ।
२. आ० १२ में कालो ही हाथि ।
३. आ० ६ तिरा, अ० २ मुरो ।
४. अ० २, आ० ६ घणा ।
५+६ अ० २ मो वीरो, आ० ६ मा वीरा, आ० ९ हम मुरो ।
७+८ अ० २ तोहि मुरो, आ० ६ तोहि वीरो, आ० १२ तो मुआ ।
९. अ० २ थारी, आ० ६ थारि, आ० १२ राउतय ।
१०. आ० ६ जाय, आ० १२ घरही जाइ ।
११ आ० ६ माढो, आ० १२ गाड्या ।
१२+१३+१४. अ० २ जिण मिरज्य होई, आ० ६ जिणहू सरजीया
आ० १२ जेहने सिरज्याहुवें ।
१५. आ० ९ हुई सोई, आ० १२ सोइपाइ ।
यह छन्द अ० २ खड में ४१, आ० ६ खड २ में ३८, आ० ८ में
८८, आ० १२ म ७१ है ।
आ० १२ में इस छन्द की तीसरा पाक्त है—
'हउमुर स्वामी अम्हेमुरा ।"
१६+१७. आ० ६ वोलिस ।
१८ अ० २ तु, आ० ६ तै, आ० १२ म्हा ।
१९ अ० २ मो आ० ६ मुझ ।
२० अ० मेल्हसी, आ० १२ म्हेलीय ।
२१ आ० ऊतारि, आ० १२ उतारि ।

जीभ का दाधा नवि[1] पाडु[2] ।
दवका दाधा हो उपल[3] होइ[4] ॥
नारद भणइ[5] सुणिउयो सइ[6] कोइ ॥ ७४ ॥

छुंडी हो[7] स्वामी[8] म्हे थारी हो श्रास[9] ।
मेइला हो[10] थारउ[11] किसउ वेसास ॥
बांदी[12] घण[13] करि[14] नव[15] गिणी[16] ।
म्हाकी[17] सगा सुणीजा माहे[18] लोपीय[19] माम[20] ॥

१+२. श्र० २, श्रा० ६ नुपाालुइई, श्रा० १२ पाल्हेवै ।

३. श्र० २, कुपली, श्रा० १२ कुपल ।

४. श्र० २ मेलिइ ।

५. श्र० २, श्रा० ६ कहइ, श्रा० १२ मण ।

६. श्रा० १२ सहु ।

यह छंद श्र० २ खंड २ में १८, श्रा० ६ खंड २ में १७, श्रा० ६ में ७६ तथा श्रा० १२ में ७२ है ।

७+८. श्र० २ मेल्ही दो मइ पणी, श्रा० ६ मेल्ही छै मेरे धणी, श्रा० १२ छाडी हो स्वामी ।

९. श्रा० १२ थारडी श्रास ।

१०+११. श्र० २ श्रा० ६ मेला राजा थारउ, श्रा० ६ मैलाो हो थारो, श्रा० १२ महला थारउ ।

१२+१३+१४. श्र० २ तोहूँ दासी, श्रा० ६ हूँ वारी, श्रा० नरही करिवण ।

१५+१६. श्र० २, श्रा० ६ करि गीणी, श्रा० १२ ना गिणी ।

१७+१८. श्र० २ श्रा० ६ सगा सणीजा मां, श्रा० ६ म्हाका सगा सुणीजा की, श्रा० १२ सगा सणीजा ।✓

१९+२०. श्र० गमीमा, श्रा० ६ नीगमी माग, श्रा० ६ लोपी है लाज, श्रा० १२ लोपीयराइ ।

जीव महो[1] सुधावटइ[2] ।
थाकहा घण[3] तुम्हारडो[4] दास[5] ॥ ७६ ॥

तरह आईवइ सावज मारीय बालु ।
आपण मद्दि[6] पदमारयड[7] आवि ॥
थवा[8] छइ[9] जीम वो[10] आइरो ।
स्वामी[11] कह[12] घण[13] थारइ हीयइ[14] न समाइ ॥
कइ या पीहरि छाडली ।
हुय[15] फड[16] हुप देई[17] उफ्रग[18] जाइ ॥ ७७ ॥

---

१. आ० ६ जीवत हो ।
२. आ० मुई मसी, आ० १२ मया भावइ ।
३. अ० २ बालू लोभी हूँ, आ० ६ थलू हो भोली राजा, आ० ६ घालो हो धण, आ० १२ बालु हा स्वामी ।
४+५. अ० २ थार दास, आ० ६ तुम्हारा दास, आ० ६ 'तुम्हारडो राज, आ० १२ थारडा दास ।

यह छंद अ० २ खंड २ में १७, आ० ६ खंड २ में १६, आ० ६ में ७३ तथा आ० १२ में ७३ है ।

६ आ० ६, ग्रहीत ।
७. अ० २, तिय बइसाडी छइ, आ० ६, बैसाडीयो ।
८+६. अ० २ कै या, आ० ६ कै ए, आ० ६, काग छइ, आ० १२ कइआ ।
१०. अ० २ बोलको, आ० ६ बोली ।
११+१२+१३ अ० २ मावन वीरा, आ० ६ सामवण वीरा, आ० ६ स्वामी कै घण, आ० १२ कर घण ।
१४ आ० ६ हुदे, आ० १२ थारै हीयै ।
१५+१६ अ० २ कीधो, आ० ६ अवकि, आ० १२ हिवै हुए ।
१७. आ० १२ देई किम ।
१८ आ० ६ ऊलगे ।

यह छंद अ० २ खंड २ में ३७, आ० ६ खंड २ में ३४, आ० ६ में ८१ तथा आ० १२ में ७४ है ।

तठइ सुखि हे भावज[1] बोलइखइ[2] राउ[3]।
करि जोड्या अरु[4] कहइ[5] सुभाउ[6] ॥
बीसल दे करइ[7] बीनती।
थे परहरे कोप मो देइ[8] आसीस ॥
दुष दारण म्हारइ[9] को[10] नही।
ऊलग जावि[11] की परीय जगीस ॥ ७८ ॥

ऊभी छो[12] भावज देइ छइ[13] सीष।
रतन कचोलइ किम[14] पडै[15] भीष ॥

इस छन्द की ५ वीं पंक्ति आ० २ में इस प्रकार है—
"हसि गलि लाई मोजि करण।"
एव आ० ६ में है :—"हसि गलि लाई भांमी काणि।"
आ० १२ में इस छन्द की पहली पंक्ति है—
"तठै आई छै भावज मानिय कांणि।"
तथा आ० १२ में इसकी दूसरी पंक्ति है—"आंचलि भकै सारीय आणि।"

१ आ० ६ (में नहीं है) आ० १२ में "तठइ" नहीं है।
२ आ० ६ बोलीयउ आ० १२ बोलैछै।
३. आ० १२ राइ।
४. आ० २२ कर जोडी अरु, आ० ६ नइ।
५+६. आ० ६ लागू पाइ, आ० १२, कहु समाइ।
७. आ० १२ करै।
८. आ० ६ मोहि यो।
९ आ० १२ म्हानै।
१० आ० १२ की।
११ आ० १२ जाण ॥
यह छद आ० ६ में ८२, आ० १२ में ७५ है।
आ० १२ में इस छद की ४ थी पंक्ति है—
तुम्ह परिहरी कोप मुझ देहु आसीस।
१२. आ० २ ऊर्भाय, आ० ६ ऊभी छै, आ० १२ ऊभीय।
१३. आ० १२ दीय छै।
१४+१५. आ० २ राय साप जै, आ० ६ सपजै, आ० १२ रतन कचोले भी पडै।

सा[1] किव[2] पगसु[3] टेविसइ।
इसीय नारि निखि कइ धरि वाति॥
इसीय न देवक्र पुत्रकी।
कमलनयण[4] धण गरीय[5] सुमीट[6]॥
दइ[7] निपाइ[8] विह घडी।
रहे तउ इसीतिरी न रवि वजइ दीठ॥ ७१॥

आवुडी[9] होइ[10] नइ पाडइ[11] पइवाइ।
इव[12] कउ[13] नाह मनावणउ[14] जाइ॥
परहर[15] सूठइ[16] वर[17] पाइ[18]।

१+२. अ० २ ते नांउ, आ० ६ तोहि, आ० १२ सो क्युं।
३ अ० ६ पग सिउं, आ० १२ पगस्युं।
४. अ० २ नयण सलूणो, आ० १२ सरवणनयण।
५+६. अ० २ वचन सुमीत, आ० १२ अरु परीय सुमीठ।
७+८. अ० २ दईव नरपाली, आ० १२ दाईव निराई।
यह छंद अ० २ खट २ में ६८, आ० ६ खड २ में ६५, आ० ६ में ८३ तथा आ० १२ में ७६ है।
इस छंद की ४ थी और पाचवीं पंक्तियां आ० ६ में इस प्रकार हैं—
४ असीय न रामतणी रहे वास।
५. असीय विधाता घडि सकि॥
तथा आ० १२ में ८ वीं पंक्ति है—इसीय नारिय रवितलै दीठ।
६. अ० २ आछो, आ० १२ आजकुली।
१०. अ० होइ।
११. अ० २ नइ परी, आ० ६ परी, आ० १२ नै।
१२+१३. अ०२ नार बोलावउ, नार बोलावइ आ० १२ में केवल 'इव' है।
१४. अ० २ घन कवन मुखि, आ० ६, हूंकिण मुखि, आ० १२ नाह नमनावणी।
१५. आ० ६ हरि।
१६. अ० २ पूजो होइ, आ० ६ पुज्योहोय।
१७+१८ अ० बाहुडे, आ० ६ बाहुडइ, आ० ६ परि पाइये।

तइ[1] तउ[2] सासुनि[3] गियी न देवर[4] जेठ ॥
म्हाकउ कहउ न रापियउ[5] ।
म्हातउ[6] हे गोरी[7] पाछिला[8] भेटि[9] ॥ ८० ॥

तठइ[10] हीयडलउ[11] गह्वरइ[12] उसास[13] ।
चालिछइ[14] गोरडी भाटणि पासि ॥
पाइ पडी लाजच करइ[15] ।
तो नइ[16] कोडि तंकानउ[17] नवसर हार ॥
आभर[18] सगला[19] सोभता ।
भोलइ म्हार[20] तुम्ह विचइ[21] सिरजण हार ॥

१+२+३. अ० २, आ० ६ देवर मनावइ, आ० १२ सासू ।
४. अ० २ अरी बडो आ० अरयडो, अ.० १२ गियीय न देवर ।
५. आ० १२ दापीयो ।
६. अ० २ हुइ, आ० ६ हावि, आ० १२ हम तुम्ह ।
७ अ० २, आ० ६ गोरी मु ।
८ अ० २ आ० ६ छेहली, आ० १२ पाछिलि ।
६. अ० २ मेट, आ० १२ मेट ।

यह छन्द अ० २ में ६०, आ० ६ एड २ में ६०, आ० ६ में ८५ आ० १२ में ७७ है। अ० २ तथा आ० ६ में इस छन्द की तीसरी पक्ति है—"मइ तो काई नवि बोलियो।"
तथा आ० १२ में ३ री पक्ति है—"हरि तठे घर पाइजे।"

१०. आ० १२ तठै ।
११. आ० १२ हीयडलो ।
१२. आ० १२ गह्वर्यो ।
१३. आ० ६ भरइ उसास, आ० १२ भरे ऊसास ।
१४. आ० १२ चाले छै ।
१५ आ० १२ करै ।
१६. आ० १२ तोने ।
१७. आ० १२ टंका को ।
१८. आ० १२ आभरण ।
१६. आ० १२ सिगला है ।
२०. आ० १२ म ।
२१. आ० १२ विचिछे ।

चंद सूरिम दयह दुगु[1] सापिया[2]।
उद्दाग्ग जाता म्हाकड़ राजा नइ रापि ॥ ८१ ॥

भाटिय कहइ[3] सुणि राजा[4] का पूत ॥
उलग जाण कउ परउ कुसूत[5] ॥
बेटि व्याही राजाभोज की।
सीरउ सोलहउ काइ[6] करइ छार ॥
मरण जीवण राजा[7] पग[8] तलइ[9]।
कनक[10] कचोलउ[11] उर[12] धरइ[13] भार[14] ॥
हेडाऊ का तुरीय जिम।
हय[15] न फेरइ[16] सउ सउ[17] धार ॥ ८२ ॥

---

१ आ० १२ वैद्द।

२. आ० १२ सापीय।

यह छंद आ० ६ में ८६, आ० १२ में ७८ है। इस छंद की अंतिम पंक्ति आ० १२ में है—"उलग जाता म्हाकउ नाइ निवारि।"

३. आ० १२ भाग्यो कहै।

४ आ० १२ राव।

५. आ० ६ परीकसूत।

६. आ० ६ चीरा काई, आ० १२ सोलहउ सा नी काइ।

७+८+६ अ० २, आ० ६ छेइ पग तलइ, आ० १२ राजा पग तलै।

१०+११. अ० २ वनक कचोली, आ० ६ कनक कचोलहि, आ० ६ कनक कचोला, आ० १२ कनक कचोली।

१२+१३+१४ अ० २, आ० ६ उरि भरो भार, आ० १२ उरि धरै भार।

१५+१६ अ० २ तुये दिन दिन हाथ फेरनेइ, आ० ६ दिन माहिं हाथ फेरै, आ० १२ हाथ न फरी।

१७ अ० २ सौ, आ० ६ दस।

यह छंद अ० २ खंड २ म २६, आ० ६ खंड २ म ३६, आ० ६ में ८७, आ० में ७६ है—

इस छंद की दूसरी और तीसरी पंक्तियां अ० २ और आ० ६ में नहीं हैं।

कनक कचोला दुनं विप हुया[1]।
विर्द थयली नवि छिवणी जाइ[2]॥
अमृत फल षाते विप हुया।
कडवी जिसी नली होइ[3]॥
मरम परायउ[4] नवि छेदियइ[5]।
तेतलउ[6] अपत[7] दुपत मार म जोइ[8]॥ ८३॥

साषण, ऊभीयइ[9] टेकि पगार[10]।
कडिहि पटोलो चूनडी सार[11]॥
काने हो[12] कुंडल झिगमिगइ[13]।
पागा[14] पाइल[15] परीप सुचंग[16]॥

---

१. आ० ६ दोनुं विप हुआ, आ० १२ कनक चोलउ दोनू विप हुआ।
२. आ० ६ नांव वावणी जाइ।
३. आ० ६ जिसा नावोलो होइ, आ० १२ कडवीम लिसी ना वोलीय होइ।
४. आ० १२ परायो।
५. आ० १२ न छेदिय।
६+७. आ० ६ ते तो अपत, आ० १२ तू अपत।
८. आ० ६ दुपत मारणिय जोइ, आ० १२ दुपत माटणि गम जोइ।
यह छंद आ० ६ में ८८, आ० १२ में ८० है। इस छंद की दूसरी और तीसरी पंक्तियां आ० १२ में नहीं है।
९. आ० १२ ऊभीछे।
१०. आ० १२ पगीर।
११. आ० १२ कडिहि पटोली सिर चूनडी सार।
१२. आ० १२ सते।
१३. आ० १२ झिगमिगे।
१४. आ० १२ पार हो।
१५. आ० १२ पावल।
१६. आ० १२ सुरंग।

हीरा जड़्या[1] मायइ राखड़ी।
मनोहर[2] सरवणति[3] बीसरा थारा चीत[4]॥
राति दिवस चलि चलि[5] धरउ[6]।
स्वामी[7] थां[8] घरा[9] छइ[10] राजा किमी[11] इद रीति[12]॥८४॥

काम गहेली[13] हे जाउ[14] निसार[15]।
नुरीय पसाणीया ऊमइइ[16] वारि॥

---

१. आ० १२ जड़ित।
२. आ० १२ मोने।
३ आ० १२ सवगनि।
४. आ० १२ बीसरी पारीव चिचि।
५+६. आ० ९ हालु हालु धरी, आ० १२ राति दिन चालु २ करै।
७. अ० २ (में नहीं है)।
८+९+१०. आ० ९ थां घरि, अ० २ नित दिन ऊगही, अ० ६ तीया घरि बोलना, आ० १२ स्वामी थारै घरे।
११. अ० २ आपु लीनती, आ० ६ आपु न राति।
१२ आ० १२ पछै रीति।

यह छंद अ० २ खण्ड २ में ६१, आ० ६ खण्ड २ में ५९, आ० ९ में ८६, आ० १२ में ८१ है। इस छंद की प्रथम ५ पंक्तियां अ० २ तथा आ० ६ में इस प्रकार हैं—

१ सोवन ऊभी टेकि कि बाड़ि।
२ रतन कुण्डल बैसिर तिलक लीलाड।
३. लाल जलागो गोरडी।
४. सोवन पायल पग झणकति।
५ रतन जड़ित सिर राखड़ी।

१३. अ० २ लावड गहेला, आ० १२ गहेलीय।
१४+१५. अ० २ हेला उठि बार, आ० १२ लाड निहारि।
१६ अ० २ आंगणइ छै, आ० ऊभाछ।

धावइ तउ सवाइ[1] गहे चालिस्यां।
तू तउ[2] घांवा चंदन चरचाइ[3] गात[4] ॥
पहर पटोली[5] चूनडी।
आड़ा[6] आविनइ[7] आपड़ी[8] वाग ॥
पोधउ[9] गाजिनइ मन तणउ[10]।
पकत साइ देइ परण्या गलइ लागि ॥ ८४ ॥
स्वामी चालण मतउ[11] धायखड सुवण[12]।
राजनइ[13] चालता वरजइ छइ[14] कुण[15] ॥

---

१ आ० १२ आज सवरै।
२. आ० ६ तो।
३ अ० २ पौल।
४ अ० २ वराइ।
५ अ० २ न आछी।
६ अ० १२ आटी।
७. आ० १२ आविनै।
८. आ० १२ पाकडी।
६. आ० १२ बोघो।
१०. आ० १२ भाजिनै मणत नो।

यह छंद अ० २ खण्ड २ में ६५, आ० ६ में ६०, आ० १० में ८२ है। किन्तु अ० २ में इस छंद की अंतिम दो पंक्तियां नहीं हैं। तीसरी पंक्ति है जो इस प्रकार है—उठी सवारा चालस्या।

छठी पंक्ति भी इस छंद की उपर्युक्त छठी पंक्ति से बिलकुल भिन्न है—
६ "गाढी रोई गोरी गलिलाई।
आठवीं पंक्ति आ० १२ में है—
"सकति वाहा देप्यारा गलिला।"

११. आ० १२ मतो।
१२. आ० १२ नौ धालौली सौण।
१३. आ० १२ राइ नै।
१४ आ० ६ वरजै, आ० १२ वरजसी।
१५. आ० १२ कौण।

पद्मउ[1] इमारउ[2] जे गुणउ[3]।
स्वामी सेव[4] दुदेली[5] अद परदेसि ॥
कुहक[6] मोर सुहामणा।
तउ तइ देसि कुंभुधीय धणाकड वेम ॥ ८६ ॥

टक्षम पाबा किम रहा नारि।
बोलिया ग्राए नइ चितइ विचारि ॥
योवणउ पाए। रहे तउ आवणउ।
मइसि[7] उगाहिरपा हीरा का पाण[8] ॥
गुहि विखपाणइ जिन रहइ[9]।
रहे तउ यदुगा आविया देपे हे नार ॥ ८७ ॥

---

१. आ० १२ पद्मो।
२ आ० १२ हमारो।
३. आ० १२ गुणौ।
४+५. आ० ६ सेवा दुदेली।
√ ६. आ० १२ कुहकै।

यह छंद अ० २ खण्ड २ में १३, आ० ६ खण्ड २ में १०, आ० ६ में ६१, आ० १२ में ८३ है—

अ० २ तथा आ० ६ में इस छंद की पहिली और दूसरी तथा चौथी और छठी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१ कुंवरी कहई सुणी सामरया राय।
२ काई स्वामी तु उलगइ जाइ।
४. यारइ छइ साठ अतेवरी नारि।
६ राज कुंवरी निति भोगवि राय।

आ० १२ इस छंद की अंतिम पंक्ति है—

√ देपि कुंभुधीय घण केरो बीस।

७. आ० १२ वेसि।
८ आ० १२ की पाणी।
६ आ० १२ रहे।

नोट—यह छंद अ० २ में ६१ है। आ० ६ में यह पुन ६२ है

उग्रत जाय की परीय अगीस ।
राजा चालवण को[1] देइ यइ[2] सीषि ॥
इणि विधि[3] राज माहे संचरे[4] ।
यइठा राजा सभा परधान[5] ॥
तिणि स[6] मीठा बोलिज्यो[7] ।
नाई साहपी[8] तूणउ[9] मान ॥
धांदीव[10] सरिसउ मति[11] हसउ[12] ।
तदइ राइ बोला इसी भीतर गोठि ॥

तथा श्र० १० में ८४ है। लेकिन इस छंद तथा इस प्रति की छंद संख्या ६१ में निम्न प्रकार है—

पंक्ति ४. उतइ पालि उगाहिस्या हीरा की घाइ।

" ५. मुझ बिन हिण तू जिन रहइ।

" ६. वेगि मिलिस्या तुझ नइ आइ।

श्रा० १२ में इस छंद की दूसरी पंक्ति नहीं है।

श्रा० १२ में इस छंद की तीसरी पंक्ति के स्थान पर है—

"गोल्यो पलिस्या आपणी।"

तथा अंतिम पंक्ति के स्थान पर है—

"वेगा अविस्या तुरीय पलाणि।"

१ श्रा० ६ नीति गति, श्र० २ कुंवरपन।

२ श्र० २ पेमउँ, श्रा० ६ घणा दीयै।

३ श्रा० ६ ईणि परि।

४. श्र० २ राज माहे परिहरई, श्रा० ६ राजमाहे वेसइयो, श्रा० ८ राज माहि गम करे।

५ श्र० २, श्रा० ६ राज चलायक अ० परधान।

६+७. श्र० २, श्रा० ६ इसासु विरोध नहुँ बोलिजइ।

८. श्र० २, श्रा० ६ नावी साहुणी, श्रा० ८ नाई साहुणी।

९. श्र० २ मुघराई, श्रा० ६ सुहणी, श्रा० ८ दोनु।

१०. श्र० २ दासी।

११+१२ श्र० २ मिण हसोउ, श्रा० ८ मति हसै।

राम जतन परि बोझिज्यो ।
काक महुवा घड नीची दिट्टि ॥

दखण आया की परीय हुसार[1] ।
राजनी[2] रीति[3] जाणि[4] पंडा मी[5] धार ॥
सुरप लोग न जाणही[6] ।
चोर जुवारी कहइ[7] साध[8] ॥
तिण स्युं[9] हसी म[10] बाझिज्यो ।
राजा जी पूछइ[11] मरम की बात ॥
झूठी साची थे मत कहइउ[12] ।
मुहडा माइड थे देज्यो हाथ ॥

यह छंद अ० २ खण्ड २ में ५६, आ० ६ खण्ड २ में ५७, आ० ६ में ६३ है। किन्तु आ० ६ में ८, ६, १० इस प्रकार हैं :—

८ सुणि रावल तु हज किया थाय ।
६ राज माहि नातोभिण्य करो ।
१० राजा तेड़ी चोपड़ी हेवि ।

१ अ० २ तोसार ।
२+३ आ० ६ राजा की नीति, आ० १२ राजानीनीति ।
४ अ० २, आ० ६ जिसी, आ० ६ जाणो, आ० १२ छै ।
५ आ० ६ पेडाकी, आ० १२ पांडानी ।
६ आ० ६ न जाणइ सार ।
७ आ० ६ अक्खर, आ० १२ अउर ।
८ आ० १२ कलाल ।
६ अ० २ ईशुरु, आ० ६ ल्याउ, आ० ६ तिणस्युं, आ० १२ सु ।
१० आ० १२ हसीय न ।
११ आ० १२ पूछे ।
१२ आ० १२ कहो ।

यह छंद अ० २ खण्ड २ में ६०, आ० ६ खण्ड २ में ५८, आ० ६ में ६४ तथा आ० १२ में ८५ है। इस छंद की अंतिम दो

कान नयणा पग दूरि हा।
स्वामी सोचइ रवि गति सांचीप वात ॥

छत्रकती काढि[1] बांधी जम दोठ।
सुधि विरमाणीय वीन्हउड्ड पाठ ॥
सेत[2] समदीयउ[3] सोरठी।
वेदी[4] करी[5] डाविम किना सिणगार ॥
आयुध ले हयवरि चड्या।
सपीउ[6] उल्लगाणा[7] चाल्या द्वार ॥

सठइ[8] तुरीय पलाणीया अंगणइ[9] माथि।
समरि[10] भवानीय चडियउ[11] बेकाण ॥

पंक्तियां आ० २ तथा आ० ६ में नहीं है। तथा आ० १२ में अंतिम दो पंक्तियां हैं—

> "कान" नैडा पग दूरही।
> स्वामी थावर बिगति सांचीप वात।

१. आ० ६ कढि, आ० १२ कढि।

२. आ० ६ से।

३. आ० ६ समदीया, आ० १२ समादियो।

४+५. आ० ६ बटी, आ० ६ परी, आ० १२ फारी।

६ आ० ६ सपी, आ० १२ सपी।

७. आ० ६ उलग, आ० १२ उलगाणउ।

यह छंद जिस प्रकार आ० २ में ८६ का दूसरा हिस्सा है उसी प्रकार आ० ६ में भी यह ६४ का दूसरा हिस्सा है। तथा आ० १२ में भी ८५ का दूसरा हिस्सा है।

इस छंद की दूसरी पंक्ति आ० १२ में है—

> 'सुधकिर मागणदीहो छै वाट।'

८ आ० १२ तठे।

९. आ० १२ आगण।

१०. आ० १२ समरि।

११. आ० ६ चढ्यो।

दहीय[1] पंङ्गावइ गोरडी ।
सव हंसि मीडव[2] दे दीन्ही[3] चाढ ।
सावय मनमाहे परहसी[4] ॥
वेग[5] चाविज्यो घण घर[6] नाइ ।

छूटीय पखाणीया बीसल राउ ।
गोरडी दीन्हीय खावीय घाइ[7] ॥
थापडीया जस ना रहइ[8] ।
नाथि करि[9] सरवर फुटी छइ[10] पालि[11] ॥
दूसह छावट[12] पाइला[13] ।
झूरतीय[14] छोडीय संभरि[15] चाल ॥

---

१. आ० १२ दही ।
२. आ० १२ चोडी ।
३. आ० १२ दोन्हीय ।
४. आ० १२ मनमाही रे हसी ।
५. आ० ६ बेगा, आ० १२ वेगा ।
६. आ० ६ घरघेरे ।

यह छंद आ० ६ में ६५ और आ० १२ में ८६ है ।

७. आ० ६ घाइ ।
८. आ० १२ रहै ।
९. आ० १२ कि ।
१०+११. आ० फुटीय पालि ।
१२. आ० १२ दूसरलीयो ।
१३. आ० ६ चाल है, आ० १२ चालउ ।
१४. आ० ६ झूरती, आ० १२ झूरती ।
१५. आ० १२ सांभर ।

यह छंद आ० ६ में ६६ तथा आ० १२ में ८७ है ।

चलउ उलगाणेउ[1] सउण बुलाय[2]।
सावण मोय बउलावण जाइ ॥
रहि न सकइ[3] पगला भरइ।
हुई दाहिणी भैरवो सउण सुचंग ॥
बउलाग्रा[4] घण पगालाग[5]।
स्वामि गइ[6] आइ नइ[7] कुसल बदाइ[8] ॥
गुढ कइ धुर राजा दाइणउ।
तुरीय डकाईयउ सँमरि राय[9] ॥

राजा जी लावइ[10] छइ चावल[11] पाल।
डावी देवरा दाइणी[12] माल[13] ॥
डावी महासती पचउ करइ[14]।
वामा[15] राजा[16] सींह सीयाल ॥

---

१. श्रा० ६ चाल्यो उलगाणो, श्रा० १२ चाल्यउ उलगाणउ।
२. श्रा० १२ सउ बुलाइ।
३. श्रा० १२ सकै।
४. श्रा० १२ बोलायो।
५. श्रा० १२ पाये लागि।
६. श्रा० १२ नै।
७. श्रा० १२ (में नहीं है)।
८. श्रा० ६ पठाइ, श्रा० १२ घणपाठवइ।
९. श्रा० १२ राउ।
यह छंद श्रा० ६ में ६७, श्रा० १२ में ८८ है।
इस छंद की ७वीं पंक्ति श्रा० १२ में है:—"गुढिकै राजा दाहिमो"।
१०. श्रा० ६ लावइ, श्रा० १२ लघया।
११. श्रा० २ पीलाहो, श्रा० ६ पारिया, श्रा० ६ पागल, श्रा० १२ चाविल।
१२. श्र० २ जीमणी, श्रा० १२ दाहिणी।
१३. श्रा० १२ चीज।
१४. श्र० २ पैसरइ, श्रा० १२ फुररै।
१५+१६. श्र० २ डावा ससा।

धामइ[1] मारग पुरखीया ।
तब[2] मुंदिय ढकाइयउ[3] संभर राउ[4] ॥

चालउ[5] उलगाणउ ऊलगीय[6] राय ।
चालइ पिरइ[7] तिहां पाखउ नाग ॥
पासिग देव दया परिठ ।
दुध पखालिस्यां धारा पाग ॥
धूप कटोरइ पायस्यां ।
भगति करेस्यां धारी दुइकर जोडि ॥
सोनारूपा की पावडी ।
उछग जाता म्हाकउ नाइ न होइ ॥

सउ सउ[8] सुखि दे गोरडी[9] बोलइ[10] पासिग नाथ[11] ।
सउष न मानइ[12] गोरी[13] थारउ[14] नाथ[15] ॥

---

१. श्रा० ६ झावीरे, श्रा० १२ धामै ।
२. श्रा० १२ तठै ।
३. श्रा० ६ मुंदावि, श्रा० १२ ढकाईयो ।
४. श्रा० १२ मरि राउ ।
छंद श्र० २ खंड २ में ८१, श्रा० ६ खंड २ में ७४, श्रा० ६ में ६८ तथा श्रा० १२ में ८६ है ।
५. श्रा० ६ चाल्यो । ६. श्रा० ६ कुलाणी ।
७. श्रा० ६ आयो ।
यह छंद श्रा० ६ में ६६ ।
८. श्रा० १२ (में नहीं है) । ९. श्रा० १२ गोरी ।
१०. श्रा० १२ बोले । ११. श्रा० १२ राउ ।
१२. श्रा० १२ माने ।
१३. श्रा० ६ भोली, श्रा० १२ (में नहीं है) ।
१४. श्रा० ६ थारो, श्रा० १२ थारो ।
१५. श्रा० १२ नाह ।

वचन विरोधी[1] नीसरइ[2] ।
तितइ उकादियउ जाइहोजाइ ॥
उव तउ[3] राषा[4] न रहइ किमइ[5] ।
ये तउ गोरडि रहउ समझा मन माहि ॥

थाइ[6] दमोदर प्रीय समझाय[7] ।
मइ पीडउ उजाग जाइ ॥
विण दोषइ मइ पीडीय ।
उण नइ वारमउ थावर वारमउ राइ ॥
उभीय मेल्हनइ चाली ।
रोवती छोडि धण चालीयउ नाह ॥

१-२ आ० १२ विरोधी नीसरै ।
३ आ० १२ (में नहीं है) ।
४ आ० १२ राप्यो ।
५. अ० १२ काहो, कउ नार हे ।
यह छंद अ० ६ में ११, आ० १२ में ६० है ।
इस छंद की अंतिम पंक्ति आ० १२ में है—
"ते तो रहि हे गोरडी समझि मन माहि ।"

६ अ० २, आ० ६ आवि ।
७ अ० २, मइसितुपाठ, आ० ६ मैठो छइ पाठ ।
यह छंद अ० २ खड २ में २६, आ० ६ खड २ में २६, आ० ६ में १०१ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में, २ से ६ तक की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—
२ पहिन वीरा म्हारा पीउ की वात ।
३. परी हो प्रयंणउ (आ० ६ पीयाणा) उपरइ ।
४ आठमउ ठाँव रवि (आ० ६ थावर) वारमउ राइ ।
५ प्रहगण (आ० ६ प्रहिगण) अनिहि (आ० ६ तिहां) भुरा ।
६ सिर धुणि गोरी मेल्हा नाह ।

रोवती बाउदी चालीयउ[1] नाह।
घूमइ मन्दिर दीन्हीय[2] घाह॥
रावण झुरवीय[3] मोर ज्युं।
तवइ मास गयी[4] सिखि पड़ीयइ थाइ[5]॥
जाहि[6] निसन्याल जेटवर[7] गाय[8]। ?
बोलइ माइज्येष्ठ परिजाइ॥

सपीय[9] सदेसीय[10] रही समझाय।
गिगुयों दे ग्रुप होइ सउ[11] नाह[12] कइ[13] जाइ॥

---

१. आ० ६ चालिउ।
२. अ० २ मेल्हेदेहधर, आ० दायै जई, आ० १२ दीधीय।
३. आ० ६ झूराइ, आ० ६ झुरली, आ० १२ झुरले।
४. अ० २ पाँच पड़ोसला, आ० ६ पाडि पाडोएस, आ० १२ में "तवइ" नहीं है।
५. आ० ६ देखवा आय।
६. अ० २ ओ, आ० १२ जिहि।
७+८. अ० २, आ० ६ करि गयो, आ० १२ ज्युँ उवइ गयी।
यह छंद अ० २ खंड ३ में १, आ० ६ खंड ३ में २, आ० ६ में १०२ आ० १२ में ६१ है।
लेकिन अ० २ तथा आ० ६ में १ली पंक्ति है—
"प्रीय बोलावै घन रोवती जाइ।"
फिर आ० ६ में ५ वीं और ६ ठी पंक्तियाँ हैं—
"सोयन स्त्री नै करि गयो।
असी रातनाउँ माणस जाय॥"
एवं अ० २ में ६ठी पंक्ति है—
"दिवस नइ रात भी चितातां जाइ।
तथा आ० १२ में ६ठी पंक्ति है—भीली नाह हुइ सुभाणि परिन जाइ।
९. अ० २, आ० पंच।
१०. अ० २, आ० ६ सखीमिलि।
११+१२. अ० २ तउमीव, आ० तोपीउ।
१३. आ० ६ किम।

पूल पगर जिउ गाहि जइ।
षपीया तेजीउ[1] सुरीय जिम उससाइ[2] ॥
मृग घरसा गोरी मोहिजइ।
मोली अचाख पाधीयउ नाह[3] क[4] जाइ ॥

सुणउ सहेलीय म्हारीय बात।
कचूउ[5] पोलि दिपाया[6] गात ॥
त्रिय चरित्र[7] मइ लप[8] कीया।
म्हरिय राउ न जाणए बात[9] ॥
सउ वडउ परि[10] भयसि पींडार[11]।
जिण दीठाँ मुनिवर[12] चलइ[13] ॥

---

१ आ० ६ रीजीउ।
२ आ० ६ चेकाण।
३ आ० ६ प्रिय।
४. आ० किम, अ० २ कु।

यह छंद अ० २ खड २ में १६, आ० ६ खण्ड २ में १८, आ० ६ में १०३, किन्तु अ० २ में ४, ५ पक्तियाँ छूटी हुई हैं, तथा आ० ६ में ४ थी पक्ति छूटी हुई है।

५. अ० २, आ० ६ चोली, आ० १२ काचूउ।
६. आ० १२ दिपाडीयो।
७. अ० २, आ० ६, लाखचरित्र, आ० १२ त्रिया चरित।
८ अ० २, आ० ६ आगइ, आ० १२ येइ लपी।
९. आ० ६ प्रकार।
१० आ० ६ पिण्ि।
११. आ० ६ थीडार।
१२ आ० ६ मुनि।
१३. आ० ६ विरचै।

गँइ वड[1] ठाकुर[2] पोखिणउ कोनिपडं माइ[3] ।
तिणि कुवथनइ सपी घण दुखी ॥
हालीयउ[4] पामउ[5] चूकउ[6] दाउ ॥

आगइ[7] मिय की वइरणि[8] मढीय पनास[9] ।
तय साधणा[10] घरि मण्डइ[11] फाम ॥

---

१. श्रा० १२ तइतउ ।
२. श्रा० १२ श्रररकर ।
३. श्रा० १२ राउ ।
४. श्रा० १२ हालीयो ।
५. श्रा० १२ पासी ।
६. श्रा० १२ हुंचूको ।

यह छन्द अ० २ खण्ड में २०, श्रा० ६ खण्ड २ में १६, श्रा० ६ में १०४, श्रा० १२ में ६२ है ।

लेकिन अ० २ और श्रा० ६ में पंक्तियों का क्रम इस भाँति है—

१ पंक्ति–इस छन्द की १ली पंक्ति ।
२ पंक्ति–अछीय चरित्र नविलहै विचार (उलपइ गँवार श्र० २) ।
३ पंक्ति–इस छन्द की ३री पंक्ति ।
४ पंक्ति–इस छन्द की २री पंक्ति ।
५ पंक्ति–नउ (तौहि श्रा० ६) यती नो म्हारो बाल हो ।
६ पंक्ति–निहचै करि मोजसी चालणहार ।

श्रा० १२ में ४थी और पाँचवी पंक्ति है—

४. मूरख राव न जाणै सार ।
५. राव वडो पणि भइसि पोदार ।

७. श्रा० १२ श्रागे ।
८. श्रा० ६ बरयणि, श्रा० १२ कू वैरणि ।
९. श्रा० १२ निवास ।
१०. श्रा० १२ साधण ("तव" नहीं है) ।
११. श्रा० १२ माहि माडीय ।

चांखिया चाडीय नइ उतरूया।
इव तउ[1] वरिसि[2] सुहावा मेह[3] ॥
नदीय वहइ[4] पीय बाहुडइ।
दूध पाणी जिमि बघइ सनेह[5] ॥

राजा छाड्या[6] गोरी[7] जेसलमेर।
छाड्या[8] टोडा[9] गढ अजमेर ॥
छाड्या सुकवि चालिला।
छाड्या[10] राणा का[11] रिणवास ॥
पाल्यो[12] वलतावी[13] बाहुड्याउ[14]।
गोरी राव गउ उतरि वनास ॥

---

१ + २. आ० ६ अवतो वरिसि, आ० १२ हिवै तूसो बरस।
३. आ० १२ हो मेह।
४. आ० १२ वहे।
५. आ० ज्युवधे स्नेह।
यह छंद आ० ६ में १०५, आ० १२ में ६३ है।
६. अ० २ छोडइछइ, आ० ६ छोडिया, आ० १२ छाड्यो।
७. आ० ६ म ली, अ० २ तोडइ नइ, आ० ६ टोडो नै, आ० १२ मोली।
८. अ० १ आ० ६ मेल्ही।
६. आ० ६ तोडा।
१०. अ० २ छाडया, आ० ६ छोडिया, आ० १२ छाडया।
११. अ० २ आ० ६ सइ भरि, आ० १२ राणीका।
१२ + १३. अ० २ एक चलावे, आ० ६ एकावलान, आ० १२ पाढ्यो
बोलावो।
१४ आ० १२ बाहुड्यो।
यह छंद अ० ७ खड २ में ७६, आ० ६ खड २ में ७३, आ० ६ में
१०७।१, आ० १२ में ६४ है।
इस छंद की अन्तिम पंक्ति आ० १२ में इस प्रकार है:—
"गोरी राव उतसिरि गया नदीय निसवास।"

गोरी रात्र उतरि गयो नहीय बनास।
नारिका जीव[1] न[2] हीयडलइ[3] सांस॥
भूयं भूती[4] हुई सुम[5] पडी।
उया सउ[6] नीर न पीवइ[7] न सँभरइ[8] बीर॥
बादल धायउ[9] चइ[10] ज[11]।
उघारउ गात उघाड़ा नइ[12] विरह्य सरीर॥
सात[13] सहेलीय वइठी[14] छइ[15] आइ।
काढ़उ[16] न पीवइ[17] उपच नीपाइ॥

१ अ० २ नाडिनू, आ० ६ जीभ, आ० १२ नासिका जीव।
२+३. अ० २ हीयउ नैं, आ० ६ नहीं हाले, आ० १२ नहियलै।
४. आ० ६ सुइ, अ० २ भी, आ० १२ ससती।
५. आ० १२ सुइ।
६. आ० १२ उवा।
७. आ० १२ पीवै।
८. आ० १२ संभरै।
६ आ० १२ छायो।
१० आ० १२ बुद।
११ आ० १२ ज्यु।
१२. आ० १२ उघिरै गात्र उघाडो नै।

यह छन्द अ० २ खण्ड २ में ८०, आ० ६ में १०७। २, आ० १२ में ६५ है।
लेकिन अ० २ में ३, ४, ५, ६ पात्तयाँ इस प्रकार हैं:—

३. धन भीभूती सुइ पडी।
४ खीर समाल्या नु पीवई नीर।
५ जाणे हाथयइ हरणी हणी।
६. आकी गात्र उघाडिज्या जोवनपूर।

१३. अ० २, आ० ६ पद्म।
१४+१५. अ० २ मिली वइठा, आ० ६ बैठीय, आ० १२ बैठी छै।
१६. अ० २ कडाउ, आ० १२ काढ्या।
१७. अ० २ पीवी, आ० १२ पीवै यथि।

दात[१] सूकट[२] पड्या[३] डावडी।
मोळी[४] तो[५] थी[६] भली दवदती हे नारि ॥
सोहू[७] नल[८] राउ[९] छोड़ी गयो[१०]।
पुरष सउ[११] नीच[१२] नहीं ससारि[१३] ॥

थे भलो सराहा द्वदन्ती हे नारि।
बारह बरस नल कीन समजहू[१४] ॥
जे चित आवहू सामरि धणी।
जायउ जे अपहछु[१५] करउ[१६] ॥
सउसउ धरणी[१७] माता छइ नइ[१८] विहार ॥

१+२+३ आ० २ दात कष्ट बँध्यो आ० ६ दर सक्ट बाँध्या, आ० १२ दत सूकड पड्या।
४ आ० २, आ० ६ (में नहीं है), आ० १२ (में नहीं है)।
५+६. आ० २ तो थी भली हुती, आ० १२ तो थी।
७+८ आ० २ नल, आ० ६ जो नल।
९ आ० ६ मेल्ही, आ० १२ राय।
१० आ० २ मेल्हे गयो आ० ६ वन गयो।
११ आ० ६ इसो, आ० १२ समो।
१२ आ० २ निगुण, आ० ६ नगुण, आ० १२ (में नहीं है)।
१३. आ० १२ कठिन ससार।

यह छुद आ० २ खण्ड ३ में २, आ० ६ खड में ३ में ३, आ० ६ में १०८, आ० १२ में ९६ है।
लेकिन आ० ६ में ३री पक्ति है —पान न पावि नैतरि नाह।

१४ आ० ६ सभाल।
१५+१६ आ० ६ आपहच करू।
१७ आ० ६ धरतीय।
१८ आ० ६ ले।

यह छुद आ० ६ में १०९ है।
लेकिन आ० ६ में छूटी हुई ४था पक्ति भी है—
दिप,इहले दुप न सहणोनाह।

तथा राउ[1] सूनइ[2] मंदिरि बइठीय आइ ।
जोवता गउखि[4] चढ़ी गुरदाइ ॥
नाह नहीं[5] देषउ[6] चिहुंदिसि[7] ।
धावइ[8] विरह संतावइ कोखइ[9] अंत ॥
जोवन गाजइ जण हसइ ।
तथा घउ[10] मंडप[11] की विधि घोखइ[12] मुहि[13] कंति ॥

हिवइ[14] राजा पहुतउ उडीसइ[15] जगनाथ ।
असीअ सहस[17] घउरासीया सीघ[18] ॥

---

१. आ० १२ तौ ।
२. आ० १२ सूनै ।
३. आ० १२ बैठी छै ।
४. आ० १२ गौखि ।
५+६. आ० ६ न देखउ, आ० १२ न देषइ ।
७. आ० ६ चिहुँ दिसइ, आ० १२ चिहुँ दिसै ।
८. आ० १२ (में नहीं है) ।
९. आ० १२ कौल है ।
१०. आ० १२ (में नहीं है) ।
११. आ० १२ मयण ।
१२. आ० घोलै ।
१३. आ० १२ मुँह ।

यह छंद आ० ६ में ११०, आ० १२ में ६७ है ।

१४. आ० १२ हिवै ।
१५ आ० ६ उड्डीसइ, आ० १२ उड्डीसै ।
१६. आ० १२ (में नहीं है) ।
१७. आ० १२ं असी, सयस ।
१८. आ० ६ राउकै साथि, आ० १२ सीष ।

जाइ घसावउ[1] गोइरइ[2] ।
मद्द[3] फूटी अरु घुर्या रैंनीसाण ॥
रावंस गुन[4] इम हंचरइ[5] ।
तब मन हरष्यउ वीसल चहुश्राण ॥

राजाजी भेटीउ राय प्रधान[6] ।
तुम्ह दिव रावउ[7] दुणउ[8] जी मान ॥
आधीय[9] चादरि[10] बइसणा[11] ।
सदस सोनीया[12] उपरि पान[13] ॥
म्हाँथी तउ[14] अडर[15] चढायास[16] ।
कहइ[17] उडीसा का परधान ॥

---

१. आ० १२ वरयाउ वइगो ।
२. आ० १२ इशरइ ।
३. अ० १२ पण ।
४. आ० १२ गुनि ।
५. आ० १२ सचरै ।
यह छंद आ० ६ में १११ आ० १२ में ६८ है ।
६. आ० परधान ।
७ आ० ६ तुम्हरि दिवारी,आ १२ तुम्हरि दिराबुजी ।
८ आ० १२ दुणौ ।
९. आ० १२ आधी ।
१० आ० १२ नामरि ।
११ आ० १२ बैसणै ।
१२ आ० १२ सौनइया ।
१३ आ० १२ मान ।
१४ आ० १२ तुठो ।
१५ आ० १२ आचर ।
१६ आ० १२ चढाय ।
१७ आ० १२ तउक है ।
यह छंद आ० ६ में ११२, आ० १२ में ६६ है ।

मन्त्र[1] पइसागर बहु विधि जाण।
निधि दिखाल्यो राय चहुआण॥
घात गुपति सवे[2] पीछवी[3]।
इधि तउ राणी भानमती नइ दीन्हा पइसारि॥
राणी श्री सामघउ[4] वीनवी।
उतउ[5] मोटउ धणी कुपइ सिणगार॥
उलग थावउ छइ आपणी।
उव तउ राणी राजमती भरतार॥

जाहि हो मन्त्री धार न लाउ[6]।
वेगि बोलावउ[7] बीसल राउ॥
मान महत देई[8] कोकिज्यो[9]।
मन्त्री भाकसुं आ नाहि आईय गम॥
करम करापति आपणइ।
धासु दीहाडउ[10] सहीय सुर्यग[11]॥

---

१. आ० १२ मंत्री।
२. आ० १२ सवि। ३. आ० १२ मिछवी।
४. आ० १२ सामलो।
५. आ० १२ (में नहीं है)।
यह छंद आ० ६ मे ११३, आ० १२ में १०० है।
इस छन्द की अन्तिम पंक्ति आ० १२ में है:—
"राजमती राणी तणो भतार।"
६. आ० १२ लाइ।
७. आ० १२ बुलावो।
८. आ० १२ दे।
९. आ० १२ लाविज्यो।
१०. आ० १२ दिहाडो।
११. आ० १२ सुरंग।
यह छंद आ० ६ में ११४, आ० १२ में १०१ है।

आवीय , मंत्री जिहा छइ राय ।
वेग पधारउ करउ[1] पसाव ॥
राणी बुलावइ थानइ रायजी ।
तव हसि चढीयउ राय चऊआण[2] ॥
साधि चउरासीया साहता[3] ।
सहस किरण जाणे उगीयउ[4] भाण ॥

भानमती दुवारिइ[5] आयीउ[6] राइ[7] ।
राणीजी[8] मन माहे कीयउ सुभाइ[9] ॥
रतन कंवला दीयउ बइसणउ[10] ।
तठइ राजा बीसल करइ छइ[11] जुहार ॥
राणी आसीस दइ राय जी[12] ।
तउ चिरंजीविजे सं परिवारि ॥

---

१. आ० ६ करीव, आ० १२ जाकरै ।
२. आ० ६ तव हसि हयवर चढयउ चहुआण आ० १२ तव हसी नै हयवर चढ्यौ चौहाण ।
३. आ० १२ सावता ।
४. आ० ६ उग्यो, आ० १२ ऊगीओ ।

यह छद आ० ६ में ११५, आ० १२ मे १०२ है । इस छद की पहिली पक्ति आ० १२ में है—"आवियो मत्री प जिहा अछै राय ।"

५. आ० १२ दुवारै ।
६. आ० १२ आवीयो ।
७ आ० १२ राउ ।
८ आ० १२ राणी ।
९. आ० १२ कियो सुभाउ ।
१०. आ० १२ वैसणै ।
११. आ० १२ करै ।
१२. आ० १२ घी राउजी ।

यह छद आ० ६ में ११६, आ० १२ में १०३ है । इस छद की अन्तिम पक्ति आ० १२ में है:—"ते चिरजीवे हो स्यउ परिवार ।"

तठइ राणी सौं पूछइ[1] गुझ की बात।
किण विधि आणीया कोस लइ मात॥
सावित्रि हमस्यु थे कहउ[2]।
म्हाचित छइ ठवण की चाउ[3]।
सामरी करिस्यां राउ की[4]
इणि[5] परि बोलइ[6] बीसल राउ॥

थाइ मति बात[7] कहउ मत राइ।
ठवण कउ मिसि[8] कहउ या[9] काइ॥
साचउ कहउ म्हासुं तुम्हे[10]।
थोकइ नवघणी सांभरि उमहइ देव॥
राज यां निक अजमेर माहि[11]।
राजा सो किउ करइ पराइय सेव॥

---

१. आ० ९ तठै राणी बूझइ छइ, आ० १२ तठै राणीजी बूझै।
२. आ० १२ सावित्रि थे हमसु कहो।
३. आ० १२ ताव।
४. आ० १२ रावली
५. आ० ९ इण
६. आ० ९ बोलियउ, आ० १२ बोलै।
यह छन्द आ० ९ में ११७ आ० १२ में १०४ है।
७. आ० ९ तुम्हि बात, आ० १२ आ तुम्हें बात।
८. आ० ९ उलग मिसि करो, आ० १२ उलिग कउ मिस।
९ आ० ९ थे कहउ कांइ, आ० १२ थे करौ।
१०. आ० १२ साँच कहौ हमसु तुम्हे।
११ आ० ९ राजा थाको बैसणो गढ अजमेर, आ० १२ राज थानिक अजमेर महूँ।

यह छन्द आ० ९ में ११८, आ० १२ में १०५ है। इस छन्द की अंतिम पक्ति आ० १२ में है:—"सो किम करै पराई सेव।"

अम्ह घरे एक छइ राजकुमार[1]।
तिणि अवसर बोलावियउ[2] अविचार ॥
तिणि पहा करि ना गिणा[3]।
उणि विसराइयउ[4] सांभर[5] देस ॥
एतलउ वचन राणी सुणउ जाम।
मत्री पइसागर पूछियउ ताम ॥
थात कही हीआ[6] तणी[7]।
म्हे सउ आइ्य करिस्या वीसलराउ ॥
छोनउ पूरवी राउ थी[8]।
जउ तुम्हि[9] मित्र[10] करउ पसाउ ॥
दुजो ठाहर[11] ना कहउ।
सउ म्हा मन हुउ उछाह[12] ॥

---

१. आ० १२ हम घरिछै एक राजा कुमारि।
२. आ० ६ बोलचव्या।
३. आ० ६ तिल अम्हे ओकर नविगण्या, आ० १२ तिणि अवसर म्हें ना गिणया।
४. आ० १२ विसराह्यो। ५. आ० १२ संभरउ।
यह छद आ० ६ म ११६ आ० १२ में १०६ है। इस छद की और दो पक्तिया आ १२ में हैं —
१. "सराह्यो तुझी सो गोरडी।"
२. "तिण म्हे उलग थीया परदेस॥"
६ + ७ आ० ६ सर्वहीया, आ० १२ हीया तणी।
८ आ० १२ छ नै पुरव्या।
९. आ० ६ ये, आ० १२ जइं तुम्हे।
१० आ० ६ मत्री, आ० १२ मत्रि।
११. आ० १२ बाहर।
१२. आ० १२ अधिक उछाह।
यह छद आ० ६ में १२०, आ० १२ में १०७ है।

सह जोषी मंत्री कहई[1] ताम ।
पढीय आलोचणी[2] बीधीय मान ॥
रूडा दिवि आणी छइ[3] परी ।
नयरी सांभरि कउ[4] रखवाल ॥
राणा भाईला[5] सारियउ[6] ।
दियइ तिलक देई पहिरायउ भूपाल ॥

तटइ राणो जी सग पीवया रियवाम ।
तिलक संजोइ नइ बीसड जी प्रान ॥
छीनउ तुरग्या राइ थी ।
राणी भाई बीसड राय पऊधाप ॥

---

१. आ० १२ करै ।
२. आ० १२ आलोचण ।
३. आ० १२ छै ।
४. आ० १२ कौ ।
५. आ० १२ भाएला ।
६. आ० १२ सारियौ ।

यह छंद आ० ६ में नहीं है। आ० १२ में १०८ है। इस छन्द की अंतिम पंक्ति आ० १० में है :

"तिलक देनै पहिरायो भूपाल।"

यह छंद आ० ६ में नहीं है।

डा० माता प्रसाद जी गुप्त के मतानुसार यह छंद प्रक्षिप्त ज्ञात होता है क्योंकि वे कहते हैं कि "इस प्रकार बीसलदेव का सत्कार करने पर वह "उलगाना" मात्र न रह जाता और न पीछे ब्राह्मण के कहने पर उसकी अपरिचित के रूप में खोज की आवश्यकता पड़ती।" दे० बीसलदेव रास परिशिष्ट पृ० २१६।

हुया[1] उतारइ[2] राइ पहुमाए।
पउखि परिघम सयी[3] दीयउ मेल्हाय ॥
साथि वइरागर गंत्रि छइ[4]।
थंभण भाट करइ वधाय ॥
घउरास्या सहि हरषीया।
मन[5] हरष्यउ[6] चीसब चहुआण[7] ॥

जे तल्उ[8] परच राजा तणइ[9] होइ।
भानमती राणी पूरवइ सोइ ॥
लूण कपूर सवे सहू।
नवकर[10] कापड़ा साम्हू घोर ॥
घउरास्या नइ जू जू थ्या।
वहिखो मनि बधावइ वीर ॥
कारणम करिउयो परच की।
तउ तत सांभरि धणी छइ म्हाकउ वीर ॥

---

१. श्रा० १२ हउ।
२ श्रा० १२ उतारउ।
३. श्रा० १२ पश्चिम पौलितणी।
४ श्रा० १२ छै।
५. श्रा० १२ मनि।
६. श्रा० १२ हरष्या।
७. श्रा० १२ चौहाणा।
यह छंद श्रा० ६ में नहीं है। श्रा० १२ में १०६ है।
८. श्रा० १२ जेठला।
६. श्रा० १२ तणौ।
१०. श्रा० ६ नवरंग।
यह छन्द श्रा० ६ में १२१ है। श्रा० १२ में इस छन्द की प्रथम पंक्ति नहीं है जो इस प्रति की छंद सख्या ११० के साथ संलग्न है।

छाडवी गियइ न लावड।
देवता[1] मंदिर[2] होइ[3] मसाण॥

माह मास हूगीव[4] पडय रि[5] ढार[6]।
दाधी[7] पइ वनदंड चौथी छार[8]॥
आव[9] दहता जग[10] दलो[11]॥
म्हारा चोळडी[12] माहि थी[13] दाधा[14] साख॥
धणीय विहूणाँ[15] बग ताकिजइ।
वेगा[16] आविस्यो[17] करइ[18] पलाणि[19]॥

---

१ अ० २ कविपक, आ० ६ किएक।
२ अ० २ भूपड़ा, आ० ६ कूबड़ो।
३ आ० ६ हुआ, आ० १२ हुआ।
यह छंद २ दाह ३ में १०, आ० ६ गह ३ म ६, आ० ६ में १२४
आ० १२ में ११२ है।
लेकिन अ० २ और आ० ६ में ५ वीं पंक्ति है —
छाडवी धूपनू (आ० ६ न) आलगई (आ० ६ आलगैं)।
४ अ० २, आ० ६ सिव, आ० ६ सीद, आ० १२ मासैसो।
५+६. अ० २ पड्यो अतिसार, आ० ६ पड़े अपार, आ० ६ ढटार,
√ आ० १२ ढढार।
७. आ० ६ दाधा, आ० १२ दाधा।
८ आ० ६ धार, आ० १२ हुआ छै छार।
६ अ० २ आ० ६ आक।
१०+११ अ० २ वनदहा, आ० ६ वन दहै।
१२ आ० ६ चोलीय, आ० ६ काचली, अ० १२ म्हार चौलीय।
१३+१४ आ० ६ थकी दाधा जी, आ० १२ थी दाधा छै।
१५ अ० २ धणीय न तका, आ० ६ धणीय थका।
१६. अ० २ वेगो।
१७ अ० १ घर आवि।
१८+१६ अ० २ तुरीय पलाणि।

जीवन छम उमाहियउ[1]।
म्हारी कनक[2] काया म्हारे फेरयौ[3] आय[4] ॥

फागुण करहइ[5] पवीया रुत।
चिग्रह[6] चमकीयउ निसि[7] नींद न भूप ॥
दिन रायां[8] रति[9] पालिट्या[10]।
चिहु दिसि फिरहर्‍या[11] वाउना वाह[12] ॥
जिम[13] धन तिम जोवन[14] सही।
म्हांकउ भूरप राउ न देपै आइ ॥

---

१ अ० २ उचाईसउ, आ० ६ उपाडियो, आ० ६ उछाईयउ, आ० १२ उचाइया।

२. अ० २ इणिकत, आ० ६ कनक।

३+४. अ० २ फेरीछइ आण आ० ६ फिर गई आण, आ० १२ माहि पारबीम आण।

यह छुद अ० २ खड ३ में ११, आ० ६ खड ३ में १०, आ० ६ म १२५, आ० १२ म ११३ है।

लेकिन अ० २ और आ० ६ में २री पक्ति है—"जगथल महीव सहू (वन आ० ६) कीया छार और आ० ६ म छठी पक्ति है—"तुरी पल्हाणी वेगि धरि आवि।"

आ० १२ में ३ री और ५ वीं पक्ति नहीं है।

५. आ० २, आ० ६ परकया, आ० ६ फरइ, आ० १२ फरहर्‍यो।

६ आ० ६ चितिहि, आ० १२ चित्त।

७. आ० १२ में नहीं है।

८. आ० २ दिण परणौ, आ० ६ दिणीयर, आ० १२ दिनहराया।

९+१० आ० २ दिस पालटइ, आ० ६ विदिसि पालट्यौ, आ० ६ दिन पालिट्या, आ० १२ रित पालट्या।

११. आ० ६ फरहर्‍या।

१२ आ० ६ वाउ. आ० १२ वाउ।

१३. आ० १२ किम। १४. अ० २ जुहै।

यह छुद अ० २ खड ३ में १२, आ० ६ खड ३ में ११, आ० ६ में

चालियउ[1] उछलाणउ[2] कातिग मास।
छोड्या[3] मंदिर थरि[4] क[ि]लास॥
छोड्या[5] चउरा[6] चउपड़ी।
मड़इ पंथिरि नवय गमाड़्या रोइ[7]॥
भूप गइ[8] त्रिय[9] उचटी[10]।
कहि[11] सखी[12] नींद किसी परि[13] होइ॥

मग सिरोय[14] दिन छोटा रे[15] होइ।
सपीय सदेस न पाठवइ[16] कोइ॥

---

१. अ० १ चालीवो, आ० १२ चाल्यो।
२. अ० २, आ० ६माथ तो, आ० १२ उलिगाणी।
३. अ० २, आ० ६ सूना।
४. आ० १२ गिरि।
५. अ० २, आ० ६ सूना, आ० ६ चउढ्या।
६. आ० ६ चोरा, आ० १२ चौबारा।
७. अ० २ खाई, आ० ६ खोय।
८. अ० २, आ० ६ नहीं।
९. आ० ६ तइ।
१०. अ० २ ऊछली, आ० ६ सो छुटी, आ० ६ अउचटी।
११ + १२ अ० २ उणी घड़ी, आ० ६ तिहा घटी।
१३. अ० २, आ० ६ नींद कहाँ थी।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ८, आ० ६ खंड ३ में ७, आ० ६ में १२२, आ० १२ में ११० है।

इस छंद की अंतिम दो पंक्तियाँ आ० १२ में नहीं हैं।

१४. अ० २ आघणकर, आ० ६ आगैं तो, आ० १२ मगसिरीये।
१५. आ० ६ छोटडो।
१६. अ० २ मोकलोऊ, आ० ६ मोकल्यो, आ० ६ पाठव्यो, आ० १२ सदेसा हीन पठावै।

संदेसा ही वज्र[1] पडी[2]।
उचा[3] परबत नीचा रे[4] घाट॥
परदेसइ रि भुइ[5] गया[6]।
चीरी हो नावइ[7] नवि चलइ बाट[8]॥

दिप सपी द्रिव लागउ हे पोस।
धण मरतीय कोई[9] मत दीयउ[10] होस॥
दुप दाबी[11] पजर हुई।
धान[12] न भावइ[13] ना सिरि[14] न्हाण[15]॥

---

१ + २ अ० २ बज्जपड्यो, श्रा० ६ बज पडो, श्रा० ६ बीज पडी, श्रा० १२ कराडी।
३ श्रा० ६ लगीया, अ० २ लाग्या, श्रा० १२ ऊचै।
४ अ० २ दुर्घट श्रा० ६ विसमा, श्रा० ६ नीचा, श्रा० १२ नीला लघीया।
५ अ० २ भूमि, श्रा० ६ भोमि।
६. श्रा० ६ पड्या।
७ अ० २, श्रा० ६ आवइ, श्रा० १२ नावै।
८. श्रा० ६, न चालइ बाट, श्रा० १२, न चाले वाट।

यह छंद श्र० २ में ६, श्रा० ६ खंड ३ में ८, श्रा० ६ में १२३, श्रा० १२ में १११ है।

९. अ० ६ मरती मोहि, श्रा० ६ मरै तो कोइ, श्रा० १२ मरती कोई।
१०. अ० २ मति लपउ, श्रा० ६ भिणदीयो, श्रा० ६ मत दियो, श्रा० १० दियो।
११ अ० २, श्रा० ६, दुपभोनी।
१२ श्रा० ६ मो अन्न, श्रा० १२ मोहि अन्न।
१३. अ० २ भावई, श्रा० ६ न भावि, श्रा० १३ भावे।
१४ + १५ श्रा० ६ निसभरा, नाद, श्रा० १२ सिर न्हाण।

चैत्र मास चतुरंगी हे[1] गोरि।
कांइ पिउ औविमद किसउं[2] गमारि॥
कंचू[3] भींजय जण दरगइ।
सात[4] सहेलीय[5] बइठी धूइ थाइ॥
खलड सपी खावे[6] पेलण[7] जाइ[8]।
आज दीस[9] सु[10] काल्हे नहीं[11]॥
म्हे फड हेली[12] पेलण जाइ।
रडगाला थी हे गोरडी॥
✓ म्हांकी[13] आगुली[14] कादता[15] निगलउय[16] थाइ॥

१२६, आ० १२ में ११४ है। किन्तु अ० २ में चौथी और छठी पंक्तियां हैं—

४. सूरय लोचन जाणइं सार।
६. सपी थाव फरकती (आ० ६ फरकै) जाइ (आ० ६ गयो) संसार।

और आ० ६ में तीसरी पंक्ति है—

जउ जोवन तो वन सपी।

१. आ० ६ हे तुरंगी।
२. अ० २ कवण, आ० ६ किसै, आ० १२ किसै।
३. अ० २ चूडे, आ० ६ चूडली, आ० ६ कंचुउ।
४. अ० २, आ० ६ पंच।
५. अ० २ सपी, आ० ६ सपी मिलि, आ० १२ सहेलीय लीय।
६. आ० ६, अ० २ होली।
७+८. अ० २ खेलवा जाई, आ० ६ खेलवा जाय।
९. आ० ६ दिवस, आ० १२ जदीसे।
१०+११. अ० २ ते ईकदिन माइ, आ० ६ ते कालि नहीं, आ० ६ सो कालिह नहीं, आ० १२ सो काल्हे नहीं।
१२. आ० ६ म्हे किउं हे गहेला, आ० १२ म्हे क्यु हे गहिलीय।
१३+१४+१५. अ० २ म्हाकी आंगुली देखता, आ० ६ आंगुली देतां, आ० ६ म्हाकी आगुली।
१६. अ० २ गिलजे, आ० ६ गलसी।

वइसाप[1] घुरि[2] लुणिजइ[3] धान ।
सीला पाणइ[4] घरु[5] पाका जी[6] पान ॥
कनक काया घट सीचिजइ ।
म्हाकउ[7] मूरष राउ न[8] जाणइय सार ॥
हाथि आगामी राजयउ ।
उतउ[9] ऊभउ[10] सेवइ[11] राज दुवार ॥
देषि सपी द्विव[12] लागउ[13] छंइ[14] जेठ ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में १३-१४ आ० ६ खंड ३ में १२, आ० ६ में १२७, आ० १२ मे ११५ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में ४ और ५ के बीच की पंक्ति है:—दंत कवाड्या नइ नइ रंग्या। और अ० २ में ५ और ६ के बीच निम्न पंक्तियाँ हैं:—

"सषी सहेली कछूईक बात ।
म्हारइ फरकइ छइ दाहिणो गात ॥"

इस छंद की तीसरी पंक्ति आ० १२ में नहीं है।

१. आ० ६ वैसापा, आ० १२ वैसाषै ।
२. अ० ६ सषी, आ० १२ घरि।
३ अ० २ ल्हसुजै, आ० ६ लुणिज। आ० १२ लुणिजै।
४. आ० १२ सीसा पाणी।
५+६. आ० २ पाका, आ० ६ नइ पाका, आ० ६ हो पाका, आ० १२ पाका हो।
७. अ० २ आ० ६ (में नहीं है)।
८. आ० ६ नाह।
९+१०. अ० पाइकइ, आ० ६ ऊमउ, आ० १२ ऊमा।
११ आ० १२ सेविरयैं।

यह छंद अ० २ खंड ३ में १५, आ० ६ खंड ३ में १३, आ० ६ में १२८, आ० १२ में ११६ है।

१२. आ० २ आ० ६ (में नहीं है) आ० ६ नदिवइ।
१३+१४. आ० ६ लागो, आ० ६ लागो, आ० ६ लागो है आ० १२ लागो।

गुद गुणखाणा सुकि[1] गया[2] होट ॥
माम दिवस सारण[3] सब[4] ।
पण वट घालि न त्यावइ पाउ ॥
ममघ[5] जखइ[6] घण[7] पर नत ।
हंस सरोवर छंडि गयउ[8] ठाउ[9] ॥

आमादइ पुरि वाहुड्या[10] मेइ[11] ।
पखिहरणा पाख[12] नइ[13] घडि गई पेइ ॥
अइ रि[14] आसाइ न आवही[15] ।
माता दे मईगलजिड पग देई ॥

---

१ + २. अ० २ अब पूकइ छुइ, आ० ६ नइ सुका ।
३ + ४. अ० २ सपी लू मइइ, आ० ६ सारथि घदइ ।
५. अ० २ अन, आ० ६ अगनि ।
६. आ० २, आ० ६ चढ़ाई ।
७. आ० २ दव, आ० ६ घन ।
८ + ९ अ० २ घाहर छुइ ठाम, आ० ६ छोड्या ठाम आ० १२ तुभ्को गयो ठाउ ।

यह छुद अ० २ खड २ में १६, आ० ६ खड ३ में १४, आ० ९ में ११९, आ० १२ में ११७ है। लेकनि अ० २ और आ० ६ में चौथी पक्ति है:—

"घरती पावन देखो जाय ।"

तथा अ० २ में तीसरी पक्ति है—

"सनेहा सारण चढ़ई ।"

१० + ११ अ० २ आ० ६ घहूकिया ।
१२ + १३. अ० पाल्या, आ० १२ पालने ।
१४. आ० २ आ० ६ अजी ।
१५. अ० २ आ० ६ न माहुइडूयउ, आ० ९ नावीया, आ० १२ आवीयो ।

सब मत साखा[1] जैं हुलई[2]।
तिहि घर उजग काइ करेइ[3] ॥

सावण बासइ घइ छोडीय[4] भार।
पीय विण जीविजइ किसइ[5] आधारि ॥
सह को[6] खेलइ[7] कामणी।
सउद[8] चोटीय[9] कमेठीय पंडिया[10] जाल ॥
बाबीहा[11] पीय पीय करइ।
मोनइ[12] असण[12] लावई[13] सावण मास ॥

---

१. अ० २ आ० ६ सदी मतवाला।
२ अ० २ ज्यु घलई आ० ६ घुरे जिड।
३. अ० २ काई घेरस सते, आ० ६ काइ करेस।

यह छंद अ० २ खंड ३ में १७, अ० ६ खंड ३ में १५, आ० ६ में १३० आ० १२ में ११८ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में उपर्युक्त छंद की ३ और ४ के बीच निम्न पंक्तियाँ और हैं:—

१. 'कोइल बोलइ छइ अंबकी डाल।
२. मोर टहूकइ सवी डूंगरा।"

इस छंद की पाचवीं पंक्ति आ० १२ म नहीं है।

४ अ० २ छाडीय, आ० १२ छोटीय।
५ अ० २ कवण, आ० १२ किसै।
६. अ० २ सवीयते, आ० ६ सही समाणी, आ० १२ सहुको।
७. आ० ६ रमइ, आ० १२ पेलै।
८ अ० २ आ० ६ (में नहीं है)।
९. आ० ६ पलेरूद।
१०. अ० २ मंडिय, आ० ६ माडो।
११. अ० २ पपीहा, आ० ६ बापहियो आ० बाबहिया, आ० १२ बाबीहो।
१२. अ० २ असलउ, आ० ६ असलास।
१३. आ० १२ लजावै।

यह छंद अ० २ खंड ३ में १८, आ० ६ खंड ३ में १६, आ० ६ में १३१, आ० १२ में ११६ है।

भाद्रवइ[1] वरसइ गुहिर गभीर।
जलथल महियल[2] नहि मर्‍या नीर ॥
जाणि कि सायर उछट्यउ।
निस[3] अंधारी[4] बीज[5] पिवाइ[6] ॥
दादल[7] धरहरी स्यं[8] मिरूया[9]।
दुइ दुय[10] नवइफ[11] सहया राइ ॥
धामीजइ धण मंदिया आस।
धवल्या[12] मंदिर[13] घर[14] किणलास ॥

---

१. आ० १२ भाद्रवे।
२. अ० २ मगैहर, आ० १२ महिअल।
३ + ४. अ० २ एक अधारी, आ० ६ रैण अंधारी।
५ + ६. अ० २ बाच खीवाइ, आ० ६ वरसइ मेह।
७ आ० ६ सपरजो।
८ आ० ६ घरती है।
९ आ० ६ नीसरूया, आ० १२ अविराम।
१०. आ० ६ प दुय।
११. आ० ६ कि, आ० १२ कु।

यह छंद अ० २ खंड ३ में १६, आ० ६ खंड ३ में १७, आ० ६ में १३२, आ० १२ में १२० है। किन्तु अ० २ में ५ वीं पंक्ति है—
"मुनी सेज विदेश पिव।"
और आ० ६ में निम्न दो पंक्तियाँ उपर्युक्त खंड की ५वीं पंक्ति के बाद हैं.—
१. "मूरख राउ न देयइ धी आइ।
२. हूँती गोसामी नइ एकली ॥"
आ० १२ में इस छंद की ५वीं पंक्ति नहीं है।

१२ आ० ६ घर।
१३. आ० ६ लीध्या।
१४ आ० ६ माड्या।

पवल्या[1] चउरा[2] चउदंसी ।
तवधण धवलया पडक्ति पगार ॥
हरिष[3] चढी हरषी फिरइ ।
अब[4] घरे[5] आविसी[6] मुंधि[7] भरतार ॥

बारहमास वउलाविया नारि ।
देव मेलउ दीयउ कइ धणि मारि ॥
सूकि पाकि पंजर हुई ।
जिम भमर पुरदर केतकी वास ॥
तिम मोरइ[8] प्रीय[9] गम कीयउ[10] ।
सेज वीसारी गोरी आरालि ॥

---

१. आ० ६ माडी, अ० २ माड्या ।
२. आ० ६ चोरा ।
३. आ० ६ हरष ।
४. आ० १२ इब ।
५. आ० १२ घरि ।
६. आ० १२ आवसी ।
७. आ० १२ मुघ ।
यह छंद अ० २ खड ३ में २०, आ० ६ खड ३ में १८, आ० ६ में १३३, आ० १२ में १२१ है ।
लेकिन अ० २ में ४, ५, ६, है —४. म्हाइया सामरिका रणिवास ।
५. एक चलावै चाहट्या ।
६ नाइ उतरि गयौ गगा के पार ।
और आ० ६ में ४ और ६ है:— ४ दणविर माह्या जिम पलटाय ।
६. कमारा धणी राय ।
तथा आ० १२ में २री और ३री पक्तिया नहीं हैं । ५वीं पक्ति है:—
"गोपि चढी हरपै फिरै ।"
८. आ० १२ मारै ।
९. आ० १२ प्रिउ । १०. आ० १२ कीयो ।

ऊभी हो साधण विलखिलइ।
मइ राउ[1] दुपि पहलाविया पारह मास ॥

धुरिद्दि[2] सायाळउ[3] डरहरिउ[4] माह।
पिण पहूकता धण छीयउ[5] मनाह ॥
दिन छोटा निसि आगली।
मइ घड आपन्या ताला दीधी ॥
चित बयरा स[6] मोकल्यउ[7]।
सीप ना काइ राइ न[8] दीघ ॥

असी जनम कसइ दीयउ रे महेस।
अवर जनम थाइ धण रे[9] नरस ॥
×वनिह[10] सिरजी रोझडी[11]।
धविहिन[12] सिरजी धवळीय[13] गाइ ॥

---

१ आ० १२ तोहु।

यह छन्द अ० २, आ० ६ तथा आ० ६ में नहीं है। आ० १२ में १२१ है। लेकिन आ० १२ में २री और ७वीं पंक्ति नहीं है।

२ आ० १२ धुरिह। ३ आ० १२ सायाळी ४ आ० १२, उलहर्‌यो।

५ आ० १२ लउ।

६ + ७ आ० १२ मु भेलीयो।

८ आ० १२ नै।

यह छन्द अ० २, आ० ६, आ० ६ में नहीं है। आ० १२ में १२२ है। लेकिन आ० १२ में ४थी पंक्ति नहीं है।

९ अ० २ घडा हो, आ० १२ घणा।

१० अ० २ रानह।

११ अ० २ हिरणली।

१२ अ० २ सूरहन, अ० ६ साहान, आ० १२ घहन।

१३ अ० २ धीणु, आ० १२ भरली।

चनिन[1] सिरजी कोइली । -
दुउ[2] बइसंती[3] आवानइ[4] चपाकी डाल ॥
भपती दाय बिजोरडी ।
तइ तउ काइ[5] सिरजी उलगाणा की नारि ॥१३४॥

आजणी काइ न सिरजो करतार ।
पेत कमावती स[6] भरतार[7] ॥
पहिरण आछी छोवडी ।
तुंग तुरा[8] जिम मोडती गात्र ॥
साइ लेती सामुही ।
हसि हसि बूझति पोइ[9] की बात ॥१३५॥

---

१. आ० १२ चनदन ।
२. आ० १२ द्यु ।
३. आ० १२ वैसती ।
४. आ० १२ आवानै ।
५. आ० १२ तौकित ।

* यह छंद अ० २ खाड ३ में ४, आ० ६ खाड ३ में ५, आ० ९ में नहीं है, आ० १२ में १२३ है ।

६ + ७ अ० २ जाट ज्यु, आ० १२ स्यु भरतार ।
८. अ० १९ तुरिय । ९. आ० १२ पीउ ।

यह छंद अ० २ खाड ३ में ३२।२ है, आ० ६, आ० ९ में नहीं है । आ० १२ में १२४ है ।

अ०२ में ये सात पंक्तियाँ हैं —१. भूली है वइदनडी हणै बीसास ।
२. हूँ नीर छाण्यू ओलगि जास ॥
३ चरमती थाय रसावती ल्याइ ।
४. अंकन कुवारि रहती रुपी ॥
५ ओढण लोवडी पाग्ती भाड ।
६ यह पंक्ति उपर्युक्त छंद की २री पंक्ति है ।
७. मई काइ सिरजी उलिगाणा घरि नारि ।

एक वणजारउ ऊभा जाइ।
एक विणजारइ विणज[1] कराइ ॥
एक आहेडीय वन भमइ[2]।
म्हारउ नाण्हडउ[3] नाह की सुगुणी है[4] नारि ॥
म्हा घरि छांडि विदेस गउ।
वेउ[5] म्हा[6] जोडीय न[7] निरजीव कोइ करतार[8] ॥
आठ पहर उचाट माहि।
तिण दुखि धण पजर[9] हुई ॥१२६॥

असीय मास की बुडइ[10] वेणि।
देह पडया[11] सिर पांडुरा केस ॥
आइ आरासइ संवरी।
गलि[12] लागइ अइ[13] रूदन करेवि[14] ॥

---

१. आ० १२ एक वणजारो वणज।
२. आ० १२ भमै।
३. आ० १२ नान्ह।
४. आ० १२ सुगुणीय।
५. आ० १२ (म नहीं है)।
६. आ० १२ म्हानै।
७. आ० १२ जोडिनइ।
८. आ० १२ (में नहीं है)।
९. आ० १२ में 'पजर' के पहले 'झुरि' है।
यह छंद अ० २, आ० ६ आ० ६, में नहीं है। आ० १२ में १२५ है। लेकिन ५वीं और ७वीं पंक्ति इसमें भी नहीं है।
१०. अ० २ दो बूढ़ि, आ० ६ बूढ़ी।
११. आ० ६ ग्या।
१२ अ० २ गलइ।
१३. अ० २ नै,
१४ अ० २ कराई, आ० ६ पड़ाय।

किम दिन काढइ भाणिगी।
राति दिवस मोनइ[1] धारीय चींत॥
जेतइ थाउइ संभर धणी[2]।
तेतइ चंचल पाडव करउ पे मीत॥१३७॥

घात न मानीय[3] चालीइइ[4] उठि।
पाटलस छे[5] मचकाइयउ[6] पूठि॥
दात[7] पाडु[8] दाढी[9] कुटियो।
हउ तउ कोकउ[10] देवर अरु[11] वडउ[12] जेठ॥
गाल फाडावउ धारा गजसमी।
काटे[13] नाक[14] सरीसा[15] होठ॥१३८॥

---

१. आ० २ मौ, आ० ६ मेरे।
२. अ० जइ करउ,
    यह छंद अ० २ खड ३ में २१, आ० ६ खड ३ मे १६, आ० ६ में नहीं है। आ० १२ म नहीं है।
    लेकिन अ० और आ० ६ में ५वीं, ७वीं तथा ८वीं पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—
    ५. किम भव नीगमसि कामिणी (आ० ६ लोहोडकी)।
    ६. फहाउ हमारउ जे करइ (आ० ६ सुणइ)।
    ७ तोहि नइ कइ (आ० ६ तोहिनीको) सो पटवो (आ० ६ सोपा- डीयो)। करि देउ (आ० ६ करिदीयउ) मीत।
३. आ० ६ एतो कही नै, अ० २ इतोकहे जब। ४. आ० १२ चालीय।
५. अ० २ ले पाटो अरि, आ० ६ दोय पाटा सुं, आ० १२ लेपाटो।
६ अ० २ पटको छइ, आ० ६ माइरी, आ० १२ मचकाइय।
७ + ८. अ० २ नाक पाट फडाउ।
९. अ० २ हूँ, आ० ६ (में नहीं है)।
१०. अ० २ तेतू, आ० ६ तेडो, आ० १० कोकुं।
११ + १२. अ० २ आरी, बडो, आ० १२ अरु वडौ।
१३ अ० २ ऊपलो, आ० ६ उपलै, अ० १२ काढु।
१४ + १५. आ० ६ ताक सरीसा।

घणरणी धाछणी गयरुइ[1] मोडि।
पान परंता[2] तणी मानदी पोडि॥
सीजपंगा तणी मारिपी।
मोखइ छइ[3] पइ पइ[4] जिमट[5] मोट[6]॥
मारइ पइ सइ कोपुलाउ।
तुरइ हम तिरिप न रवि तखइ दीट॥१२६॥

देमझी कूपीली[7] मइण की गूद।
तापण उमीछइ[8] मत्त गयंद॥
चउधारा की चउदंडी।
तठइ पवन[9] न वाजइ न तपइ सूरि॥

यह छंद श्र० २ खंड ३ में २३, श्रा० ६ खंड ३ में २२, श्रा० ९ में नहीं है। श्रा० १२ में १२६ है।
लेकिन इसकी ६ठीं पंक्ति श्र० २ और श्रा० ६ में इस प्रकार है:—
"कहुं जीम जिण बोलियउ।"
कयुं (श्रा० ६)।
श्रा० १२ में ३री पंक्ति नहीं है।

१. श्रा० १२ मचरकै।
२. श्रा० १२ कहिता।
३. श्रा० १२ बोलैछै।
४. श्रा० १२ जेहवउ।
५. श्रा० १२ वचन।
६. श्रा० १२ मुमीठ।

यह छंद श्र० २, श्रा० ६ और श्रा० ९ में नहीं है। श्रा० १२ में १२७ है।
लेकिन पंक्ति ३, ५ और ६ नहीं है।

७. श्र० २ कुपी, श्रा० ६ कूंपी राश।
८. श्र० २ समरई जिम, श्रा० ६ समरैरि।
९. श्रा० २ वाव, श्रा० ६ वाय।

बादल छायउ[1] चंद जे[2]।
उग्गिउ गात उघाडइ लिखइ सनूर ॥१५०॥

पहासू कउइ पडु परि माहे[3] भाइ[4]।
चदरइ[5] मोंढइ तिरेसो राह ॥
चद पुलिंदा[6] मनि[7] गपउ।
दूध जिम ढपरइ मनारि कइ परि ॥
डलगाण्डा की पोरडो।
बारउ नाइ[8] उडीलइ घणा[9] गढ अजमेर ॥१५१॥

---

१ आ० ६ छायो।

२. आ० २, आ० ६ चन्द्रमा।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ५३, आ० ६ खंड ३ में ५० है।
आ० ६ आ० १२ म नहीं है।
लेकिन इसकी अंतिम पंक्ति अ० २ और आ० ६ में है—
"औकी गात (आ० ६ उवाका) उघाड्या (आ० ६ घन माहे)
जाचनूर।"

३ आ० ६ भीतर।

४. अ० २ आव आ० १२ आव।

५. आ० ६ चांद कइ, आ० १२ चद कै।

६+७ आ० ६ पूलतो मनी, आ० १२ पुलिंदा मनि।

८ अ० २ राव, आ० ६ राय।

९. अ० २ तु, आ० ६ मैनू

यह छंद अ० २ खंड ३ म ५४, आ० ६ खंड ३ में ५२, अ० १२ में १८ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ म चौथी और पाँचवीं पंक्तियाँ हैं—

४ खीर (सोना आ० ६) को तौलड़ी (पकुड़ी आ०६)
कु (किहा-आ० ६) रहइ सेर।
५ बणी थाका घण ताकजइ।

आ० १२ म चौथी पंक्ति है—
"दूध न छुटै मजारह फंदि।"

दिन[1] गिणंता नह[2] घसया[3] ।
म्हारी[4] काम उडावता थाकीय[5] बाह ॥१४३॥

पंह्या जइ तूं पावउ[6] पीव कइ देसि ।
हउं रि कहउं स्वामी[7] तिउ रि कहेसि[8] ॥
एक थारा[9] घरे[10] आवियो ।
थारी घाट सुहारी सिर का केसि[11] ॥
जोबन भरि जल ऊलटयउ[12] ।
थाग न पावै[13] धरह नरेस[14] ॥१४४॥

---

१. अ० २ आंगुली, आ० १२ दिन दिन ।
२ अ० २ दिन, आ० ६ म्हारा नह ।
३. अ० २, आ० ६ गया ।
४ अ० २, आ० ६ (में नहीं है) ।
५. अ० २ दूबइ छइ, आ० ६ दूषि ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ३३, आ० ६ खंड ३ में ३०, आ० १२ में १३० है । लेकिन आ० १२ में चौथी पंक्ति नहीं है ।

६ अ० २ पाडयो चाल्यो ओका, आ० ६ पाहीया चालिया, आ० १२ पाह्या चालिवु ।
७ अ० २ हूँ कहूँ बीरा ।
८ अ० २ सोई कहे ०, आ० ६ असू करेस ।
९ अ० २ सारा ।
१० अ० २ घरि, अ० १२ घरि ।
११ अ० २ वेस आ० ६ सिरहं कै वेस, आ० १२ सिरह कै वेस ।
१२ अ० २ चिरह महाजल ऊलटई आ० ६ भरयो महा जलहि, आ० १२ थागन पावउ ।
१३. अ० २ थाग न पावइ, आ०६ बागन पायु, आ०१२ थागन पावउ ।
१४. अ० २ मुघ नरेश, आ० १२ धरा नरेस ।

यह छंद अ० २ खण्ड ३ में ३०, आ० ६ खंड ३ में २८, अ० १२ में १३१ है । लेकिन अ० १२ में दूसरी पंक्ति नहीं है ।

चालो[1] हो पथीय तुम्हारडउ[2] जांघ ।
कठिन पयोहर तिजयउ[3] पराय ॥
चालयउ[4] जोवन धिसि गयउ[5] ।
जोवन सिर धाधीया नेत[6] ॥
जिय बांध्या रावण पिरथंड ।
थोय कारणि रामि[7] बंध्यउ सिर सेत[8] ॥१४७॥

यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ८ में नहीं है । आ० १२ में १३२ है ।

१. अ० १२ चालुं ।
२. आ० तुम्हारी ।
३. आ० १२ तज्या ।
४. आ० १२ चालउ ।
५. आ० १२ गयो ।
६. आ० १२ नैन ।
७. अ० २ अस्त्री गेली राम, आ० ६ अस्त्री लगि राम, आ० १२ त्रिया कारणि रामि ।
८. आ० १२ बंध्यो सरास ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ५१, आ० ६ खंड ३ में ४८ है, आ० ८ (में नहीं है) । आ० १२ में १३३ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में इसकी प्रथम ५ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

१. वेगि (दयाकरि-आ० ६) मया करि तू घर चालि ।
२. कठिण पयोहर छाड छइ (छोडीया-आ० ६) ठामि (वाम-आ० ६) ।
३. सिपर ते (जइ आ० ६) धरती रहइ (है-आ० ६) नीम्या (नम्या-आ० ६) ।
४. अंचला असुर असती (तेउसमा-आ० ६) (अचेत-आ० ६) ।
५. एक सरो घार आवजू (आविज्यो-आ० ६) ।

आ० १२ में ५वीं पंक्ति नहीं है । लेकिन एक पंक्ति और है:—

"नाकसउ पहिली पंचासथी ।"

बाल हो[1] स्वामी थारउ[2] जाव।
दुइ[3] काया मिलउ[4] एक पराण॥
ता किम दूरइ छांडि जइ।
कुल[5] की[6] बेटी[7] सील[8] जमीर॥
जोबन रायपड मइ चार जउ।
पगि पगि बोहि[9] पहूचिज्यो[10] पाप॥
दूणि भवि उलगाणयड हुउ[11]।
घघर भवि[12] होज्यो[13] कालड साप॥१४८॥

पड्या कहिजे[14] राजा गहिल गुमार[15]।
जाता कल[16] की नल दइ सार[17]॥

---

१. अ० २, आ० ६ (में नहीं है), आ० १२ बालुहो।
२. अ० २ थारीऊ, आ० १२ धणी तुम्हारी।
३ अ० २ दुई, आ० ६ दाय।
४ अ० २ कामिलय' छै, आ० ६ काया मिले, आ० १२ काया मिलि।
५+६+७-अ० २ कूलह की बेडा, आ० ६ कुलकी बेड़ी, आ० १२ कुलकी छाड।
८ अ० २ सांपले, आ० ६ सयर, आ० १२ सालउ।
६. अ० २ आ० ६ स्वामी, आ० १२ तोहि।
१०. अ० लागुहु, आ० ६ तालोगे, आ० १२ पुहचिज्ये।
११. आ० ६ हूयो।
१२. अ० २ आवतइ भवि, आ० ६ आवतडं, आ० १२ भवे।
१३ अ० २ होइ, आ० ६ भव, आ० १२ हूज्यो।
यह छंद अ० २ खड ३ में ५८, आ० ६ खड ३ में ४६, आ० १२ में १३४ है। लेकिन अ०२ और आ०६ में इसकी २रा पंक्ति है—"जि वयु हा (अ० २ जे किम) बाछै (वछै—अ० २) दूर (दूरो-अ० २) थी (थ अ० २)।
१४ आ० १२ पहिया कहे।
१५. आ० १२ गल्हिल गमार।
१६ आ० १२ जीवता कलि।
१७ आ० १२ नालहीसार।

राय अंतउर छोडिगउ।
जल विहूण्या किम माछ[1] पटाइ[2] ॥
धणी विहूणी धण सालिजइ।
वहूगा आविज्यो जोवन[3] जाय[4] ॥१४९॥

पंख्या तिम[5] कहेज्यो जिम[6] प्रीय गिरीसाइ।
साधण तुझ विण अन न खाइ॥
कुणाढी[7] फाटउ कंचूवउ।
सीस[8] फाड़ु अछइ दक्षण तीर॥
दव दाधी जिम[9] आकडी।
वहूगा आविज्यो नणद का वीर॥१५०॥

कहिन गोरी थारा प्रीय[10] अहिनाण[11]।
थोड २ मोनइ[12] कहि नइ सहिनाण॥

---

१ + २. आ० १२ जीवै माछ।
३ + ४. आ० १२ करइ पलाणि।
यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ८ मे नहीं है। आ० १२ में १३५ है। लेकिन आ० १२ में ३री पंक्ति नहीं है।
५. अ० २, आ० ६ तिणी परि बोलज्यो।
६. अ० २, आ० ६ बोलज्यो।
७. अ० २ कूहणी।
८. आ० ६ पोवर।
९. अ० २, आ० ६ सारी।
यह छंद अ० २ खड ३ में २६, आ० ६ खड ३ में २७ है। लेकिन इस छंद की १, ३ और ४ पंक्तियाँ ही अ० २ और आ० ६ में हैं।
१०. अ० २ मीत का, आ० ६ मीत, आ० १२ प्रिउ।
११. अ० २ सुहिनाण।
१२. आ० १२ मोहि।

किए[1] उपहारा[2] सारिपउ[3] ।
म्हारा छहुटा देवर कइ ऋणुहार ॥
एन्द गोरो पीयइ सावजउ ।
उपट ओठां[4] करि जमदाड़ ॥
ढरि आवउ कड़ि पातखउ ।
द्वादस तिलक करइ[5] नवइ[6] विहाय ॥
छाया[7] माहि[8] पिछाखिजइ[9] ।
पंडिया म्हारा[10] मोतया[11] पूंद्दा[12] सहिनाय[13] ॥१४१॥

---

१. श्रा० ६ कुण, श्रा० १२ किसि ।
२. श्रा० ६ श्रणुहार, श्रा० १२ उणिहारा ।
३. श्र० २ कीण सारिखो, श्रा० ६ कुण सारिखो ।
४. श्र० २ ऊँचउ गोरउ, श्रा० ६ ऊँचो गोरो ।
५+६ श्र० २ उगतइ, श्रा० ६ करिउठाद, श्रा० १२ करैं नवइ ।
७+८+६. श्रा० ६ छाप मीलयामाहि लप लइइ ।
१०+११. श्र० २ म्हा को मोवछइ, श्रा० ६ मीउ म्हारी, श्रा० १२ म्हारा तिउका ।
१२+१३. श्र० २ इणतो सहिनाण, श्रा० ६ एण सहिनाण, श्रा० १२ ए सहिनाण ।

यह छन्द श्र० २ खड ३ में ३५, श्रा० ६ खड ३ में ३२, श्रा० १२ मे १२६ है । लेकिन श्र० २ और श्रा० ६ में २री पंक्ति का पाठ है :—

'जाणी अहिनाणइ लेइ पोछाणि ।" तथा इन दोनों प्रतियों के बीच में दो पंक्तियां और हैं:—

"पाय लपीयी मो चणी (श्रा० ६—मोमडी) ।
मूछ (मोटी-श्रा० ६) करिखाए छै डावइ हाथि ॥

श्रा० १२ में ६ठी पंक्ति नहीं है । तथा ६वीं पंक्ति के बदले में है—

"राजा चडीयो हय नव लपै ।"

पहुया[1] प्रीतम[2] पूछ[3] सद्दिनाण ।
लाव पागड अर लाख कमाण[4] ॥
सोरठी झलकय काप मांहि[5] ।
मोटा चउरासीया राउकइ ठांति ॥
रतन जडित पग मोचडी[6] ।
पडिया प्रीय का एसाहनाण ॥१२२॥

वलि वहि[7] गोरी[8] थारा पीउ सहिनाण[9] ।
थोड़ा थोड़ा मांहि दे सहिनाण ॥
कउण उणहारइ[10] सारिषउ ।
दाखीय राजा की भमर समांहि ॥
मस्तक मादे छइ[11] केवडउ ।
उणरइ मांहिणइ कोइय जी भरमी जी आवि ॥
कालउ तिलउ छइ भमर संउ ।
कदूया तरकस साज हउ कुरवाण ॥१२३॥

---

१. आ० १२ पडिया ।
२. आ० १२ प्रिउतणा ।
३. आ० १२ पद्दा ।
✓ ४ आ० १२ कवाण ।
५. आ० १२ दै ।
६. आ० १२ मोचडी ।
यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ८ में नहीं है । आ० १२ में १२७ है ।
७. आ० १२ बाल कहौ ।
८. आ० १२ री ।
६. आ० १२ प्रिउसहिनाण ।
१०. आ० १२ कउणखिहारा ।
११. आ० १२ छ ।

नेजी घटइ राजा नवे छपइ।
पंडूरा प्रीइ का ए सहिनाण॥

पाछुटी गोरडी[1] तु घरे जाइ।
लेकरि[2] आव इ[3] थाट नाइ॥
सउण[4] त[5] घोल्या[6] गाइडो।
रात सोपारीय दीन्ही दइ छोडि॥
गोहउ[7] सो[8] निरवाहिउयो[9]।
राइ पडइ[10] पण वे करि जोडि॥१५४॥

यह छंद अ० २ खाड ३ में ३५ (अप्राप्त), आ० ६ खाड २ में ३२ (अप्राप्त) है। इन दोनों प्रतियों में संपादित प्रति की छंद संख्या १५१ ही है। अर्थात् संपादित प्रति की १५२ और १५३ मिलाकर एक ही छद संख्या उपर्युक्त दोनों प्रतियों में है। १५३ की १, २, ३, ६ और ७ पंक्तियाँ भी अ० २ और आ० ६ में एक ही छंद में हैं। आ० १२ में यह छंद १३८ है। लेकिन आ० १२ में ३री, ६ठी, ७वीं, तथा ८वीं पंक्तियाँ नहीं हैं। ६ठी पंक्ति के बदले है—

"राजाजी चढीयो हय नवलपै।

१. अ० २, आ० ६ गारी, आ० १२ गोरी।
२. अ० २, आ० ६, हू लेइ।
३ आ० ६ आविरा, आ० १२ आउ।
४ अ० १ सानातो, आ० ६ सुगज्यो, आ० १२ सउण ले।
६. अ० २ बाघ्यौ, आ० ६ बाध्या, आ० १४ बध्यो।
७+८ अ० २ ज्यू बोलइ, आ० ६ जो बोलो, आ० १२ बोलसु सो।
९ अ० २, आ० ६ ने निरवाहिज्यो।
१० आ० १२, पड़ै।

यह छंद अ० २ खाड ३ में ३७, आ० ६ खण्ड ३ में ३५, आ० १२ में १३९ है।

अ० २ और आ० ६ में इसकी ४थी पंक्ति है—

"दीधी सोपारी दोयकर ज्यार।"

कागल ठादर घण धरइ[१] चीर ।
मन[२] ठादर वरइ नयण थी नीर ॥
लेपणि ठादर नद करया ।
ग्रघर ठादर[३] सुपि[४] धरइ तंबोल ॥
खेत पटोलीय जिपि दीयउ ।
मिलि वहवाटा[५] वरइ कल्लोल ॥१४४॥

वाती मासा सामण पढाइ[६] ।
घाणा[७] अक्षर[८] गुणित कीधो[९] ॥
आप हस्ते[१०] लिया[११] गोरडी ।
जिउ-जिउ वाचइ तिम तिम हुयइ हित ॥

तथा अ० २ में छठी पंक्ति है —

"वचन तुम्हार लागीछइ नारि ।"

आ० ६ मे छठी पंक्ति नहीं है ।

१. आ० १२ करै ।
२. आ० १२ मासि ।
३. आ० १२ अरता हरे ।
४. आ० १२ मुह ।
५. आ० १२ चडवाहा ।

यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ६ में नहीं है । आ० १२ में १४० है ।

६. आ० ६ पढाइ ।
७. अ० २, आ० ६ कोरी, आ० १२ छाना ।
८. अ० २, आ० ६ कागल ।
९. आ० १२ गलाडियाइ ।
१०. अ० २ हस्त, आ० ६ हसि ।
११. अ० २ लिपे, आ० ६ लो, आ० १२ लिख्यो ।

घणीय[1] उमाहो[2] लागिय[3] ।
राजा[4] वरते[5] घर[6] कीय चीत[7] ॥१२६॥

चाट पटाउ घण का[8] धीर ।
तुम्हे ऊतरि जावउ[9] समुद कइ तीरि ॥
माघण हुई इह छागरी ।
लाज छोडी[10] तुम्हे चाट वइय तुम्हे यात[11] ॥
उघगाणा संयम[12] कहै ।
थारी सुघ ऊमाहो[13] ऊच्छ्रया[14] गात[15] ॥१२७ ।

---

१ + २. अ ० २ घणा उपाही, आ० ६ ज्यू कोई माहिं, आ० १२ घणी उमाहो ।
३. अ० २ उलगइ, आ० १२ लागिदै ।
४. अ० २ राव, आ० ६ राय, आ०१२ राजाजी ।
५. अ० २ चलावौ, आ० ६ चलायो, अ० १२ करिसी ।
६ अ० २ घरा, आ० ६ घर, आ० १२ घरि ।
७. अ० २ आ० ६ अचेत, आ० १२ चीत ।
यह छंद अ० २ खंड २ में २७, आ० ६ खण्ड ३ में २५, आ० १२ में १४१ है । लेकिन आ० १२ में १ली पंक्ति है :–
"काती मासहि जाइइ चलाइ ।"
और ४ थी पंक्ति है —' जिम जिम चालिस्यै तिउ होइसी हेत ।।"
८, आ० १२ घणी के ।
९. आ० १२ जाहु ।
१०. आ० १२ लाजालुडी ।
११. आ० १२ तुम्ह कहुँ वात ।
१२. आ० १२ उलगाणो मुर्देम ।
१३ आ० १२ उमाहिउ ।
१४. आ० १२ उलस्या ।
१५ आ० १२ गात्र ।
यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ९ में नहीं है । आ० १२ में १४२ है ।

चीरो जिनेउय[1] दीन्हा छइ[2] साठि[3] ।
सहस[4] सोनई बाध्या छइ[5] गाठि[6] ॥
बरसि दीहाडाकउ सांयळउं ।
पंहुया घोयमयाउ जीमिजो[7] जिम हुवइ[8] प्राय ॥
पहिरिज्यो[9] सांवरी पांयही ।
विहुँघडीया समा करिज्यो[10] मेल्हाण[11] ॥१५८॥

चीरी दीन्हा गोरी पंड्या कइ हाथि ।
स्वामी थे[12] चाल्जिज्यो जोवण साथ[13] ॥
मास सइ कोस कछ गामंतरउ ।
पांडूया रूडा[14] चालिज्यो देस की सीम[15] ॥

---

१. अ० २, आ० ६ जनोइयकी, आ० १२ जोई ।
२. अ० २, दीधी, आ० १२ दीन्ही ।
३. अ० २, आ० ६ गाठि, आ० १२ सुगंठि ।
४. अ० २ गिणि, आ० ६ गणिकरि ।
५. आ० ६ बंधीया, आ० १२ बावंध्या ।
६. अ० २, आ० ६ साठि, आ० १२ गंठि ।
७. अ० २, खाज्यो, आ० ६ पाय, आ० १२ जिमिज्यो ।
८. आ० ६ होए, आ० १२ पग हुवै ।
९. अ० २, आ० ६ पाये ।
१०+११ अ० २, देई मिलाए, आ० ६ दीए मे ल्हाण ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ३४, आ० ६ खंड ३ में २१ आ० १२ में १४३ है । आ० १२ में ३ री पंक्ति है:—
"बरस दीहा को सनलौ ।"

१२. आ० ६ जणह ।
१३. अ० २ चलायो हेड़ाऊ कय, आ० १२ नइ सांथ ।
१४. आ० १२ रूड्या ।
१५. आ० १२ सीव ।

तावडउ[1] गिणै न छांहडी ।
चोरीय[2] राखिज्यो जिम घण कथड चोर ॥१२९॥

पोढ्या सुखि चोखइ जजमानि[3] ।
रयां[4] घरि उमहइ[5] हीरा की खानि ॥
अहे कही मोचिलि आखिज्यो ।
थे यार माहे[6] चालिज्यो रूडइ साथि[7] ॥
राजकुमरि रावलि[8] घणा ।
म्हारी चोरीन देज्यो राउ कइ हाथि[9] ॥१३०॥

कोस पयाण[10] दूरे पडीयउ[11] जाइ ।
सात अगा करि[12] मइ ठउ[13] पाइ ॥

---

१. आ० १२ तावड ।
२. आ० १२ चोरी ।
यह छन्द अ० २ खड ३ में ५६, आ० ६ खड ३ में २७, आ० १० मे १४४ है । लेकिन अ० २ में इस छन्द की १, २, ३ पंक्तियाँ ही हैं तथा आ० ६ में १, ३ हैं, २ नहीं है । आ० ६ की और अ० २ की शेष पंक्तियाँ सपादित छन्दों की १३७ और १४८ में हैं ।
३ आ० १२ दोली जजमनि ।
४ आ० १२ या ।
५ आ० १२ उमहै ।
६ आ० १२ माहि ।
७ आ० १२ नीके साथ ।
८ आ० १२ रावल ।
९ आ० १२ राव के हाथि ।
यह छन्द अ० २, आ० ६, आ० ६ में नहीं है । आ० १२ में १४५ है ।
१० आ० ६ पीयाणो, आ० १२ रे पयाणो ।
११ आ० १२ रे पडियो ।
१२ आ० ६ करी, आ० १२ कडि ।
१३ अ० २, आ० ६ बैठो हो, आ० १२ बैठा ।

हलजइ हलजइ[1] पग ठवइ[2]।
चालता गोरी दीन्हा थी[3] सीप[4]॥
ते सवि[5] पाड्या नइ[6] वीसरी[7]।
चालया[8] लागउ[9] छोटीय[10] वीप ॥१६१॥

सावभइ मासि पहुतउ[11] जाइ।
जठइ[12] मानिजइ मलउ नइ[13] हलवइइ[14] गाइ॥
माड़ी पीवइ मया राज्लिजइ[15]।
तुठइ[16] लाज विहुणी चालइ घटि[17]॥
इसी सकल घइ[18] देव की[19]।
चोर जाइर नहीं तेहनी[20] थोइ[21] ॥१६२॥

---

१ अ० २ खूनो चालै, आ० ६ सासतो चालइ, आ० १२ हेलवै हेलवै
२. आ० १२ भरै।
३ अ० २ कह्या हो, आ० ६ कहै।
४ अ० २ आ० ६ सदेस। ५. अ० २, आ० ६ तै।
६. अ० २, आ० ६ सघनो।
७ अ० २, आ० ६ वीसरा गयौ।
८+९+१०+आ० १२ चालिया लागो छोटडी।
यह छंद अ० २ खड ३ में ३६, आ० ६ खड ३ म ३६, आ० १२ में १४६ है।
११ अ० २, आ० ६ पहूतउ हो, आ० १२ पहुतौ।
१२. अ० २ ते, आ० ६ तिहा, आ० १२ ऊठै।
१३. आ० १२ अरू।
१४. आ० १२ हलवै है।
१५. अ० २, आ० ६ रालिजै, आ० १२ रालिजै।
१६ अ० २, आ० ६ (में नहीं है) आ० १२ उठै।
१७. अ० २ घट आ० १२ घट।
१८ अ० २ जिहाँ देवकी, आ० १२ सकति अछै।
१९. अ० २ नही देवकइ, आ० ६ न देवकी।
२०+२१ अ० २ पथ।

पंडिराउ पहूतउ मागमइ मासि।
देयइइ थानक[1] घरइ[2] घरी[3] दासि[4] ॥
तपीय[5] सन्यासीय[6] तप करइ[7]।
उसाकी[8] कनक काया रतनालीय[9] आपि ॥
महिमा अधिकी देवकी।
धन्न धन्न देवन्ह ही[10] जगनाथ ॥
पूज ‌ पहोंचइ पडियउ।
चंदन चरिघ अरु जोडइ हाथ ॥
मेघउ देईं स्वामी राउसु[11]
तउ सेवकरी करणा समरथ ॥१६३॥

यह छंद अ० २ खड ३ में ४१, आ० ६ खंड ३ में ३८, आ० १२ में १४७ है।

१. आ० १२ थान।
२+३+४. आ० १२ करी अरदास।
५. आ० १२ तपी।
६. आ० १२ सन्यासी।
७ आ० १२ करै ॥
८. आ० १२ (में नहीं है)।
९ आ० १२ रतनाली।
१०. अ० २ आ० ६ धन्न धन्न देव देवा, आ० १२ धन धन हो तूही।
११. आ० १२ सु।

यह छुद अ० २ खड ३ में ४७, आ० ६ खड ३ में ४४, आ० १२ में १४८ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में प्रथम दो पक्तियाँ इस छन्द की ६ और ४ हैं। शेप पक्तियाँ इस प्रकार हैं.—

१. अमर स्यघासन वैसणइ।
४ जिण दिन कंठ न ऊ ऊ कार।
६. जिण दिन स्वामी चदन सूर।
७. जिण दिन पवन पाणी नहीं।
८ जिण दिन स्वामी आभन गाभ।
९. मेतो जुग सूमा गया।
१०. तपि तो दीप तीपायो हो आप।

दीठउ नगर[1] पंडिय भ्रत-हुयउ ऊपहास[2] ।
गिणउ नगर जाईं[3] तेह मठ धाम ॥
बंमण वइसइ इह[4] अति घणा ।
वाणिया रा[5] घर वसइ कोडि पंचास ॥
कोडि नारद[6] हाथी वसइ ।
पवणि छत्रीसइ[7] अंत न पार ॥
सरसउ लोक सुहामणउ[8] ।
तउइ तीनि सइ साठि घर वसइ कुमार ॥१६४॥

रक्त चंदन तणा[9] पउलि[10] किमाड[11] ।
सुभर भरीया भरथ भंडार ॥
सरव सोना धी[12] साकुली ।
घरिघरि तोरण मंगला च्यारि ॥
घरि घरि अति ऊजला[13] झलामलइ[14] ।
घरि घरि तुलसी पेड़ पुराण ॥

---

१. आ० १२ दीठ नगर ।
२. आ० १२ पढियै उलहासि ।
३. आ० १२ गिणयो न जाइ ।
४. आ० १२ बाभण वसे छै,।
५. आ० १२ का । ६ आ० १२ नारद कोडि ।
७. आ० १२ पवन छत्री से । ८. आ० १२ कुमारछ ।
यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ६ म नहीं है । आ० १२ में १४६ है । लेकिन अंतिम पंक्ति आ० १२ में नहीं है ।
६. अ० २ आ० ६ रगत चंदन की ।
१०. अ० २ पीली, आ० ६ पोलि, आ० १२ पौलि ।
११. आ० १२ पगार ।
१२. अ० २ सीसमसार की ।
१३ + १४. अ० २ ऊँचा दादुर झलमइ, आ० ६ ऊँचाईडा झलमलइ, आ० १२ ऊजला झलहले ।

उथि भुव[1] पाप न संचरइ[2]।
ऊठइ[3] फिरइ जगनाथ की आया ॥१६५॥

पंडियउ जाइ नइ धाइउडइ पडखि[4]।
द्वादसि तिलक नइ चंदन पडखि[5]॥
गलइ[6] जनेऊ[7], पाटकउ[8]।
हाथि बीजोरउ[9] पुहुप की माल॥
राइ भुवण गउ[10] जोइसी[11]।
उभउ राधीयउ पउलि दुवारि[12]॥१६६॥

---

१. अ० २ तिण भई, आ० ६ जिणभुइ, आ० ६ उथि भुइ, आ० १२. उथि भइ।

२. अ० २, अ० ६ लीपही, आ० १२ संचरै।

३. अ० २ तिहा।

यह छंद आ० १२ में १५० है।

आ० १२ में अंतिम पंक्ति है :—

"उठि फिरै जगनाथ घर आए"।

४. आ० १२ रे पौलि।

५. आ० १० पौलि।

६ + ७. अ० २ कठ जनोई, आ० काधि जनोइय, आ० १२ गलै जनोई।

८. आ० १२ पाटको।

६. आ० १२ बिजोरो।

१०. आ० १२ गयो।

११. आ० १२ जोईजी।

१२. आ० १२ उभो राधीयो पौलि दुवार।

यह छंद संख्या १६५ तथा १६६, अ० २ खड ३ में ४६, आ० ६ खड ३ में ४३, आ० ६ में १६७-१६८ दोनों मिलाकर हैं। आ० १२ में १५१ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ मे उपर्युक्त दोनों छंदों की प्रथम पंक्तियों के पहले ये पंक्तियाँ और हैं :-

पढियउ[1] थारि[2] घट्टउ एइ[3] आइ।
गयउ पडिहार[4] ग्ररु वीनव्यउ राइ ॥
परदेसी कोई पडीयउ।
म्हे स्वामी मेटिवा ग्रावीया राज[5] दुवारि ॥१६७॥

एक सुणउ मुझ वीनती।
एइ ग्रपूरव सुणइ विचार ॥
रे पडिहार[6] मेल्हावउ[7] थार।
वेगि ऊन्हो बुलावउ[8] सभा मझारि ॥
घोंमल कुवण[9] देसांतरी।
तव पउलीय पडियउ जीवतेरे बोलाई ॥
ग्रावउ देव दया करो।
जोसीय[10] तुम्ह[11] बोलावइ राई ॥१६८॥

---

१ पडिया जोवै पउलि पगार।
२ चदन तिलक ग्रगि पौलि कराय।

ग्रौर ग्र० २ में एक पंक्ति ग्रौर है "पठइ पापी रामकी छै।"

१. ग्र० २ पडायो। २ ग्र० १२ बारणै।

३ ग्र० १२ बैठो। ४ ग्र० १२ जाइ पड्दार।

५ ग्र० ६ म्हे स्वामी मेटिवा ग्रावीयो राज, ग्र० १२ मेटेवा ग्रायौ राज।

यह छंद ग्र० ६ में १६६, ग्र० १२ में १५२ है। ग्र० १२ में दूसरी ग्रौर तीसरी पंक्तियों के बीच में दो निम्न पंक्तियाँ ग्रौर हैं —

१ एक सुणो मुझ वीनतो।
२ एक ग्रपूरव सुणो विचार।

६ ग्र० १२ पडदर। ७ ग्र० १२ मलावौ।

८ ग्र० ६ योगी बालावउजी, ग्र०१३ वेगि बुलावौ। ६ ग्र० १० कवणै।

१० ग्र० ६ जोइसी हा, ग्र० १२ जोइसा। ११ ग्र० १२ तौनै।

रावळ गमि[1] पडीप कीयउ, ति[2] प्रवेसि[3] ।
लेइ बिजोरउ मिलउ[4] नरेस ॥
नगण कीधी राणा पूरिमइ[5] ।
गंग जमुन ज नीर बहाइ[6] ॥
धरू सूरिज जा लगि तपइ ।
ता लगि[7] राज की कीरति हुवइ[8] ॥१६९॥

किहाँ वसउ धंमण किहाँ तोरी ठाउ[9] ।
जोसी कहइ थारा नगर कउ नाउ ॥
देव देहुरी दूरि कउ[10] ।
राणी राजमती दीयउ[11] पंड्राइ ॥
धरम बारह[12] उलग रहाउ[13] ।
तुम्हि घरि आविपउ[14] वीसलराउ ॥१७०॥

यह छंद आ० ६ में १७०, आ० १२ मे १५३ है। आ० १२ मे प्रथम दो पक्तियाँ इस छद की नहीं हैं। ये दोनों पक्तियाँ आ० १५ की छद सख्या १५२ में जुडी हुई हैं।

१. अ० २, आ० ६ जाइ। २ आ० ६ कीयो।
३. आ० ६ राय परवेश। ४ अ० २ हुज मिलइ, आ० ६ मिलीया, आ० १२ मिल्यो।
५. आ० १२ पुरव्यो।
६. अ० २ जग लगि बहै नीर ७ आ० ६ अविचल।
८ अ० ६ रहाइ,अ० २ राजा सयलपरिवार,आ०६ राजछै तुमा सरीर।

यह छद अ० २ खड ३ में ४३, आ० ६ खड ३ में ४०, आ० ६ म १७१, आ० १२ म १५४ है। आ० १२ में पहिली पक्ति है—रावले पडिये कीयो प्रवेश। आ० १२ में पाँचवीं पक्ति नहीं है। तथा अन्तिम पक्ति है—
"ता लगि कीरति तुम्हर होइ।"

९ आ० १२ ठाम। १०. आ० १२ को।
११. आ० १२ हू दीयो। १२ आ० १२ बारै।
१३. आ० १२ रह्यो। १४ आ० १२ आयाँ।

यह छन्द आ० ६ में १७२ आ० १२ में १५५ है।

ढूठउ रे यंमय मोल्हि म श्राह ।
किम श्रावइ धोस(त) भूवाह[१] ॥
जिइ घरि सांमरि ऊग्रहइ[२] ।
ऊघउ सगलय[३] भूय[४] तखउ रपपाल[५] ॥
सोरठ पाटण कउ घणी ।
भ्रमिइ[६] घरि किम आवइ राइ भुमाल[७] ॥१७१॥

यमय भणइ तू नि सुणि[८] भूवाल[९] ।
विइ[१०] घरि धी घण रूप विसाल[११] ॥
चिहुँ देसा[१२] उवा[१३] छप छइइ[१४] ।
हस्ती[१५] तिणि घण कहउ कुबोल ॥
सहि न सकउ समर घणी ।
तइ घण मेल्ही हो राइ निटोल ॥१७२॥

---

१ श्रा० १२ भूपाल ।
२. श्रा० १२ उग्र है ।
३ श्रा० १२ सगली ।
४ श्रा० १२ भूमि ।
५ श्रा० १२ रपवाल ।
६. श्रा० १२ इम ।
७. श्रा० १२ भूपाल ।
यह छंद श्रा० ६ में १७३ श्रा० १२ में १५६ है ।
८+९. श्रा० ६ निसिणि भूपाल, श्रा० १२ सुणि भूपाल ।
१०. श्रा० १२ विहि ।
११ श्रा० १२ रसाल ।
१२. श्रा० १२ दिसि ।
१३ श्रा० १२ चालैत ।
१४. श्रा० १२ लहै ।
१५ श्रा० १२ हसतीव ।
यह छंद श्रा ६ में १७४, श्रा० १२ म १५७ है ।

रामवती हसि बोलिया[1] बोल ।
राजा कहइ चित्त[2] धरया सुबोल ॥
समझायउ[3] समझाय नहीं ।
ऊगउ[4] राणीय स[5] मेल्हउ घर वास ॥
ऊभी मेल्ही मारही ।
इणि[6] विधि राउ आयउ तुम्ह पासि ॥१७३॥

जय बोलण दीन्हो घर कयउ[7] भेउ ।
तब[8] छायउ कुल कयउ परमेउ ॥
गूझ प्रकासउ पाडीयइ[9] ।
मोट छइ हींदू पटउ नरेस ॥
वचन कइ[10] कारणि पण तीजी ।
हिवइ सपउ[11] उडीसा कउ देस ॥१७४॥

चमकि थइ ऊठियउ पूछियउ राउ[12] ।
मत्री दइरागर लीयउ बुलाइ ॥

---

१ आ० १२ बोलायो ।
२ आ० १२ मनमाहे ।
३ आ० १२ समझायो ।
४ आ० १२ उगिता ।
५ आ० १२ राखास्यु ।
६ आ० ६ इण, आ० १२ इणि ।
यह छन्द आ० ६ म १७४, आ० १२ म १५८ है ।
७ आ० १२ को ।
८ आ० १२ तनहि ।
९ आ० गूझ प्रकास्या रै पडियइ, आ० १२ गूझ प्रकास्यो पडियै ।
१० आ० १२ में नहीं है ।
११. आ० १२ हिवै सउयु ।
यह छन्द आ० ६ में १७६ तथा आ० १२ में १५६ है ।
१२ आ० १२ चमकि करि ऊठाया पूछ्यो राइ ।

सुयण[1] राजा मीनइ उछगइ।
हिव तेड नउ सुरू देहि[2] परिमाण ।।
गढ अजमेर[3] कपट धणी।
मंत्रि म्हारइ सुण[4] वीसल चहुआण ।।१७५।।

दीया दकारा नगर मझारि।
घरि घरि रा? फिरइ[5] पडदार[6] ।।
नगरि दुहाई संचरी।
सबे ठाकुर[7] घरि वागी रह्या ।।
राइ आप आहेडइ मिसि चढइ[8]।
सिंह सिकार नइ पेल्खणाइ ।।१७६।।

फिरथा न की[9] फेरायई साथि।
घरि घरि सग्या छइ प्राप फेकाणि ।।

---

१. आ० ११ सुण।
२. आ० १२ तेड नउ सुभत्यो।
३. आ० १२ अजमेरह।
४ आ० ६ मत्री सवण म्हारै, आ० १२ मत्री कीण म्हारै।
यह छंद आ० ६ में १७७ तथा आ० १२ में १६० है।
५. आ० १२ रावली फिरै।
६. आ० ६ पटधार, आ० १२ पडदार।
७. आ० ६ परिनस्या हो राइ।
८. आ० ६ आप आहेडा मिस चडे, आ० १२ आहेडा मिसि चढै।
यह छंद आ० ६ में १७८ तथा आ० १२ में १६१ है।
लेकिन आ० २ में ४थी तथा पंक्तियाँ हैं:—
४. "सबे ठकुराला सपरिवार हो।
५. लसकर ने मोलावण जाइ।"
९. आ० ६ नकाम, आ० १२ स्वामी कीइन।

देस देसांतर का मीछवया।
राजानै तरव वइसणैठइ[1] आवि ॥
छत्र चउरासीया राणीया।
नरवइ[2] सारव जुहारण आइ ॥१७७॥

पदम सरोवरि वइठउ[3] छइ[4] आई[5]।
आपण धीय सुणि बचन कहाइ[6] ॥
अहो जिण पुरष आसंगीयउ[7]।
पाटउ[8] हो समुद[9] पपालीयउ[10] जाइ ॥
आरण पइ राजा कइ[11]।
थे वइगा हो[12] आविज्यो वीसल राउ ॥१७८॥

चिहुं दिसि राजा वइ[13] चमर ढुलाइ[14]।
छंद सहोदर[15] वइठा छइ आई ॥

---

१. आ० १२ परताईय। २. आ० ६ नरवैजी ॥
यह छद आ० ६ में १७६ तथा आ० १२ में १६२ है।
लेकिन आ० १२ में अंतिम पक्ति है :—
"राजा सब मिलि करै प्रमाण।"
३. आ० ६ बइठो, आ० १२ वठो।
४ आ० ६ छै, आ० १२ छै।
५. आ० ६ राइ।
६ आ० १२ कहइ।
७. आ० १२ आसया।
८. आ० १२ पोडो।
९. आ० १२ समुद्र।
१०. आ० १२ पपलिज्यो।
११. आ० १२ कहै। १२ आ० १२ थे तो वेगा हो।
यह छद आ० में १८० तथा आ० १२ में १६३ है।
१३ आ० १२ राजा कै। १४. आ० १२ ढोलाइ।
१५ आ० ६ सरोवर।

परिगढ़[1] दलमल[2] सहि मिल्या[3] ।
तठइ पूरिवउ[4] राजा वधाणइ छइ[5] ।।
गढ अजमेरा[6] कयउ धणी ।
वेगा आणउ[7] वीसल चहुग्राण ।।१७६।।

दाहिणी दिसि राजा चवर डुलाइ ।
दषिण दिसि राजा बइठउ छइ आइ ।।
सिहर कलिंग पुर उमहइ ।
उण रइ सगली सेना बइठी छइ आई ।।
आपण मइ राजा कहइ ।
थे बहगा आवइ वीसल राइ ।।१८०।।

आगिली दिसी राजा चमर डुलाइ ।
राउ का[8] ऊलगू बइठा छइ आइ ।।
वसइ[9] राना वाणारसी ।
उतउ[10] कनवजाड दिवाईय[11] आण ।।

---

१. आ० १२ परगढ़ ।
२. आ० १२ दुलग्रल ।
३ आ० १२ मिल्यौ ।
४. आ० १२ तठै पूरव्यो ।
५. आ० ६ राजा करइ वधाण, आ० १२ राजा कर वधाण ।
६. आ० १२ अजमेरह ।
७. आ० ६ वेगि आयो, आ० १२ वैगो आणी ।
छंद १८० आ० ६ में १८१ तथा आ० १२ में १६४ है ।
यह छंद आ० ६ में १८२ है । आ० १२ में नहीं है ।
८ आ० १२ को ।
९. आ० १२ वसै ।
१० आ० १२ उणितो ।
११. आ० १२ दिवाइ ।

थापणा पुहवतउ[1] वीनवइ[2] ।
वे राउ[3] वेगा आणउ वीसल चहुआण ॥१८१॥

पाछिली रिति राजा अमर दुआइ ।
सींघल दीपी राजा बइठउ[4] आइ ॥
आप नरेसर वीनीयउ[5] ।
तठइ पूछ्यो[6] राजा करइ सुभाइ ॥
म्हांको छी एही[7] वीनती ।
वे राउ वेगा आणउ वीसल राउ[8] ॥१८२॥

इतउ सुणीइ[9] राजा मंदिरि जाइ ।
भाखमती राणी ली यइ[10] बोलाइ ॥
इमि राजा आखीयउ ।
राणी हेठि तोनइ कहुं सुभाइ[11] ॥
जो भाई करि बोलीयउ[12] ।
सो थाकउ[13] भाई म्हा नइ दिप(इ)इ[14] ॥१८३॥

---

१. आ० १२ पहराजा । २ आ० १२ कहै ।
३ आ० १२ (म नहीं है) ।
यह छंद आ० ६ में १८३ तथा आ० १२ में १६६ है ।
४ आ० १२ बैठा छै । ५ आ० १२ वीनवी ।
६. आ० १२ तठै पूछ्यो ।
७ आ० ६ एह ।
८. आ० ६ वेगि वे आणो वीसलो राउ ।
यह छंद आ० ६ में १८४ तथा आ० १२ में १६७ है ।
९. आ० ६ इतनो सुणी, आ० १२ इतनु सुणी ।
१०. आ० १२ लीय ।
११. आ० १२ राणी जी तो नुकउण सुभाव ।
१२. आ० १२ बोलाईयो ।
१३. आ० १२ भारी । १४. आ० १२ मुझहि देपा ।
यह छंद आ० ६ म १८५ तथा आ० १२ में १६८ है ।

भानमती बोलइ सुणि[1] राइ ।
एता दिन[2] संभालीयउ[3] काइ ॥
इतरां दी आइति[4] राज की[5] ।
किउ लइ आज पूछीया[6] हइ[7] ॥
भाव भलइ[8] माणिज्यो ।
थारउ छुटियउ[9] हो[10] सिगलउ परिवार ॥१८४॥

तब हसि करि राजा आलिंगण देहि ।
भानमती मुख[11] कहउ सुणइ[12] ॥
राजमती लिपि मोकल्यउ[13] ।
चोरी दे वभण दीयउ पठाइ ॥

---

१. आ० १२ सुणी जी ।
२. आ० १२ इतना दिवस ।
३. आ० १२ न सामरि ।
४. आ० १२ इतनी आरति ।
५. आ० १२ राजा क्यु करी ।
६ + ७ आ० ६ पूछीया कीधीय सार ।
८. आ० १२ भावि भैले ।
६. आ० १२ छुड्यो छै ।
१०. आ० (में नहीं है) ।

यह छद आ० ६ में १८६ तथा आ० १२ में १६६ है । लेकिन इसमें चौथी और पाँचवीं पक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

४. आव किउ पूछियउ किउ करोसार ।
५. भाव भलेते मानिज्यो ।

आ० १२ में पक्ति है :—"किम पूछीयो ये इव कीधीय सार ॥"

११. आ० १२ मुझसु ।
१२. आ० १२ कहोएह ।
१३. आ० १२ मोकल्यो ।

थार बरस उछग हुया ।
था[1] घरि आव्या हो[2] वीतक राट[3] ॥१८५॥

सब आपयउ[4] बभण लीपउ बोलाइ ।
मानमती राणी लिपउ वधाइ ॥
भरत वचन धण पांचीया ।
सब पडियउ[5] पाव कही समझाइ ॥
भाग रांध की चउरी चडयउ[6] ।
हतउ उछगायउ देउरी घरइ पंडाइ ॥१८६॥

पाछिम पटकि मेघदा पदहार ।
चोसठ भाट करइ जइ कार[7] ॥
नट नाटिक दीसइ घणा ।
उथिरइ[8] कौतोहल दीसइ दरबारि ॥
भीतरि जाइ सुणाईयउ[9] ।
थारी बहिनडी[10] कोकइ[11] राजदुवारि ॥१८७॥

---

१ आ० ६ था ।
२ आ० ६ आयो, आ० १२ आव्या जी ।
३ आ० १२ राइ ।
यह छंद आ० ६ में १८७ तथा आ० १२ में १७० है ।
४. आ० १२ आये ।
५ आ० १२ पडियै ।
६. आ० १२ चोरी चढ्यो ।
यह छंद आ० ६ में १८८ तथा आ० १२ में १७१ है ।
लेकिन आ० १२ में अंतिम पंक्ति है –
"उलगाणो देव्यो घरा पटाइ ।"
७ आ० १२ जयकार ।
८ आ० १२ (में नहीं है) ।
९ आ० १२ सुणाईयो ।
१० आ० १२ बहिन ।
११ आ० ६ कोक्यो, आ० १२ तू कौकियो ।
यह छंद आ० ६ में १८६ तथा आ० १२ म १७२ है ।

✓रायंगणि[1] जय आवीयउ राउ।
कामणी ढोलइ[2] सीतल वाउ॥
एक चन्दन लेपन करइ।
एक सखी परि देहि[3] समोल॥
गइ गोरी[4] फूल बधावही।
एक सखी करइ चंदन पउलि[5] ॥१८८॥

सेवा आव्या राजा वीसल राउ।
पूरवी[6] राजा कीयउ[7] अधिक[8] उछाव॥
धीनी हो[9] चादर पहुलणइ[10]। ?
कवण देसावर कुण[11] तू देव॥
पवण की थे[12] ऊलग करउ।
हूं नवि जाण[13] रावलउ[14] भेव ॥१८९॥

---

१. आ० १२ राय आगाणी।
२. आ० १२ ढोलि।
३. आ० १२ देइ।
४. आ० १२ नारि।
५. आ० १२ पोलि।

यह छंद आ० ६ में १६० तथा आ० १२ में १७३ है। लेकिन इसमें तीसरी और छठी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

३ सफल दीहाडउ आज कउ।
६ ए सखि वदइ अमृत वोरा।

६. आ० १२ पूरव्या।
७. आ० १२ किंधौ।
८. आ० १२ (में नहीं है)।
९. आ० १२ दीन्हीं।
१०. आ० १२ बैसणै।
११. आ० १२ कवण।
१२. आ० १२ तुम्हे।
१३. आ० १२ जाणु।
१४. आ० १२ रावल।

जइ गूं दो पूछइ धरा महेस।
म्हाहरउ उमहइ[1] सांभरि देस ॥
धावउ[2] गढ अजमेर मझि[3]।
रहे तउ[4] घणा वांधीया[5] आवीया[6] देव[7] ॥
मापण परम बारह हुवा[8]।
रहे[9] वखाणिला पादरा देव ॥१६०॥

धातउ[10] घणा कहउ किया[11] काम[12]।
सयल जाम हुय मुहा[13] धाम ॥
जइ सुन्द सु भेटा हुई।
तउ थे[14] हेतु उडीसा कउ देस ॥

इस छुद में छुद सख्या ११२, ११३, ११४ की घटना की पुनरावृत्ति हुई है —

यह छुद आ० ६ में १६१ तथा आ० १२ म १७४ है। आ० १२ पक्ति है —"आनि मिल्या तन बीसल राव।"

१. आ० १२ उलगहै।
२ आ० १२ थाण।
३ आ० १२ मैं।
४ आ० १२ (मैं नहीं है)।
५ आ० ६ नथ्या, आ० १२ चापीया
६ आ० ६ आविया।
७ आ० ६ एव, आ० १२ देव।
८ आ० १२ तजी।
६ आ० १२ (म नहीं है)।

यह छुंद आ० ६ में १६२ तथा आ० १२ में १७५ है।

इस छुद में भी उपर्युक्त छुद सख्या १८६ की तरह, छुद सख्या ११२, ११३ और ११४ की घटना की पुनरावृत्ति हुई है।

१०. आ० १२ एतला।
११ आ० १२ जिए।
१२. आ० १२ काजि।
१३. आ० १२ मुफ हुउ।
१४ आ० १२ थे ती।

म्हा[1] सुदेइ[2] सप्पउ[3] राउ जी ।
हिवइ थापा[4] उगाहो[5] हो धरह नेस ॥१६१॥

तव हसि बोलयउ राउ[6] चहुआण ।
तुम्हारउ[7] वचन सामी[8] परमाण ॥
बीनती एक[9] म्हाकी सुणउ ।
म्हे तउ चाखता गोरीय[10] दीन्ही थी[11] बांह ॥
बरस बारह पछइ आविरयो ।
हिव तुम्हि[12] कहउ[13] जिम धरि[14] जोइ ॥१६२॥

तव[15] पडउ सरु कोस्या परधान ।
पूरव्यउ राउ दीय[16] बहु मान ॥

१+२+३ आ० ६ म्हे तुम्हा सप्यो ।
४+५ आ० ६ आप उम्हाइउ ।

यह छंद आ० ६ में १६३ तथा आ० १२में १७६ है। लेकिन १२ में ५वीं पंक्ति है —"म्हे थाने राज सुपीयो।" तथा ६ठी पंक्ति है —"आप उगाहो धणा नरेस।"

६. आ० १२ राय ।
७. आ० १२ थारो ।
८. आ० १२ स्वामी ।
९. आ० १२ एक ।
१०. आ० १२ गोरी ने ।
११. आ० १२ छै ।
१२. आ० १२ (में नहीं है) ।
१३. आ० ६ हिवे तुम्हे कहो ।
१४. आ० १२ में 'जिम' और 'धरि' के बीच में "हमि" है।
यह छंद आ० ६ में १६४ तथा आ० १२ में १७७ है।
१५. आ० १२ (में नहीं है) ।
१६. आ० १२ पुरव्यो राइ दीयो ।

हियइ चोरी दीन्ही[1] पंडइ राउ कइ हाथि[2] ।
पंडिया आयराउ[3] कंण स[4] साथि ॥
किपइ[5] राणी तुम्हे मोकल्या ।
राणी राजमती तुम धोयरि[6] सदेसि ॥
जइ तुम्हे रावी नारीया[7] ।
एउ घण दीव[8] फाटि मोरति ॥१६२॥

पाइया छइ गोरी[9] किण वोव[10] दीठ ।
मोती[11] पोयणी[12] गउपि[13] पईठि ॥

---

१. आ० १२ दीधी चोरी ।
२ आ० १२ हाथ ।
३. आ० १२ आयो ।
४. आ० १२ कनए कै ।
५. आ० १२ कारए ।
६ आ० ६ पाठभ्रं, आ० १२ दोयारे ।
७. आ० १२ नाइया ।
८. आ० १२ दीयडे ।
यह छद आ० २ खड ३ में ४४, आ० ६ खड ३ मे ४१, आ० ६ में ६०, आ० १२ में १८० है । लेकिन आ० २ और आ० ६ म १ ली पक्ति के अतिरिक्त अन्य पक्तियाँ इस प्रकार हैं –
१. लाघ्या वृ परवत दुरघट घाट ।
३ तुम कारण दूत रमिया (दूत रतरा आ० ६) ।
४. सूना सामर का रिवास ।
५. सूना चउरा (चउरा आ० ६) चउपड़ा ।
६. सूना मदिर मड (गड आ० ६) कविलास ।
९ आ० ६ गोरडी ।
१०. आ० २ किणइ दुप, आ० १२ विधि । आ ६ का दुप ।
११. आ० २, आ० ६ चावल, आ० १२ मोताग ।
१२. आ० २, आ० ६ वीयणी ।
१३. आ० ६ गोपे, आ १२ गोंप ।

चित चोपउ[1] मा ऊमलउ[2]।
उणितउ गुह पग देइ[3] कहइ[4] सदेस ॥
जइ सुग्हे राखजौ नाईया[5]।
तउ धण[6] हीयडउ[7] फाटि मरेसि ॥१६६॥

तब चमकिउ[8] मरि उठियउ[9] समरि चाल।
आपणा आडा[10] फिरि गया जाल ॥
इहुरि जनम अहिलाउ गयउ[11]।
तब राजा हो वीसल चीतव्यउ राइ ॥
विदा करउ म्हानइ राइ जी[12]।
पाछइ वियामइ म्हारइ[13] मोटा काज ॥१६७॥

---

१. अ० २, आ० ६ मुपि महराइ, आ० ८ चित दोपो, आ० १२ चित चोपै।
२. अ० २ चित ऊजलउ, आ० ६ चित निरमल, आ० ८ मन ऊपनो, आ० १२ मन ओरसै।
३. अ० ५, आ० ८ उतरी।
४. अ० ५, आ० ६ कहोहो, आ० ८ नै कह्यो।
५. आ० १२ नाइया।
६. आ० १२ साधण।
७. आ० १२ हियडेइ।
यह छंद अ० २ खंड ३ में ५५, आ० ६ खंड ३ में ५२, आ० ८ में १६८ तथा आ० १२ में १८१ है।
"लेकिन आ० १२ में ४था पंक्ति है—"मुहपग देइ ने कह्यो सदेस।"
८. आ० १२ चमकि।
९. आ० १२ ऊठीया
१०. आ० ८ आव्या आडा, आ० १२ आवीया।
११. आ० ८ इरे जनम अटेलो गयो, आ० १२ गहरे जनम आहिलौगयो।
१२. आ० १२ देवजी।
१३. आ० ८ म्हादरे, आ० १२ म्हादरा।
यह छंद आ० ८ में १६९ तथा आ० १२ में १८२ है।

साठि भरड सुम्दे सड च्यारि ।
भरिज्यो[1] अरथ दरब[2] भंडार ॥
भरिज्यो हीरा पाथरी ।
पुरिपौन्यड बोलड बोलि विचारि[3] ॥
चहुउ दम रठ जे सुखउ ।
सउ सुम्दे चालिज्यो वृतिवारि[4] ॥१६८॥

सब भीतरि संचर्‌या दुउनंउ[5] राउ ।
भानमती राणी लीयउ[6] बोलाइ[7] ॥

---

१. आ० ६ भरो थे ।
२. आ० १२ गरथ ।
३. आ० १२ पूरब्यो, बोलविचार ।
४. आ० १२ एतीथवार ।

यह छन्द अ० २ खड ३ में ६१, आ० ६ खंड ३ में ५८, ५६, आ० ६ में ०० तथा आ० १२ में १८३ है ।
किन्तु अ० २ और आ० ६ में इसका पाठ इस प्रकार है—

"चोकै पाड्यौ अरी परधान ।
दीधा छे जन तिहा चउगुणउं मान ॥
चौकी चामर बससएइ ।
नव गज ऊंचा हाथी च्यार ॥
आण्या छै अरथ कै दरब भंडार ।
आएया हीरा पाथरी ।
दाधा ताजी मात गयद ॥
कबाइ पट्टराइ नव-त ी ।
चाल्यो राजा मास बसन्त ॥"

आ० १२ में १ली पंक्ति है :—
"साठड़ी रिड्यो सह सविच्यार ।"

५. अ० २ दोई, आ० ६ दुई, आ० ६ दोनु, आ० १२ दोनुं ।
६. अ० २ लीय, आ० ६ लीया, आ० १२ लीयो ।
७. अ० २ बोलाई, आ० ६ बोलाय ।

उखगायउ घरि पाधियइ ।
नयण[1] भरइ[2] मद करइ सुहार ।।
चिरिजीवे म्हारी बीर तू[3] ।
राणी कोटि टका कउ दीन्हउ उपहार[4] ।।
म्हारी भावन गइ सुपिउधा[5] ।
गिह कउ पीहर छइ भोज धी धारि[6] ।।१६६।।

तू रहु बीर तू[7] घरि[8] न जाइ[9] ।
थारा[10] करिस्या[11] च्यारि वीवाह[12] ।।

---

१ + २ आ० ६ नाणमरथ, आ० १२ नयण भर्या ।
३ आ० ६ म्हा वा बार सूं ।
४ आ० ५ आपीयो ।
५ आ० ५ थ सांपिया ।
६ आ० १० राजा भाज की धारि ।

यह छंद अ० ५ खंड २ में ६५, आ० ६ खंड २ म ६०, आ० ६ म २ १ तथा आ० १५ में १८४ है ।

लेकिन अ० २ और आ० ६ म इसकी ४, ५, ६ ठी पंक्तियाँ हैं —

४ सइ सदेसी नया (सानइआ आ० ६) उपरिपान ।
५ म्हा चइठा म बावरो ।
६ रह्यो तो उडीसा परधान ।

७ अ० २, आ० ६ प्रधान तु, आ० १२ चोसल वीर ।
८ अ० २ जी, आ० ६ परहा, आ० १२ (में नहीं है) ।
९ अ० २ मतो जाइ, आ० ६ न जाय, आ० ६ म जाइ, आ० १२ जाहि ।
१० अ० २ थारो ।
११ अ० २ कराऊ हू, आ० ६ करू हूं, आ० ६ करेस्या, आ० १२ करिस्यौ ।
१२ अ० २ दोती व्याह, आ० ६ थारो व्याह, आ० ६ च्यारे वीवाह ।

तुइ[1] गोरी दुइ सावली[2] ।
राइ भतीजो[3] राज कुमारि[4] ॥
बहिन दिवाइ[5] सोनइ रावळी[6] ।
धारा ब्याइ करावड गम नइ[7] पारि[8] ॥२००॥

रहि[9] पहिनदो[10] माम हारि[11] ।
म्हारइ[12] सईस मीया[13] छइ घरि की नारि[14] ॥
एक एका थी आगली[15] ।
म्हारइ[16] त्रिया छइ रतन ससारि ॥

---

१ अ० २, आ० ६ एक गारा ।
२ अ० २ आ० ६ पूजी सामली ।
३ आ० ६ राज भतीजो ।
४ अ० , आ० ६ नयण सुतार ।
५ आ० ६ दिवाडू, अ , आ ६ दे वाङ्ग ।
६ अ० ४ देवकी, आ० ६ राउकी ।
७ अ० २ गगानर, आ० १२ गग क ।
८ आ० ६ दुवारि ।

यह छंद आ० १४ म १८५ है । लेकिन आ० १२ में इस छन्द की २, ४, ५, पंक्तियाँ नहीं है । और तीसरा पंक्ति है —

"दुगारली धारा व्याह म ।"

९ आ० ६ रहु रहु, आ० १२ हरिय ।
१० अ० २ नइहन आ० ६ नेहनडी ।
११ अ० २ नचन न् हारि, आ० ६ वच । म हारि, आ० महारि ।
१२ आ० ६ अम, आ० १२ (म नहीं है) ।
१३ अ० २ घर साहि, आ० ६ घरि साहि ।
१४ अ० २, आ० ६ अतेवरि, आ० म्हादरै छै घर माहि ।
१५ आ० ६ चलाय थो ।
१६ अ० २, आ ६ (में नहीं है), आ० १० म्हारै एक ।

प्रेम पीयारी चाकड़ी ।
उपारइ[1] पीहर[2] छइ[3] गढ़ मांडवधार ॥२०१॥
घंट भरें[4] भरं[5] दीन्ही[6] पान ।
सराउ[7] देम उडीसा[8] परधान ॥
आवी चादरि[9] बइसतइ[10] ।
म्हाका सग[11] सुर्णजा[12] तकया आज[13] ॥
पूठि उघाड़ा[14] बहु बहुसवइ[15] ।
तउ[16] प्रिया कारणि फेरियउ[17] राज ॥२०२॥

१+२. अ० २ जाकर पीहर छइ, आ० ६ जेके पीहर, आ० १२ जिणरी पीहर ।
३. आ० १२ (में नहीं है)
यह छुंद अ० २ खंड ३ में ६५, आ० ६ खंड ३ में ६३, आ० ९ में २०३ तथा आ० १२ में १८६ है ।
४+५ आ० १२ भरो भरी । ६. आ० ९ दीना, आ० १२ दीन्हा छै ।
७. आ १२ (में नहीं है) ।
८ आ० ९ उडोसा की, आ० १२ उडहीसा का ।
९. आ० ९ चादर, आ० १२ चावरि ।
१०. आ० ९ बैसतो, आ० १२ बैसणे ।
११. आ० ९ सग, आ० १२ (में नहीं है) ।
१२. आ० ९ सर्णेजा ।
१३. अ० २, आ० ६ ताकसी पूठि, आ० १२ ताकवा आज ।
१४. आ० १२ उघाडो । १५. आ० १२ म्हारी हिर हुई ।
१६. आ० १२ त ता । १७. आ० १२ फेरयो ।
यह छंद अ० २ खंड ३ में ६६, आ० ६ खंड ३ में ६४, आ० ९ में २०४, आ० १२ में १८७ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में १, २, ५ और ६ पंक्तियां इस प्रकार हैं :–
१ सेवा पूरी चाल्या धरि राव ।
२. ढाली लागै मिलैछइ राइ ॥
५. जुग (कलि माहि–आ० ६) पापने न अवतर्‌यो (वापर्‌यो आ० ६) ।
६. राजा के कारण विणसस लक ।

राव रई[1] मिलिम्यउ[2] परिवउ राउ ।
कृष्णा[3] बांभण तटइ चौगोउ बोलाइ ।।
समझाइ जै मोहित राउ का[4] ।
तहै आंचिअ आंसु लइइ[5] राउ[6] ।।
सुप थी बोल न नीसरइ[7] ।
सिधि करउ तुम्हे बीसलराउ ।।२०३।।

राजा सउ[8] मिस्यउ[9] बीसल राउ[10] ।
जाप दीन्हा विहा बुलइ कवाइ ।।
दीन्हा हीरा पाटरी ।
दीन्हा ढोलनइ[11] नीसाणि ।।
रावइ नइ[12] परिवउ बोलवइ[13] ।
देय सउ[14] सिद्ध करउ बीसल चहु भाण ।।२०४।।

---

१. आ० १२ राउमु ।
२. आ० १२ मिलीयोछै ।
३. आ० १२ किसन ।
४. आ० १२ रावला ।
५. आ० १२ लहू ।
६. आ० १२ राइ ।
७ आ० १२ नीसरै ।

यह छंद आ० ६ म २०५ तथा आ० १२ में १८८ है ।

८. आ० १२ सुखि ।
६ आ० १२ मिलीयो छै ।
१०. आ० ६ बीसला राउ, आ० १२ बीसल राइ ।
११. आ० ६ ढोल अनइ, आ० १२ ढोल अनै ।
१२. आ० १२ रीजनइ ।
१३. आ० १२ बीनवी ।
१४. आ० १२ तो ।

यह छंद आ ६ मे २०६ तथा आ० १२ म १८६ है ।

तठइ[1] पटइ दिवावइ[2] वीसल राउ।
छइ कोइ[3] अजमेरइ जाइ॥
लाष टका देव[4] गाठि का[5]।
द्व यउ[6] चीरी लिपि दिउ[7] मनइ[8] सुभाइ॥
दिन[9] चढ्[10] नइ[11] म्है आविस्या।
सतवंती राणि नइ कहिज्यो जाइ॥२०७॥

तठइ[12] जोगिनउ[13] एक अपूरव राउ।
जइ[14] मन[15] धरइ तो[16] सांभरि जाइ॥
चवल चपल सुचालणउ[17]।
थे तउ पूछउ जोगी नइ बोलावइ राइ॥

---

१. आ० १२ तठै।
२. आ० १२ दिवाईयो।
३. आ० ६ कोइ आज, आ० १२ कोई आज।
४. आ० ६ द्युंगा, आ० १२ द्यउ।
५ आ० १२ रोकड़ा।
६. आ० १२ (में नहा है)।
७. आ० १२ दीयउ।
८ आ० १२ (में नहीं है)।
९+१०+११ आ० ६ दिन चिढ़ु में, आ० १० चिढ़े दिन नै।
यह छंद आ० ६ में २०६ तथा आ० १० में २०७ है।
१२+१३. आ० ६ अठै जोगनो, आ० ६, अ० २ जोगी एक, आ० १२ तठैजोगनुउ।
१४. अ० २, आ० ६ (में नहा है) आ० १० जउ।
१५. आ० ६ मन तो,
१६. आ० १२ तउ।
१७. अ० २ अरि चालणइ, आ० ६ चालणो, आ० ६ सुचाचलो, आ० १० सो चालणो।

जो मागइ[1] सो आपियो[2]।
उपिनइ[3] पाटण सरसा बारह गाम ॥२०८॥

आइउ जोगी राजा पोगउ आदेस।
भगवां कापड़ा मइला वेसि॥
कांपि अधारीय[4] सिरि जटा।
अपिउड सोना-सीगी पूरियउ[5] नाद॥
रतन जड़ित का[6] मेषला।
ऊकइ[7] चमर[8] करोटीय[9] दाउडी[10] पाइ[11]॥
गढ़ अजमेरी गम करउ।
पगइ करी जोडी नइ पगि पडइ राउ ॥२०९॥

---

१. अ० २ ज्यो मागी, आ० १२ जौ मागइ।
२. अ० २ ज्यू आलज्यौ।   ३. आ० १२ (में नहीं है)।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ६६, आ० ६ खंड ३ में ६७, आ० ६ में २१० तथा आ० १२ में २०३ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में ४ और ६ हैं—

४. रूप अपूरब (सुन्दर नै—आ० ६) बालिय वेस।
६. पाटण सरिसा नयर असेस।

४. आ० १२ आपरी।
५. आ० १२ पूरीयो।
६. आ० १२ कडि।
७. आ० १२ उगारै।
८. आ० १२ चज।
९. आ० ० कळोटडी।
१०. आ० १२ पाचडी।
११. आ० ६ पाग, आ० १२ पग।

यह छंद आ० ६ मे २११ तथा आ० १२ में २०६ है।
लेकिन आ० १२ मे अतिम पक्ति है :—
करजोडी राजा पाय पडति।

जोगनउ[1] बोलइ[2] धरइ नरेस।
अभूमीयउ[3] रावळ[4] भइ परिदेसि ॥
राज मबधि[5] राणी धणी[6]।
राउ कहि गइ[7] काँगळ[8] लिखनइ देसि ॥
दिठि दिठी नवि उल्लपउ।
गढ़ अजमेरि गउ भुवाडुं परदेसि ॥२१०॥

---

१ अ० ७, आ० ६ जोगी, आ० १२ जोगिनो।
२. अ० २, आ० ६ कहइ, आ० ६ बोलियो (इसके बाद अ० ७, आ० ६ में सुनि आ० ६ में सुन हो, है)।
३ आ० १२ अभूमियो।
४. आ० १२ रावलै।
५. अ० २ राजधणी, आ० ६ राजपरिधि।
६. आ० ६ रावलभणी।
७ आ० १२ तुम्हे कहा
८ आ० १२ कागद।

यह छंद अ० २ खंड ३ मे ७०, आ० ६ खंड ३ में ६८, आ० ६ मे २१० तथा आ० १२ मे २०५ है।
लेकिन अ० २ और आ० ६ मे २, ४, ५, ६ इस प्रकार हैं :—

२ बिण उणहारउ किहा लहेस।
४ ऊँचै गोखइ लोबइ नाक।
५ जीव पराया (आ० ६, जिणी परे) ओलकाइ (धणजा-मलई आ० ६)।
६. चोरी प्रभु (दीज्यो, आ० ६) धरण कइ हाथि।

आ० १२ मे ५ वी और ६ ठी पक्तियाँ हैं :—

५. छिनिही दानविड लघु।
६. गढ मेर गुजलै पटसि।

कुवण[1] विद्या अछइ तुम्ह कन्हइ ।
स्वामी कहइ तुम्ह जाणउ मेलक मंत[2] ॥
कहइ तुम्ह काया साधता[3] ।
स्वामी[4] कहइ परकाइ[5] पै[6] करउ प्रवेस ॥
कहइ पंथी हुइ संचरइ ।
नाथ जी किम साधउ[7] परदेस ॥२१२॥

तब[8] जोगिनउ तिण बोलइ तिण ठाइ[9] ।
वचन हुइ म्हारा[10] सांभलउ राउ[11] ॥
गुटक[12] विद्या छइ[13] म्हा[14] कन्हइ ।
म्हे[15] गुटकउ गिळी करा[16] गुरउपदेसि[17] ॥

---

१. आ० १२ कवण ।
२. आ० १२ मेलकि तंत ।
३. आ० १२ तुम्हे काई साधना ।
४. आ० १२ (में नहीं है) ।
५. आ० १२ परकाया ।
६. आ० १२ (में नहीं है) ।
७. आ० १२ किणपरि साधउ ।

यह छंद आ० ६ में २१४, तथा आ० १२ में २०७ है ।

८. आ० १२ (में नहीं है) ।
९. आ० ६ तिह ठाइ ।
१०. आ० १२ म्हाका वचन हुइ ।
११. आ० १२ सामलि राइ ।
१२. आ० १२ गुटिका ।
१३+१४ आ० ६ छै अम्ह, आ० १२ अछै म्हां ।
१५. आ० १२ (में नहीं है) ।
१६. आ० १२ करु ।
१७. आ० ६ गुरूपदेस, आ० १२ उपदेस ।

खाधि ठमका माहि सचरा[1] ।
म्हे तउ मण विधि [2]राव रायी[3] परदेस ॥२१३॥

थे तउ पाघउ हों[4] जोगी न खावइ वार ।
तदपिया जाइ अपविग्यो[5] सार ॥
राजमती राणी मइ धन[6] कहे ।
नारी घर मइ उमाहियउ वीसलराउ ॥
तुरीय पलाण्या[7] छइ ✓काढिदा[8] ।
दिन विहु माहि मिले सीय[9] आइ[10] ॥२१४॥

तवइ जाणिजउ चालिउ छइ[11] गुदिकउ पइ ।
सींगो नाद पूरउ[12] तिण ठाइ ॥
गुरू का वचन समरथ करया[13] ।
उदु तउ[14] घरती भूलि न देईय[15] पाउ ॥

---

१. आ० १२ सचरू ।
२ आ० ६ म्हे इणाविधि, आ० १२ इणिविधि ।
३ आ० ६ राय गाधा, आ० १२ साभाराव ।
यह छंद आ० ६ में २१५ है तथा आ० १२ में २०८ है ।
४. आ० १२ (में नहीं है) ।
५ आ० १२ आयोज्यो ।
६ आ० १२ इम ।
७. आ० १२ पलाण्यीय ।
८ आ० ६ काढिजा, आ० १२ पाघरया ।
६ + १० आ० ६ तुम्हा मिलिस्यइ राइ, आ० १२ मिलसी आइ ।
यह छंद आ० ६ में २१६ तथा आ० १२ में २०६ है ।
११. आ० १२ (में नहीं है) ।
१२ आ० १२ सागानाद पूरइ ।
१३ आ० १२ समरथया ।
१४. आ० १२ उडनी ।   १५ आ० १२ भूलन देवइ ।

इतरी च्यारि करि गम कराइ।
जोगी दुसइ दिन आवयउ संभरि माहि ॥२१५॥

तब जोगनउ[1] आवउ[2] हो संभरि माहि।
ग्रीकी नगरीय सुवस वसाइ॥
नवखंडी नवि पंड[3] जाणिजइ[4]।
तठइ[5] पाट मंडे दे रायी बीयउ[6] बोलाय॥
बोलस दे को मुजरा[7]।
रायी राजमती नइ देज्यो जाइ ॥२१६॥

वणरा[8] बाहर फटूकइ[9] लहलहइ[10] बाद।
कइ छिपे[11] मोकलइ कइ मिलइ आप॥
अहर[12] फटूकइ[13] तन[14] लवइ[15]।
कयिरद कडीया चारो[16] पुणिला रह ठाइ[17]॥

यह छंद आ० ६ में २१७ तथा आ० १२ में २१० है। लेकिन आ० १२ में अन्तिम दो पंक्तियाँ नहीं हैं।

१. आ० १२ नवयोगिनी।
२. आ० १२ आयो।
३. आ० १२ नवखंडा।
४. आ० १२ जाणीयै।
५. आ० १२ (में नहीं है)।
६. आ० १२ लीयो।
७. आ० १२ भुजडो।

यह छंद आ० ६ में २१८ तथा आ० १२ में २११ है।

८. आ० १२ उणिका।
९. आ० १२ फरके।
१०. आ० १२ लहाके।
११. आ० १२ के लेपणा।
१२. अ० २, आ० ६ अङ्ग।
१३. आ० १२ फरूके।
१४+१५. अ० २ चित हसे, आ० ६ मन हंसइ, आ० १२ तन लहे।
१६. अ० २ के हइया रो (आ० ६ को) चीर।
१७. अ० २ खीसेखीसो (आ० ६ खसलस) जाय।

मोनन अधिक उमाहउउ।
जाणउ आज मिलमइ[1] सर्वा सामरि याह[2] ॥२१७॥

तव जोगिनउ गइ अजमेर।
फिरि करि डीठाजी[3] च्यारं देस[4] ॥
पउलिपा पउलि उघाडि नइ।
राउ तउ[5] राजमती राणी नइ देषाइ ॥
छिपउ[6] आपउ राउ चहुआण कउ।
हुउ[7] मुषि वचन कहंउ[8] समझाइ ॥२१८॥

---

१. अ० २ तुम मिलसी, आ० ६ सकै तो मिलै मोहि, आ० ९ जाणो आज मिलै, आ० १२ जाणु आज मिलै।

२. अ० २ आ० ६ सींचरयो राइ, आ० १२ सांमरिराइ।

यह छद अ० २, खंड २ में ७८, आ० ६ खंड ३ में ७७, आ० ९ में २१६ तथा आ० १२ में २१२ है।

लेकिन अ० २ और आ० ६ में १ पक्ति है—आज सखी म्हारो परकै अग।

२ पक्ति है—नहीं है।

५ पक्ति है—हेत (आ० ६ चित्त) जणायो है सखी।

३ आ० १२ (में नहीं है)।

४. आ० ९ च्यारिउ सेर, आ० १२ चारू सेर।

५. आ० ९ तो।

६. आ० १२ लिष्यो।

७. आ० १२ हु।

८. आ० १२ वचने कहुं।

यह छद आ० ९ में २२० तथा आ० १२ में २१३ है।

लेकिन आ० १२ में १ली पक्ति है—

"योगनउ पहुतो गढ़ अजमेर।"

४ थी पक्ति है.—"राणी राजमती नै देहि बीनाइ।"

तब जोगिनउ[1] पइठउ जाउ नइ[2] पउद्धि ।
भसम सरीरि नइ[3] विभूति की पुडलि[4] ॥
आकि धतुरा अति[5] घणा[6] ।
सउइ[7] रायाँ नइ दासी होयसी थाइ ॥
साधण मोती पोवती ।
उग्[8] ततखिण[9] मोती दीया उछालि ॥२१६॥

---

१. आ० ६ जोगिनो, आ० १२ योगिनो ।
२ आ० ६ जाइ अरु बैठो, आ० १२ जाइ अरु बइठो ।
३ आ० १२ (में नहीं है) ।
४. आ० १२ विभुत की पालि ।
५. अ० २ विम, आ० १२ यअति ।
६ अ० २ घणचे ।
७ आ० १२ (में नहीं है) ।
८+९ आ० ६ ततखिणि, आ० १२ ऊठी ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ७६, ७७, आ० ६ खंड ३ में ७४, ७५ आ० ६ में २२१ तथा आ० १२ में २१४ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में यह छंद निम्न प्रकार है —

अ० २ (७६) आ० ६ (७४) जोगी बइठो पउलइ जाइ ।
धभूति सरीसी पोलि करइ ॥
आक धतूरा विस घणा ।
बोलइ बोलती बचन मुडाल(आ० ६ मुठोल)॥
राय लीध्यो तो आवीया ।
बेगी बधावइ रूपा की माल ॥

अ० २ (७७) आ० ६ (७५) राय आपण जाणो पोढता जाइ ।
जाइ प्रधान सुणाव्या माहि ॥
सघलो रावल हलहलै (आ० ६ कलमलै) ।
साधन पोवती मोती की माल
(माहि थाल आ० ६) ॥
दासी जाइ सुणावीयो ।
तव धन उठी मोतीय थालि ॥

पढइ जोगीनइ राषी जीपउ आदेस ।
भगवा कापड़ा मड्या वेस ॥
कुंडल कुंडल खाइस कहइ[1] ।
तवा तउ गोरडी[2] दीठी निर्मल गात्र ॥
दुषि दाधी पंजर हुइ[3] ।
दपिरइ[4] दिवस न भूष न नींदडी रात्रि[5] ॥२२०॥

तव[6] जोगिनउ द्वारइ[7] बइठउ आइ ।
सीस जटा घट[8] भस्मीय काय ॥
पावइ जैतेवर कमंडली[9] ।
ढउठ[10] सुधबिन पाखी कहइ संदेस ॥
रातमती स[11] कइ[12] जोगीपउ[13] ।
गोरी दिन चिहु गाहि आवेसी घाइ नरेस[14] ॥२२१॥

---

१. आ० १२ कहै ।
२. आ० १२ गोरी ।
३. आ० १२ पजरि हुई ।
४. आ० १२ उपभइ ।
५. आ० १२ राति ।

यह छंद आ० ६ में २२२ तथा आ० १२ में २१५ है ।

६ आ० १२ (में नहीं है) ।
७ आ० ६ द्वारे, आ० १२ बारयइ ।
८. आ० ६ घटि, आ० १२ घटि ।
६ आ० १२ कलनली ।
१० आ० १२ (में नहीं है) ।
११ + १ . आ० ६ सुद्दु , आ० १२ सु कहै ।
१३ आ० ६ जोगिनउ, आ० १२ जोगीयो ।
१४. आ० १२ आविसी धरा नरेस ।

यह छंद आ० ६ में २२३ तथा आ० १२ में २१६ है ।

स्वामी कवण[1] देसावइ[2] कवण[3] सुठाइ[4] ।
थारइ परसण कइ बलिहारी[5] जाउ ॥
घाघरया जउ थारो जीम की।
स्वामी दिल चहुमाहि छे[6] आवइ[7] राइ[8] ॥
रतन जड़त दउ[9] गेवड़ा।
थारइ[10] सोना की मुद्रा व घालु[11]जी कानि ॥
नयणे राव जव[12] देषियउ।
जोसी वचन साचउ करे[13] म्हाउ मानि ॥२२२॥

चीरी दीन्ही[14] जोगी[15] रायी कइ[16] हाथि।
सात सषी[17] मिलि[18] आसीस[19] साथि ॥

१+२. आ० ६ कोण दिसाउर, आ० १२ कवण देसतरो।
३+४ आ० ६ कोण सुठाउ।
५. आ० ६ बलिय।
६+७ आ० ६ जो आवै, आ० १२ में 'छे' (नहीं है) आवि।
८. आ० ६ आप।
९. आ० ६ पउ, आ० १२ घ सीगी।
१० आ० १२ थारै।
११. आ० १२ घालु।
१२. आ० १२ राव जी।
१३. आ० १२ स्यचौ करे।

यह छंद आ० ६ में २२४ तथा आ० १२ में २२८ है। लेकिन तीसरी पंक्ति में प्रथम शब्द अस्पष्ट है शेष पंक्ति इस प्रकार है — ष्तु थारा जीम को।

१४+१५. आ० २ मेल्ही घण, आ० ६ भेजी घण, आ० ६ दीन्ही, रायी, आ० १२ चीरी दीन्ही योगी।
१६. आ० ६ जोगी के, आ० १२ घण कै।
१७. आ० २, आ० ६ पांच सहेली।
१८+१९ आ० २ मिलि घण, आ० ६ आचा।

जिण[1] विण घड़ीय न जावता[2]।
तिवइ ताइ स्य हुइ[3] चीरी विवहार ॥२२४॥

सठइ सात[4] सहेली बइठी छइ धाइ।
जो लिषउ[5] भोलो[6] ते हमहि[7] सुषाइ॥
सामल लीषउ[8] हे बहिनड़ी।
म्हाकइ साम्हइ[9] हीयडइ[10] जीभणी[11] धूप॥
दुइ दुष लागा था प्रीउ[12] का[13]।
सषी कन्त सरेवी पेखती आज[14]॥
घणा विसहर[15] मीयउ गारुडो।
ते गुण लिख्या हे सँभरि वाल॥२२५॥

---

१. अ० २ जीवन, आ० ६ ज्या।
२. आ० १२ जोवती।
३. आ० १२ जाइ संदूयउ।
यह छंद अ० २ खंड ३ में ८०, आ० ६ खंड ३ में ७८, आ० ६ में २२६ तथा आ० १२ में २२० है। लेकिन अ० २ में चौथी पंक्ति है –
"कब में भेटस्या सामरूया राव।"
४. अ० २ आ० ६ पंच।
५. अ० २ लिषी सखी, आ० १२ लिख्ये।
६. अ० २ तैरव, आ० ६ तेरो।
७. अ० २ तेसषी, आ० १२ सो हमहि।
८. आ० ६ लिख्यो है, आ० १२ लिख्यो।
९. अ० २ सामहै, आ० ६ सांरी आ० १२ साम्हो।
१०. आ० ६ हूइ।
११. अ० २, आ० ६ डाजी जो।
१२. अ० २ साम, आ० ६ देव, आ० १२ प्रीय।
१३. आ० १२ काकन।
१४. अ० २ करत आलि।
१५. आ० ६ प्रीयविसारि।

उवइ[1] गूपड जोगिनउ[2] नवि[3] कहइ वात ।
ठिणि उयइ[4] अंहसि सउ[5] पहीय नइ घेउर[6] भात[7] ॥
दूप फटांइ धाहहुं ।
याड़ा पायम घणीय निवात ॥
सुमणउ जीमे वीरा[8] जोगीया ।
हिवइ हसि हांस कढउ म्हारा[8] पीयड़ी[9] वात ॥२२१॥

यह छंद प्रा० २ खंड ३ में २८, प्रा० ६ खंड ३ में २६, १२ में २२१ है। लेकिन प्रा० १२ में छठी और सातवीं पंक्तियाँ हैं :—

६. "सरेसीय येलै थी प्राल ।"
७. "विसहर मिय गारुडी ।"

१. प्रा० १२ (में नहीं है)।
२. प्रा० १२ भूपोजोगनउ ।
३. प्रा० १२ न ।
४. प्रा० १२ (में नहीं है)।
५. प्रा० ६ रउ, प्रा० १२ कौ ।
६. प्रा० ६ घी श्रद, प्रा० १२ घणीय ।
७. प्रा० १२ वात ।
८. प्रा० १२ म्हारा ।
९. प्रा० ९ मीवथी, प्रा० १२ मीतकी ।

यह छंद प्रा० २ खंड ३ में ८१, प्रा० ६ खंड ३ में ७६, प्रा० ९ में २४८, प्रा० १२ में २२२ है। लेकिन प्रा० ९ में इसकी पाँचवीं पंक्ति नहीं है तथा प्रा० २ और प्रा० ६ में इसका पाठ है :—

"जोगी था कीनु कहइ छो वात ।
दूधइन्निद्यावर्ड (प्रा० ६ तलावरनै) यणी निवात ।
भैंस को दहीय र गरड़ा को (मैं सीलो–प्रा० ६) भात ।
सुसतौ (सासतो–प्रा० ६) घी मे वीरा जोगिया ।
पद मिथि प्रागलि (प्रंगै–प्रा० ६) धाकइ छइ थाइ ।

तउ उचारइ[1] दूध मइ[2] घाट छ[3] मास ।
मविह मविह[4] थाज पकसिस्या[5] ॥
उग्गिनइ[6] दूध कटोरइ बधीय निवात ।
बीयबउ[7] दही मइ[8] नान्हो[9] मात ॥
थागइ बइसिती मावूछ[10] ।
हूँ तब हसि पूछिस्य म्हारा प्रीय की वात ।
तिथइ विलंबीहिव कहउ ।
स्वामी मोनइ दीन्ही था जीमणी बाह ॥
था जोगी पाझा नहीं ।
हिवइ कबे घरि आवइ हो धण को नाह ॥२२७॥

आगलि बइसी बीमावीयउ (आ० ६ बीमाडीयउ) ।
हसि हसि पूछइ प्रीउ ही वात ।

आ० १२ में तीसरी और चौथी पंक्तियाँ नहीं हैं ।

१. आ० १२ उग्गिमै उन्होनी ।
२. आ० १२ मरु ।
३. आ० १२ ठादौ ।
४. आ० १२ मांल ।
५. आ० १२ पइसस्या ।
६ आ० १२ (में नहीं है) ।
७. आ० १२ वापडीया ।
८. आ० १२ अस ।
९. आ० १२ न्हुन्होजी ।
१० आ० १२ मावरछु ।

यह छंद आ० ६ में २२६ तथा आ० १२ में २२३ है ।
लेकिन आ० १२ में छठी तथा अंतिम पंक्तियाँ हैं :—

६. हसि हसि पूछै स्यु प्रीय तणी वात ।
अंतिम ६. "हिव कदि आवै हो धण कउ नाह ।"

हिव दगावइ छइ अरथ द्रव भंडार ।
दपावइ छइ मेगीय सरल तोखार[1] ।।
दपावइ छइ हीरा पाथर्‌या[2] ।
नव गज[3] हस्तीय पूगर च्यारि[4] ॥
कहइ हमारी गोरी जे सुणउ ।
कालिह मेवदावे[5] पूठीय वार ॥२२८॥

राय[6] चउरासीया[7] देइ[8] छइ सीष ।
टमकी टमकी चालियो बीष ॥
तुरीय मेलाविज्यो निजि साउ[9] ।
पावन[10] वाहलइ[11] जिम सचाइ राइ ॥

---

१. आ० १२ तेजी सरल तुषार ।
२. आ० १२ पाथरी ।
३. आ० १२ नवगजा ।
४. आ० १२ च्यार ।
५. आ० १२ मिलाउ ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ८३, आ० ६ खंड ३ में ८०, आ० ६ में २३० तथा आ० १२ में २२४ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में इसका पाठ इस प्रकार है —

जोगी कहइ सुणि मोरी माई (माय–आ० ६) ।
दिन तीसरई आवई घरी राय (तोरा नाह–आ० ६) ।
हमरै देही (हमही देउ–आ० ६) बधामणी ।
दीधा मोती अरथ भंडार ।।
दीधा हीरा पाथरी ।
कालिह आवइ राजा पूठाय वार ।।
आ० १२ में पहली पंक्ति नहीं है ।

६. आ० ६ राउ, आ० १९ राउ ।
७ आ० ६ चोरासीया नै ।
८ आ० १२ दीये ।
९. आ० ६ तुरीय म लाविज्यो ताजणउ, आ० १२ तुरीय मलावज्यो ताजणौ ।
१०+११–आ० १२ पवन वाहना ।

सुन्दरी आइ दीपवइ घड़ी।
रहे घउ[1]पाखीय पीस्यों[2]उघा[3]कम्हइ जाय[4]॥२२६॥

नयर उदीसा थी पइइ[5] राइ।
आसखि इयवर छाप पसउ[6] ॥
ठकुराखा मथे[7] गयवा घइ।
सठइ[8] जुखमती तुरीय घउरासिया साथि॥
मजिल मजिल तुरी गटीयाइ[9]।
उतरु[10] दिवस गियाइन गियइ राति॥
चीपखता चिति गोइडि बसी[11]।
तठइ धुरि दस्या ढोख[12]नइ सरदरी भेरि॥
राजा मनिदि आखदीयउ[13]।
जब दिठि दीठउ गढ़ अजमेर॥२३०॥

---

१. आ० १२ (में नहीं है)।
२. आ० १२ पीस्यो।
३. आ० १२ उधि।
४. आ० १२ जाइ।
यह छंद आ० ६ में २३१ तथा आ० १२ में २२५ है।
५. आ० १२ चढ़ीयोलै।
६. आ० १२ पसाउ।
७. आ० १२ सवि।
८. आ० १२ (में नहीं है)।
९. आ० ६ पालटीयै, आ० १२ पालटै।
१०. आ० १२ (में नहीं है)।
११. आ० ६ चालता चित्त बसी गोरडी, आ० १२ चालतां चिति गोरी बसी।
१२. आ० ६ तठै धुराङ्या ढोल, आ० १२ धुरदर्‌या ढोल।
१३. आ० ६ राजामति आनदीयो, आ० १२ रागामनि आणदीयो।
यह छंद आ० ६ में २३२ तथा आ० १२ में २२६ है।

आज सखी लखहटी घुरइ नीसाण ।
घरि आयउ[1] बीसल चहुआण ॥
घरि घरि रलीय बधामणी ।
घरि घरि तोरण[2] मंगल च्यारि[3] ॥
घरि घरि गुडी उछलइ[4] ।
आज सखी[5] घरि आवियउ[6] सुधि[7] भरतार ॥२११॥

जब घर आवियउ[8] सुधि[9] भरतार ॥
अरमन जिम विय काइ[10] सिणगार ॥

---

१. आ० १२ आयो ।
२. आ० १२ (में नहीं है) ।
३. आ० १२ चार ।
४. आ० ६ ऊछली, आ० १२ उछली ।
५. आ० १२ अवसी ।
६. आ० १२ आयो ।
७. आ० १२ मुफ ।

यह छन्द अ० २ खंड ३ में ८६, आ० ६ खंड ३ में ८४, आ० ६ में २३३ तथा आ० १२ में २२७ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में इसका पाठ है :—

हिव बारमइ बरस घरि आवीयउ राउ ।
वाजित्र वाजिया निसाणे घाउ ॥
घरि घरि गुडी ऊछली ।
घरि घरि तोरण मगल च्यार ॥
रानी कुंवरि हरखी फिरइ ।
राउ घरि आवीयउ मुध भरतार ॥

८. आ० १२ आयो ।
९. आ० ६ सैं, आ० १२ मुंध ।
१०. आ० १२ धण केरै ।

भुमह[1] कोयट[2] चहोडिया।
नव कुच वंधू[3] मेवड़ा पची ॥
कत पियारइ[4] कारवइ।
तिण्य कारणि घण मेवहीया संधि ॥२१२॥

धरि आव्याउ[5] सपी सुजिकड कत।
सावण स्वामि सिउ[6] मिलिय हमंति ॥

---

१. आ० १२ तुमह।
२. आ० १२ कोवड।
३ आ० १२ पियारा।
४. आ० १२ कुंच।

यह छंद अ० २ खड ३ में ६६, ६७ आ० ६, खंड १ में ६४, ६५ आ० ६ में २३४ तथा आ० १२ में २२८ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ के क्रमशः ६६ और ६४ का पाठ है :—

बारा बरसां मील्यो घन (जव—आ० ६) नाह।
अरजण्य ज्यु घण लीयो सनाह।
कसतूरी मरदन (मैपट—आ० ६) कीयो।
झलरक (झलकइ—आ० ६) दीवली गहिरी थाह।
सावण पान समारिया।
धाइ करि बैठी धण (बैठी—आ० ६) प्रीउ की पाट।

तथा अ० २ के ६७ और आ० ६ के ६५ का पाठ है :—

अरजण ज्यु घण लीयो सनाह।
गलि पैहसयो टंकाहिलो (टकावल—आ० ६) हार।
कचु (कंचुकी—आ० ६) कसण ते (तव—आ० ६) खोलिया।
कु कु चन्दन सरइ (तिलक—आ० ६) स्यदूर।
कर जोडे (जोडी—आ०) नरपति कहइ (नाल्होकवि—आ०६)।
कामनी कत सुरत रमइ रस (रमि—आ० ६) पूर।

५. आ० १२ आयी।
६. आ० ६ सावण मिली।

मन्दिर चाली पीयउ कइ।
चोवा चन्दन भरउ[1] कचोल ॥
सेज पहुती सुंदरी।
तठइ[2] सगुण स्वामी सुं घरइ किलोल ॥२३४॥

सूडडस्यउ[3] घण पोलीयउ अंग।
सीस ससौभित[4] माडिय[5] मंग ॥
किरतागर चोवउ खोयउ[6]।
उयि[7] गलि पहिरइ कुसुमानलि माल[8] ॥
झमकि करि दीवउ वोलियो[9]।
तठइ साईया[10] हुया छइ[11] मुंध भरतार ॥

---

१. आ० ६ भर्‌यो, आ० १२ भर्‌यो।
२. आ० १२ (में नहीं है)।

यह छंद अ० २ खंड ४ में ४०, आ० ६ में २३६ तथा आ० १२ में २२० है। लेकिन अ० २ में इसकी ३, ४, ५ तथा ६ठी पंक्तियों का पाठ है:—

३—आवी अवासइ साचरी।
४— हीयडइ हरीष मन रंग अपार।
५—धन दीहाडउ आज कउ।
६—कुवर जगायउ छइ बीसल राउ।

३ आ० ६ सूकडि सिउं, आ० १२ सुकडिसु।
४. आ० १२ सीसै सोभित।
५. आ० ६ माडियउ।
६ अ० १२ चोवा लीयो।
७ आ० १२ (में नहीं है)।
८. आ० १२ हार।
✓९. आ० १२ समोइयो।
१० आ० १२ साइय।
११. आ० १२ (मे नहीं है)।

हडि हडि हसइ[1] आलिंगण देइ[2]।
पलिंगि न बइसइ न[3] पान न लेइ॥
उभी दइ[4] उलभड़ा[5]।
तोडइ छइ अगुंला[6] मोडइ छइ[7] बांह॥
पुरष भरोसउ[8] ना करि[9]।
तइ तउ बरस बारह की मेल्ही हो[10] नाह॥२३७॥

दस कला[11] मुसकला[12] मो न[13] सुहाइ।
धण कइ हिवडलइ[14] हाथ मलाइ॥

यह छंद अ० २ खंड ३ में ६८, आ० ६ खंड ५ में ६६, आ० ९ में २३८ तथा आ० १२ में २३२ है।

१ अ० २ आ० ६ रूठी गोरी, आ० १२ हड हड हसी।
२ अ० २ अंग न लेहि आ० ६ अंग न लाय, आ० ९ आलिंग देइ।
३ अ० २, आ० ६ नवि आ० १२ न बैसइ।
४ अ० २ दइछइ आ० १२ दीयइ।
५ अ० २ ओलभा।
६ अ० २ करि लागइ करि, आ० ६ आंगुली गहिना, आ० १२ तोडै छै आंगुली।
७ अ० २ मोरपूछइ आ० ६ मुरडइ, आ० १२ छै।
८ अ० २ कन भरोसो, आ० ६ कन भरूसो, आ० १२ पुरुष भरोसौ।
९ आ० ९ न करो, आ० १२ ना करो।
१० अ० २ किम रहज्यो, आ० ६ किम रहीजै।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ६४ आ० ६ खंड ३ में ६२, आ० ९ में २३९ तथा अ० १२ में २३३ है।

लेकिन आ० १२ में अंतिम पंक्ति है —

"बरस बारह कीत मेलीय नाह।"

११+१२ अ० २ आ० ६ चटकला मटकला।
१३ अ० २ मोहि।
१४ अ० २ धन कइ हीयडइ, आ० ६ धणहिडइपै, आ० १२ हीयडै।

छाज गहीं प्रिय[1] निरमर्मा[2] ।
म्हारा हो थारउ[3] सलग आइ ।
बालउ रे वेस[4] न देषहा[5] ।
हिवइ निगुण मुहि किसइ मेल्हाइ ॥२६८॥

हे नकटी तूं पाट उतारि ।
गलि पहिरसी फुला की मालि[6] ॥
नान्हो सउ[7] घुंघट काढसी ।
तउ गात[8] कउ वइ देलीय राखि[9] ॥

---

१ + २. अ० २ प्रीय मर्मा मरममा, आ० ६ प्रीउ नैमरमा, आ० १२ प्रिउ निरमना ।

३ अ० २ मेल्ही थाहि, आ० ६ रावली मेल्हः, आ० ६ म्हारो वारयउ, आ० १२, म्हारउ वारयउ ।

४. आ० ६ वालउ वीम, आ० १२ वालउ वैस ।

५. आ० ६ न देषडो, आ० १२ देषही ।

यह छन्द अ० २ छन्द २ में ४३, आ० ६ छन्द २ में ४०, आ० ६ में २४०, आ० १२ में २३४ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में ४, ५ हैं—

४. निगुणी राजा थारो किसो वेसास ।
५ करकी वाधू हू तिन गिए ।

आ० १२ में अंतिम पंक्ति है :—

"हिव निगुण मुह किसइ मिल्याइ ।"

६. आ० १२ फूला की माल ।

७. आ० ६ नान्हउ सउ, आ० १२ नान्हउ सउ ।

८. आ० १२ गात्र ।

९. आ० ६ हालि, आ० १२ पूहे तीउलि ।

कीया[1] आजत्रा[2] आकुडया[3] ।
गहे तउ[4] तिणि घणि मेवहीय मायइ मारि ॥२३९॥

तइ तउ उत्तम गाइ किसउ कीयउ नाइ[5] ।
मोडिउ सीस[6] न दीन्हीय[7] घोइ ॥
कठिन पटहर ना मिलया[8] ।
तहे[9] तउ अंग स अग न मीडीयउ राउ ॥
जंघ जुगल जोड़्या नहीं ।
राउ जी[10] सेजि विछाय, न पेलीय[11] पेखि ॥२४०॥

---

१. आ० ६ काया ।
२ आ० १२ आजत ।
३ आ० १२ अकुडा ।
४. आ० १२ (में नहीं है)।
यह छंद आ० ६ में २४१ तथा आ० १२ में २३५ है ।
५ अ० २ काइ कियो नाह, आ० ६ तइ की कीयउ नाह, आ० १२ किसु कियो नाह ।
६. अ० २, आ० ६ मोडीउ सीसो आ० ६ मोल्यो सीसै, आ० १२ मोडीया सीस नै ।
७ अ० २ नूसतो, आ० १२ नहीं दीयो ।
८ आ० १२ मल्या ।
६ आ० १२ तई ।
१०. अ २ रग भरि रमणि, आ० ९ राजा, आ० २१ राजा ।
११ अ० २ नू माडिया, आ० १२ पेलियो ।
यह छंद अ० २ खंड ३ मे १००, आ० ६ खंड ३ में ६८, अ० ६ म ७४२ तथा आ० १२ में २३६ है। लेकिन अ० और आ० ६ म चौथा, पाँचवीं और छठी पंक्तियाँ हैं —
४ केली गरम सा तू मिलण गात ।
५ जाघ जोडाची, नू नीरखीयो (आ० ६ न निरख्यो नाह ।)

तब बोलइ बीसल चहुआण।
थमीय सूं मूंघ न मेलइ, मान[1] ॥
इकु माण तुस ही मलइ[2]।
परन पारइ छोडा[3] हे नारि ॥
चुवचन था उलग गयउ।
अजू सूं गरब न[4] छोडइ गमारि[5] ॥२२१॥

रूसणा कपउ स्वामी सुणउ विचार।
रूसणु[6] मीठउ सुणि[7] भरतार ॥
मीत परेवा[8] आगळो।
मीति थी[9] स्वामी साटलो[10] नीर ॥

और छठी पंक्ति उपर्युक्त छंद की अंतिम पंक्ति है। इसके अतिरिक्त इन दोनों प्रतियों में दो और पंक्तियाँ हैं—

देव सताजी (राजाजी–आ० ६)
राजा तु फिरइ (देव हताधीयो–आ० ६)
घीव वीसाही (घी वसायो–आ० ६)
तु जीमो छइ तेल (जीयो तेल–आ० ६)

आ० १२ में भी दो अतिरिक्त पंक्तियाँ हैं:—

"अमृत अधर न घू टिया।
तइ तउ घी विणठ्यो अर जीमीयो तेल।"

१. आ. ११ मेलहै माण।
२. आ० ६ इहु माण तुम्हई मले, आ० १२ इणि माणै तू ही माल।
३. आ० १२ 'बारह आ' 'छुडा' के बीच में "लाग" है।
४. आ० ६ अजो गरब, आ० १२ अजीयतू गर्वन।
५. आ० ६ तू न तिजै गमारि, आ० १२ तजै गवारि।
यह छंद आ० ६ में २४३ तथा आ० १२ में २३७ है।
६. आ० १२ रुसणो।
७. आ० १२ सु।
८. आ० १२ पारे।
९. आ० १२ मीठा जीसा।
१०. आ० १२ माछला।

प्रीति मोरा अरु दादुरा।
प्रीति मोटो म्हाक[1] अरध सरीरि[2] ॥२४२॥

ऊझगा पूगी[3] घरि आवउ भरतार।
लागि करि ढलरि[4] समुद्र कउ पार[5] ॥
कलंकन कोइ सिरि चाड़िउ[6]।
वाघतउ जोवन[7] विरह की झाल[8] ॥
लंघण को लाग्यउ[9] नहीं।
म्हा तउ[10] पगि पगि सपीय न छविय उ आछ[11] ॥२४३॥

---

१. आ० ६ म्हाकै, आ० १२ म्हाके।
२. आ० ६ अधर सरीर।
यह छन्द आ० ६ में २४४ तथा आ० १२ में २३८ है।

३ आ० १२ पहुती।
४. अ० २ जागि क उलटइ, आ० ६ जागि कि उतरइ, आ० १२ जागि कि उतरि।
५. अ० २ समद अथाह।
६ अ० २ अकलक कलक मो चढ़्यो, आ० ६ अकलकलंक मोहि न चढ़्यो।
७ अ० २, आ० ६ सामुहो जोवन, आ० १२ वाघते योवन।
८. अ० २ बीरह बीकराल, आ० १२ विरह की फाल।
९ आ० १२ लागा।
१० ^२ (म नहीं है)।
११. अ० २ सोलपा मइइ अ ल, आ० ६ सवी गो भाड़ता आल, आ० १२ ग्रा़ीया आल।

यह छन्द अ० २ खड ३ में ८८, आ० ६ खड ३ में ८६, आ० ६ में २४५ तथा आ० १२ म २३६ है। लेकिन इसकी पांचवीं पंक्ति अ० २ और आ० ६ मे है:—

"अण वलइ दव (वन-आ० ६) परजलै।"

धन्य हो पंडिया धन्य हो राइ ।
नपर पंडाया दिवस लियाइ ॥
धन्य हो जोगी[1] दरसणी ।
जिणि वेगि ले मेलउ धणकउ नाह[2] ॥
धन्य दिहाडउ आज कउ ॥२४४॥

संवत सहस सतिहितरइ[3] जाणि ।
नवइ कवीसरि कही अमृत वाणि[4] ॥
गुण गुथ्यां चउहाण का ।
सुकल पक्ष पंचमी श्रावण मास ॥
रोहणी नक्षत्र सोहामणउ ।
सो दिन[5] गिणि जोइसी जोडइ[6] रास ॥२४५॥

---

१ आ० १२ जोगीय ।

२. आ० ६ मेलव्यउ धण को नाह, आ० १० वेगिमिनायो धण को नाह ।

यह छंद आ० ६ में २४५ तथा आ० १२ में २४० है । लेकिन आ० ६ में उपर्युक्त ५, ६ नहीं हैं । और उपर्युक्त ३ के पूर्व निम्नलिखित और है —

धन्य हो गोरी गुण भरी ।
धन्य हो पूरव्यउ समण कहाइ ।
धन्य वैरागर मत्रवी ।
भानुमती रमणी घ य सभाइ ।

आ० १२ में दूसरी पंक्ति नहीं है तथा अंतिम पंक्ति के अतिरिक्त एक निम्न पंक्ति और है—

"राणी राजमती मिल्या बीसल राउ ।"

३. आ० १२ तिहुत्तरै ।

४ आ० १२ सरसीनवाणी ।

५. आ० १२ सुदिन ।

६ आ० ६ जोइसी जोड्यो, आ० १२ जोडीयो ।

यह छंद आ० ६ में २४७ तथा आ० १२ में २४२ है ।

फनक काया जिसी[१] कूं कूं रोल[२]।
कठिन पयोहर रतन[३] कचोल ।।
केलि गरभ जिसी कूं यली[४]।
घीलइ[५] घण जब पीचइ नीक[६] ।।
मोडिकडि चालइ[७] गोरडी ।
उस की विरह वेदना[८] ना सहइ कोइ ।।
जिउं राजा राणी[९] मिल्या[१०] ।
स्यउ[११] नाल्ह कहइ[१२] मिजिज्यो सहु कोइ[१३]।।२४६।।

---

१. अ० २ घट ।
२. अ० २, आ० ६ कू कू लोल, आ० ६ कूंको रोल ।
३. आ० १२ हेम ।
४. आ० ६ कूंयली, आ० १२ रूरकी आगली ।
५. आ० १२ घीइल ।
६. आ० १२ जब घण मोडै नाक ।
७. आ० ६ का चालउ, आ० १२ कडिमोडै चाले ।
८. आ० ६ वेदन ।
९. अ० २, आ० ६ राणीसु ।
१०. अ० २, आ० ६ मिलयो ।
११. अ० २ य, आ० ६ (में नहीं है) आ० ६ स्यु, आ० १२ स्यु ।
१२. अ० २, आ० ६ इणी करि, आ० ६ नलइ कहै, आ० नाल्ह कहै ।
१३. अ० २, आ० ६ सब कोइ ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में १०१, आ० ६ खंड ३ में ६६, आ० ६ में २४८ तथा आ० १२ में २४२ है ।

॥ समाप्त ॥

परिशिष्ट

परिशिष्ट (क)

चित्तौडि-चित्तौड

तालतो भोपाल ताल और सब तलइयाँ।
गढ तो चितौड़ गढ और सब गढ़इयाँ।

चित्तौड़ गढ का किला रेलवे स्टेशन से करीब दो मील पूर्व एक अलग पहाडी पर बना है। यह पहाडी समुद्र की सतह से ऊँचाई में १,८५० फुट और आसपास की भूमि से ५०० फुट के करीब ऊँचा है। इसकी लम्बाई लगभग साढे तीन मील और चौडाई कहीं कहीं आधे मील तक है। क्षेत्रफल करीब ७०० एकड है। पहाडी के नीचे सात हजार आबादी का एक बडा कसबा है। गढ़ पर पहुँचने में सात दरवाजे पार करने पडते हैं। सबसे पहले "पाडलपोल" नामक दरवाजा मिलता है।

यह किला मौर्य वंशी राजा चित्रांगद का बनवाया हुआ कहा जाता है। इसीलिये इसका नाम चित्रकूट पडा और चित्तौड उसी का अपभ्रंश है। विक्रम की आठवीं शताब्दी के अन्त में गुहिल वंशीय राजा बापा रावल ने राजपूताने के अन्तिम मौर्य वंशी राजा मान से यह क़िला छीन लिया, तब से गुहिलोतों के हाथ में यह है। इसपर कुछ समय तक मालवे के परमारों का तथा गुजरात के सोलंकियों व मुसलमानों का भी आधिपत्य रहा था। महाराणा उदय सिंह के समय (सं॰ १६२४ वि॰) तक यह मेवाड की राजधानी रही। इस किले में कई देवमंदिर, राजमहल और ऐतिहासिक प्रसिद्ध स्थान हैं। जयमल और कल्ला की छत्रियाँ, रावल पता का चबूतरा, कुम्भ श्याम का मंदिर, तुलजा भवानी, अन्नपूर्णा, चत्रंग कुण्ड, कालिका देवी, अदबर जी, अद्भुत जी, सतबीस देवल आदि के मंदिर, सूर्य कुण्ड, भीमगोडी, गौमुख आदि तालाब, और पद्मिनी, जयमल, पत्ता, गोरा, बादल और हिंगलू, आहाडा के महल और महाराणा फतह सिंह का बनवाया नया महल दर्शनीय है।

चित्तौड किले पर सफेद संगमरमर का बना हुआ विशाल कीर्ति स्तम्भ (जय स्तम्भ) बडा सुन्दर है। यह भारतवर्ष भर में अपने ढंग का एक ही स्तम्भ है। यह स्तम्भ महाराणा कुम्भा ने ९० लाख रुपये खर्च करके बनवाया था और यह मालवे के सुल्तान महमूद खिलजी पर सं॰ १४९७ (ई॰ स॰

१४४०) में विजय प्राप्त करने की स्मृति में बना था। इस बड़े स्तम्भ से थोड़ा दूर पर जैनियों का सात मंजिल वाला स्तम्भ है जो ७६ फुट ऊँचा है। इसे विक्रम की १४ वीं शताब्दी में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के बघेरवाल वैश्य सहनाय के पुत्र जीजा ने प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के नाम पर बनवाया था।

नागोर

नागोर इसी नाम के परगने का मुख्य स्थान है और राजपूताने के बहुत प्राचीन नगरों में से एक है। संस्कृत ग्रन्थों में इसे अहिच्छत्रपुर या नागपुर कहा गया है। नागपुर का अर्थ नागों 'नागवंशियों' का नगर है। अहिच्छत्रपुर का अर्थ है अहि 'नाग' है छत्र 'रक्षा करने वाला' जिस नगर का, ये दोनों एक ही अर्थ के सूचक हैं अतएव यह नगर प्राचीन काल में नागवंशियों का बसाया हुआ या उनकी राजधानी होना चाहिए। पुराने समय में अहिच्छत्रपुर जांगल देश की राजधानी था और चौहानों का पूर्वज सामन्त यहाँ का स्वामी था, ऐसा बिजोल्या 'मेवाड़' के वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ 'ई० स० ११७० ता० ५ फरवरी' गुरुवार के शिला लेख से ज्ञात होता है। यहीं से जाकर चौहानों ने सांभर को अपनी राजधानी बनाया। प्राचीन काल में चौहानों के अधिकार का सारा प्रदेश अर्थात् सांभर, अजमेर आदि का राज्य सपादलक्ष 'सवालक' कहलाता था और अबतक जोधपुर राज्य का नागोर परगना "स्वालक" कहलाता है।

अजमेर पर मुसलमानों का आधिपत्य होने के कुछ समय बाद नागोर पर भी उनका अधिकार हो गया। तबसे प्राचीन मंदिर आदि नष्ट किये जाने लगे। प्राचीनता की दृष्टि से एक ही हाते में पास पास बने हुए शिव तथा मुरलीधर के मन्दिर महत्त्व के हैं इनके स्तम्भ पुराने हैं।

तीसरा बरमाया का मन्दिर है, जो योगिनी का माना जाता है। इसके प्राचीन स्तम्भों पर खुदे हुए लेखों में से एक बिगाड़ दिया गया है—शेष दो पर वि० सं० १६१८ ज्येष्ठ वदि १३ (ई० स० १५६१ ता० २ मई) और वि० सं० १६५६ चैत्र सुदि १२ (ई० स० १६०२ ता० २५ मार्च) के लेख हैं। मुसलमानों के समय के यहाँ बहुत से लेख हैं जिनमें सबसे पुराना मुहम्मद तुगलक के समय का एक दरवाजे पर खुदा लेख है। सन् अस्पष्ट है। यहाँ पर बादशाह अकबर के समय के तीन लेख हैं, जिनमें से एक हि० स० ९७२ (वि० सं० १६२१-२२ ई० स० १५६४-६५) का हसन कुली खाँ की मसजिद में, दूसरा हि० स० ९८५ (वि० सं० १६३४ ई० स० १५७७) का

अकबरी मसजिद में और तीसरा हसन कुली खाँ के बनवाये हुए फव्वारे पर है। "आईन इ अकबरी" आदि ग्रन्थों का रचयिता, अकबर का प्रीतिपात्र अबुल फजल और उसका भाई शेख फैजी नागोर के रहने वाले शेख मुबारक के बेटे थे।

शाहजहाँ के समय का एक लेख हि० स० १०४६

(वि० सं० १६६५ वैशाख सुदि ३ ई० स० १६३८ ता० ७ अप्रैल) का किले के एक मकान में और दूसरा हि० स० १०५६ (वि० स० १७०३ : ई० १६४६) ताहिर खाँ की मसजिद में है।

औरंगजेब के समय के तीन लेख हैं, जिनमें से सबसे पहला हि० स० १०७ (वि० सं० ७१७-१८ : ई० स० ६६०६१) का है। दूसरा हि० स० १०७६ (वि स० १७२२-२३ ई० स० १६६५ ६६) का, जिसमें राव अमर सिंह के बेटे राव सिंह द्वारा शानी तालाब बनवाये जाने का उल्लेख है।

गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर खाँ ने अपने भाई शम्स खाँ को नागोर की जागीर दी थी, जिसने वहाँ अपने नाम से शम्स तालाब बनवाये। उसके पीछे उसका बेटा फीरोज खाँ वहाँ का स्वामी हुआ जिसने वहाँ एक बड़ी मसजिद बनवाई, जिसको महाराणा कुम्भा ने नगोर विजय करते समय नष्ट कर दिया।

जब महाराज अजीत सिंह अपने छोटे पुत्र बख्त सिंह द्वारा मारे गये तो महाराज अभयसिंह ने नागोर की जागीर बख्त सिंह को दे दी।

जेनरल कनिंघाम लिखते हैं कि बादशाह औरंगजेब ने जितने मंदिर यहाँ तोड़े उनसे अधिक मसजिदें बख्त सिंह ने तोड़ीं। इसी कारण यहाँ के कई फारसी लेख शहरपनाह की चुनाई में उल्टे-पुल्टे लगे हुए अबतक विद्यमान हैं।

टङ्क टोंक

राजपूतों का शहर टोंक अजमेर प्रान्त में है। बहुत वर्षों तक यह होल्कर राजाओं के अधीन था। जयपुर से दक्षिण ५० मील की दूरी पर यह अक्षांश २६ १२ उत्तर और ७५ ३८ देशान्तर पूर्व में बसा हुआ है। सन् १८१८ म यह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया।

गुजरात

झेलम से लाहौर जानेवाली सड़क पर चनाब नदी से ६ मील पश्चिम में गुजरात शहर बसा हुआ है। इसका पुराना नाम हैरात था। कनिंघम साहब का अपना मत है कि "हैरात" की उत्पत्ति "अराट" से हुई है।

(The Ancient Geography of India P P 205 206) । इसके बसाने वाले सूर्यवंशी राजपूत वचन पाल थ, जिनके सम्बन्ध में विशेष बातें नहीं ज्ञात हैं। ऐसा कहा जाता है कि इसको पुन स्थापित करने वाले गुजराज ने राजा अली खाँ थे जिन्हें अकबर बमा ने सन् ८८३ और ९०१ के बीच पराजित किया था। इन कथाओं के अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि सन १३०३ में गुजरात पूर्णतया नष्ट हो गया था और गुजरों ने इसे पुन अकबर के शासन काल में सन १५८८ में निर्मित किया।

बनास

बनास नदी उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध कुम्भलगढ़ के किले से तीन मील दूर की पर्वत श्रेणी से निकल कर उदयपुर, जयपुर, बूंदी, टाक और करौली राज्यों में बहती हुई रामेश्वर तीर्थ ग्वालियर राज्य के पास चम्बल नदी म मिल जाती है। इसकी लम्बाई अनुमान से ३०० मील है।

मडोर-मडारा-मंडार

मडोर जोधपुर नगर से ५ मील उत्तर नागाद्री नामक एक छोटी-सी नदी के किनारे बसा हुआ है। यहाँ का किला एक पहाड़ी पर स्थित है। इसका अस्तित्व ई० सन् की चौथी सदी के आस पास माना जाता है। शिला-लेखों में इसका नाम "माडव्यपुर" मिलता है। "माडव्यपुर का ही अपभ्रंश "मडोर" है। ऐसा कहा जाता है कि माण्डव्य ऋषि का आश्रम यहीं था। ब्राह्मण वंशी हरिश्चन्द्र के पुत्र भोगभट, कक्क, रज्जिल और दद्द ने मडोर को जीतकर यहाँ किला बनवाया था, लेकिन काल की गति से वह अब नष्ट हो गया है। यहाँ एक पचकुण्ड नामक स्थान है जहाँ पाँच कुण्ड बने हुए हैं। आज भी हिन्दू गण इसे पवित्र मान कर स्नानार्थ यहाँ जाते हैं। पुरा काल म यह राजाओं के श्मशान का स्थान था जो वहाँ के बने हुए रावचूडा, राव रणमल, रावजोधा तथा राव गागा के स्मारकों से सिद्ध होता है। मालदेव के समय से श्मशान इस स्थान से हटाकर मोतीसिंह के बगीचे के पास रखा गया, जहाँ अन्य छत्रियों म महाराज अजीत सिंह की भी एक छत्री है जो उन सब म विशाल और दर्शनीय है। इससे थोड़ी दूर पूर्व म "तानापीर" की दरगाह है।

नागाद्री नदी के किनारे किनारे यहाँ महाराज तख्त सिंह के काल तक के मारवाड के राजाओं, राजकुमारों आदि के स्मारक बने हुए हैं। इस दग्धस्थान के पास महाराज अभयसिंह के समय का "तैंतीस करोड देवता" का देवालय भी

स्थित है। इस स्थान के पास एक गुफा है जिसमें की खुदी हुई मूर्ति नाहड़राव को (रघुवंशी प्रतिहार) मूर्ति बतलायी जाती है। यह गुफा देखने में बहुत प्राचीन नहीं जान पड़ती लेकिन इसके पास वाले एक चबूतरे से दसवीं सदी के लेख का एक टुकड़ा प्राप्त हुआ है, जिसमें प्रतिहार कक्क के पुत्र का नाम मिलता है, जो इस समय राजपूताने के अजायबघर में सुरक्षित है। इस गुफा के ऊपरी भाग में गुप्त लिपि में कुछ व्यक्तियों के नाम अंकित हैं। मंडोर के भग्नावशेषों में एक जैन मन्दिर भी है, जो दसवीं सदी का प्रतीत होता है। उसके उत्तर-पूर्व में एक स्थान है जो "रावल की चौरी" कहलाता है। मंदोदरी नाम से "मंडोर" की समानता होने के कारण कुछ लोगों ने रावण के विवाह होने आदि की कल्पना भी कर डाली है। लेकिन यह कल्पना कोरी कल्पना ही है। तथ्य का अंश इसमें नहीं के समान है। मंडोर पहले पहल नागवंशी क्षत्रियों के अधीन रहा होगा जैसाकि उसके पास के नागकुण्ड, नागाद्री नदी, अहिरौल आदि नामों से अनुमान किया जाता है। फिर वह प्रतिहारों के अधिकार में गया और उनसे राठौरों को दहेज में मिला।

मंडोर के सम्बन्ध में राजपूताना गजेटियर भाग २, पृ० २६१-६२ में प्राचीन राजाओं के स्मारकों का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि "Little respect or reverence is shown towords spots which in western countries, as cemetries are considered sacred in the present day. Many of the cenetophs are homes for beggar; and even the pariah dog; and nothing is done towards repairing the monuments erected to those who were heroes in their day.

चांबल-चंबल

चंबल नदी राजपूताने की सबसे बड़ी नदी है। यह मध्य भारत के इन्दौर राज्य (मऊ की छावनी से ६ मील दक्षिण पश्चिम) से निकलती है और ग्वालियर, इन्दौर तथा सीतामऊ राज्यों में बहकर राजपूताने में प्रवेश करती हुई मैसरोडगढ़ (मेवाड़), कोटा, केशवराव, पाइण और धौलपुर के निकट बहती हुई संयुक्त-प्रदेश में इटावे से २५ मील दक्षिण-पश्चिम यमुना से जा मिलती है। इस नदी की पूरी लम्बाई ६५० मील है। इसका पुराना नाम "चर्मण्वती" था।

सोरठ-सुराष्ट्र-सौराष्ट्र

ह्वेनसांग के वर्णन के अनुसार 'सुलच्च या सुराथ' देश बल्लभी के अधीन था। इसकी राजधानी बल्लभी के पश्चिम में ५०० ली अथवा ८३

मील की दूरी पर यू-येन-ता अथवा "उज्जनता" पहाड़ी के नीचे थी। उज्जनता संस्कृत के "उज्जैन्त" का पाली रूपान्तर है। यह संस्कृत और पाली नाम गिरनार पहाड़ियों का है जो जूनागढ़ के पास है। "उज्जैन्त"[1] का उल्लेख रुद्रदाम और स्कन्दगुप्त के गिरनार शिलालेखों में भी प्राप्त है, यद्यपि शिलालेख के कारण सौराष्ट्र की राजधानी जूनागढ़ या यवनगढ़ में, जो वल्लभी से ८७ मील की दूरी पर है, होना सिद्ध होता है। प्रसिद्ध पर्यटक ह्वेनत्सांग लिखता है कि उसने इस पहाड़ी को घने जंगलों से आच्छादित तथा इसके दोनों किनारों को अगणित कमरों और गैलरियों से भरा पाया था। ह्वेनत्सांग का यह वर्णन "पोस्टन्"[2] के वर्णन से भी मिलता है, जिसने सन् १८३८में इस पहाड़ी को घने जंगलों और बिना नक्काशी के चौरस पत्थरों पर स्थित छोटे-छोटे कमरों से भरा पाया था।

आज भी "सूरत" नाम इस प्रान्त के हिस्से का है और आज के गुजरात कहे जाने वाले नगर में मिला हुआ है। सम्राट् अकबर के समय में भी यह प्रायद्वीप दक्षिण दिशा में बहुत बड़ा था। [3]जहाँगीर के दरबार में टेरी[4] (Terry) ने जो सूचना इस प्रायद्वीप के सम्बन्ध में दी थी; उसके अनुसार सोरैत का प्रधान शहर "जनागढ़" अर्थात् "यवन गढ़" अथवा "जूनागढ़" कहलाता था। यद्यपि यह प्रान्त छोटा था तथापि उपजाऊ था और इसके दक्षिण में समुद्र था। उस समय भी यह नगर गुजरात के साथ नहीं मिलाया गया था।

ह्वेनत्सांग का कहना है कि सातवीं सदी में "सूरत" या "सुराष्ट्र" का क्षेत्रफल ६६७ मील था और पश्चिम में यह माही नदी को छूता था। माही नदी मालवा प्रदेश में बहने वाली वह नदी है जो खम्भात की खाड़ी में गिरती है। ह्वेनत्सांग के उपर्युक्त वर्णन को स्वीकार करने पर ऐसा कहा जा सकता है कि यह नगर इस प्रायद्वीप के सम्पूर्ण भाग को घेरे हुए था और वल्लभी नगर भी इसी के अन्तर्गत था। इसमें सन्देह नहीं कि "वल्लभी" का नाम "सूरत" से अधिक प्रख्यात था लेकिन "सूरत" नाम की ख्याति भी पूर्ण प्रायद्वीप के लिए सन् ६४० तक थी।

---

1. Journal Asiatic Society Bombay Vii P. 119 "The Urjjayat hill" P. 123 is urjayat, and P 124 "The jayanta mountain" should all be rendered Ujayanta.
2. Junrnal Royal Asiatic Society Bengal 1838 P.P. 874,876
३. आईने अकबरी, भाग २, पृष्ठ ६६
4. Voyage to Last India P. 80.

अजमेर

अजमेर मेवाड़ का प्रान्त राजपूताने के मध्य भाग में बसा हुआ है। इसके पश्चिम में मारवाड़ के राज्य, उत्तर में किशनगढ़ और मारवाड़, पूर्व में जयपुर और किशनगढ़ तथा दक्षिण में मेवाड़ प्रान्त है। इसका पूरा क्षेत्रफल २३६७ ६ मील है और इसकी आबादी ५०६६६४ की है। यह अक्षांश २५ २४ उत्तर तथा देशान्तर ७३°४५ पूर्व के बीच बसा हुआ है। इसके अजमेर और मेवाड़ दो भाग हैं। अजमेर की लम्बाई उत्तर तथा दक्षिण में ८० मील और चौड़ाई ५० मील है। मेवाड़ ४८ मील लम्बा और १५ मील चौड़ा है। (Ajmer Mewara Gazetter 1904)

पुराकाल में अजमेर को 'अजयमेरु' कहते थे। आजकल अजमेर का क़िला 'तारागढ़' के नाम से प्रसिद्ध है। छठी शताब्दी में महाराज अजयपाल चौहान ने इस किले को बनवाया था। ये "सपाद लक्ष" के राजा थे और इसकी राजधानी साभर थी। इन्होंने ही अजमेर शहर को भी बसाया था। 'पयसागर' के दक्षिण स्थित 'अजयसर' आज भी इनके नाम को चिरस्थायी बनाये हुए है।

'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार अजयदेव द्वितीय ने एक नगर बसाया था और उसी नगर का नाम राजा अजयदेव के नाम के ऊपर 'अजमेर' रखा गया। डा० बुह्लर (Buhler) ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए कहा है कि अजमेर नगर अजयदेव द्वितीय द्वारा ही बसाया गया था।

'पृथ्वीराज विजय' सर्ग ३ में यह भी कहा गया है कि अरणोराज या अनाजी के तीसरे पुत्र सोमेश्वर ने अपने बड़े भाई और पूर्वज विग्रहराज के राजमहलों के समीप एक नगर बसाया था और उसका नाम अपने नाम के ऊपर रखा था। श्रीहरि विलास जी शारदा का कहना है कि 'As these palaces stood in Ajmer, the town founded by Someswar and named after Arnoraj, must has existed in or near Ajmer. No one howerer has heard of such a town and there is no mention of it in any book The fact evedently is that several chanhan Kings repaired renovated or improued the existing town and the court poets, given to exaggeration have stated that each of the kings founded this town Ajiyadev II made improvements & additions to the town of Ajmer & probably transferred his capital from Sakambhari (Lambher) to Ajmer the poet gives him credit for forming it

लेकिन द्वितीय अजयदेव से पहले ही अजमेर की स्थापना हो चुकी थी। इसका प्रमाण थढ़ा (Thadas) तथा छत्री (Chhatries) से जैन शिलालेखों से मिलता है। अजमेर के भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य हेमराज की समाधि पर बनी हुई छत्री पर सं० ८१७ (सन् ७६०) का लिखा हुआ लेख तथा इसी प्रकार का लेख यहीं बनी हुई अन्य तीन छत्रियों पर सन् ८८५, ८५४ तथा ८७१ यह सिद्ध करते हैं कि यह नगर अजयदेव द्वितीय से पहले बस चुका था क्योंकि ये तिथियाँ उक्त अजयदेव के बहुत पहले की हैं।

अजमेर की प्राग् ऐतिहासिक कथा से ज्ञात होता है कि अग्निकुल से उत्पन्न होने वाले अन्तिम क्षत्री चौहानों का यह राज्य था। प्रथम चौहान अन्हल के वंश में उत्पन्न राजा 'अज' ने सन् १४५ में इसे बसाया था। उसने पहले राजा अज ने 'नाग पहाड़' पर एक किला निर्मित कराना चाहा लेकिन किसी राक्षस के उत्पात के कारण दिन में बनवाई गई किले की दीवारें रात में नष्ट हो गईं। अतः अज ने आजकल के प्रसिद्ध तारागढ़ पहाड़ी पर उस किले को बनवाया। यह किला गढ़ बीठली के नाम से और इन्द्रकोट पर उनके द्वारा बनवाया हुआ नगर अजमेर के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये राजा अज इतिहास में अजयपाल के नाम से प्रसिद्ध हैं। कर्नल टाड ने इस नाम के साथ एक दन्तकथा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि अजयपाल का नाम अजयपाल इसलिए पड़ा था कि वे पहले अजों (बकरियों) की रक्षा करते थे और उनको यह राज्य पुष्कर के किसी महात्मा ने वरदान-स्वरूप उनकी बकरियों का दूध पीने के कारण दिया था। उनका नाम ही शायद इस दन्तकथा की उत्पत्ति का कारण है। इस दन्तकथा में सत्य का अंश कितना है यद्यपि कहा नहीं जा सकता तथापि राजा अजयपाल का अपने जीवन के अन्तिम काल में अजमेर से १० मील की दूरी पर जाकर पहाड़ियों में रहना और वहीं आजकल भी अजयपाल के मन्दिर का होना यही सिद्ध करता है कि उपर्युक्त दन्तकथा में सत्य का अंश कुछ अवश्य है।

इसके पश्चात् चौहानों के वंशजों की जो कथाएँ प्रचलित हैं वे सब इतिहास से सम्बन्धित हैं। दोलराय की मृत्यु सन् ६८५ में मुसलमान लुटेरों से अपने नगर की रक्षा करते हुए हुई। उसके उत्तराधिकारी मानिकराव ने 'सांभर' की स्थापना की और इसके बाद ही चौहान राजा 'साम्भरी राव' कहलाने लगे। इनके राजत्व काल से सन् १०२४ तक का क्रमिक इतिहास अन्धकारमय है। सन् १०२४ में अवश्य सुल्तान महमूद प्रसिद्ध सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण करने जाते समय अजमेर से गुजरा था। तत्कालीन राजा वीलमदेव

उससे लड़ने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। अस्तु, नगर को खाली कर दिया गया। महमूद ने भी नगर को जहाँ तक लूटते बना लूटा। लेकिन तारागढ़ का किला लूट-खसोट से बच गया और महमूद अपने नियत स्थान गुजरात की ओर बढ़ गया। बीलमदेव के बाद बीसलदेव अजमेर का राजा हुआ जो बड़ा प्रतापी और वीर था।

धार

'धार' का पुराना नाम 'धारा नगरी' था। इस नगरी की उत्पत्ति के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। साधारणतः तलवार की धार से इस नगरी की उत्पत्ति का सम्बन्ध जोड़ा जाता है, क्योंकि इसकी स्थापना तलवार की जोर से ही हुई थी। मुसलमान इसे 'पीराधार' कई पुराने पीरों के मकबरों के कारण और 'किलाधार' यहाँ के पुराने किले के कारण कहते हैं।

यह नगर बहुत पुराना है और करीब पाँच सौ वर्षों तक यह मालवा के परमारों की राजधानी थी। परमारों ने अपनी पहली राजधानी उज्जैन में बनाई थी लेकिन वैर सिंह द्वितीय ने नवीं शती के अन्त में उज्जैन से अपनी राजधानी हटाकर 'धार' में बनाई। इस के पश्चात् धार और परमार में इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो गया कि यह किंवदन्ती प्रचलित हो गयी:—

"Where the Parmara is, there is Dhar,
And where Dhara is, there is Parmara
Without Dhar the Parmara is nothing,
So without the Parmara is Thar."

मालवा के राजाओं की प्रशस्ति जो उदयपुर में प्राप्त हुई है और जो उदयपुर के प्रशस्ति के नाम से प्रख्यात है, उसके ११ वें छन्द में वीर सिंह के सम्बन्ध में लिखा हुआ हे–"From him was born Vairsinha whom the people called by another name, the lord of vajrata by that king the famous Dhara was indicated, when he slew the crowd of his enemies by the sharp edge (Dhara) of his sword"

उपर्युक्त दन्तकथाओं से निष्कर्ष यही निकलता है कि 'धार' नगर का नामकरण तलवार की 'धार' पर हुआ है। नामकरण की कथाओं के अतिरिक्त प्राचीन कवियों ने धार नगर की प्रशंसा में बहुत-कुछ कहा है। 'नवसहसाङ्क चरित' का रचयिता पद्मगुप्त 'धार' के लिए कहता है:—

---

1. Epigraphia Indica I, P. 222.

निजित्य लंकामपि वर्तते या, यस्याश्च नायात्यलकापि साम्यम्।
नेतुः पुरी गाप्यपरास्ति यस्या, धारेति नाम्नाकुल राजधानी ॥

अर्थात् परमार राजाओं की राजधानी धार 'लंका' और 'अलकापुरी' से भी श्रेष्ठ है। इससे समस्त विष्णु की राजधानी भी हेय ठहरती है।

इसी प्रकार 'विक्रमांक देव चरित' का रचयिता बिल्हण कहता है:—

भोजः क्ष्माभृत्स खलु न खलैस्तस्य साम्यं नरेन्द्रैः
स्तत्प्रत्यक्षं किमिति भवता नागतं हा हतास्मि।
यस्य द्वारोड्डुमर शिखर क्रोड पारावतानाम्,
नादव्याजादिति सकरुणं व्याजहारेव धारा ॥

अर्थात् जिस धार नगर के अधिपति पृथ्वी के अन्य राजाओं द्वारा सम्मानित राजा भोज थे, जिसके यश का वर्णन राजप्रासाद के उच्च शिखर पर बैठे पारावत गण भी करते थे, खेद है, मैं उस नगर में नहीं गया।

अर्जुन वर्म के संस्कृत नाटक में जो 'धार' की 'भोजशाला' में पीछे से प्राप्त हुआ था, धार नगरी के सम्बन्ध में लिखा है कि यह नगर राजप्रासादों, मन्दिरों, उच्चविद्यालयों तथा नाट्यशालाओं से सुशोभित था। अलबरूनी ने इस नगर का उल्लेख अपनी यात्रा के वर्णन में १० वीं शती में किया है। सन् १३३३ में जब इब्नबतूता ने भारत भ्रमण किया था, उसने भी धारा नगरी का उल्लेख करते हुए लिखा है कि मालवा का प्रधान नगर था।

वाक्पति राज (९७३–९९७), सिन्धुराज (९९७–१०१०) तथा राजा भोज (११०१०–०५५) के राजत्व-काल में धार भारतवर्ष भर में शिक्षा का केन्द्र समझा जाता था।

जैसलमेर

जैसलमेर अक्षांश २६ ५ और २८ २४ उत्तर तथा देशान्तर ६९ ३० एवं ७२ ५० पूर्व में स्थित है। पूर्व पश्चिम तक इसकी लम्बाई १७२ मील तथा उत्तर से दक्षिण तक इसकी चौड़ाई १३६ मील है। इसके उत्तर में भावलपुर का राज्य, पूर्व में बीकानेर और मारवाड़, दक्षिण में मारवाड़ तथा पश्चिम में सिन्धु है। इसका पूरा क्षेत्रफल १६, ४४७ स्क्वायर मील है। यह नगर पूर्ण रूप से रेगिस्तान है।

जैसलमेर के स्थापित करने वाले भाटी वंश के प्रसिद्ध राजा देवराज कहे जाते हैं। इन देवराज के सम्बन्ध में कहा जाता है कि सन् ८३६ में इनके जन्म

के पश्चात् इनके पिता तथा इनके सभी सगे सम्बन्धी एक पहाडी जाति द्वारा मार डाले गए थे। ये एक योगी की कृपा से किसी प्रकार बच गये और जैसलमेर की स्थापना की। रावल की उपाधि भी इन्हीं के समय से प्रचलित हुई। इनके पूर्वजों के इतिहास से ऐसा ज्ञात होता है कि इस वंश की उत्पत्ति भारत के प्रसिद्ध यदुवंशियों से हुई, जिसके नेता कृष्ण थे। कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् 'यदु' जाति विभाजित हो गई और भारत के विभिन्न भागों मे जाकर बस गई। इनमें से कृष्ण के दो पुत्र सिन्धु नदी के पार उत्तर दिशा की ओर जाकर बस गए। कुछ समय के पश्चात् इन्हीं के वंशजों में से कोई एक किसी लडाई मे मारा गया और यह जाति पुनः दक्षिण दिशा की ओर चली आई, जहाँ गुज के लडके शालिवाहन ने एक नगर की स्थापना की और धीरे धीरे सारे पजाब प्रान्त पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इसी का प्रपौत्र 'भाटी' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह बडा वीर और योद्धा था। इसने अपने बल और शौर्य से आसपास के राजाओं को जीता और तभी से यदुवंश के लोगों ने अपनी पैतृक उपाधि को छोडकर इस राजा के नाम की उपाधि को धारण किया। पजाब प्रान्त में भी यह जाति अपनी सत्ता अधिक काल तक नहीं कायम रख सकी। गजनी के राजा ने इस जाति पर आक्रमण कर इस जाति को दक्षिण दिशा की ओर खदेड दिया और इस जाति ने सतलज नदी को पार कर भारत की मरुभूमि मे प्रवेश किया। यहाँ ही ये लोग बस गये। यहाँ बस जाने के बाद मुसलमानों के आक्रमणों से इस जाति का बराबर मोर्चा लेना पडा। मुसलमानों के आक्रमणों के अतिरिक्त इस जाति को राज्य के आसपास की बसी हुई जातियों से भी लडना पडा। ऐसी लडाइयों मे सबसे बडी लडाई इस जाति की 'सोंदा' जाति वालों से हुई।

ऐसे आक्रमणों तथा नित्य के लडाई झगडों ने इस जाति को लुटेरा बना दिया। इस जाति का यह स्वभाव देवराज की छठी पीढी में होने वाले राजा जेसल के समय मे भी वर्तमान था, जब जैसलनगर और किला पहले से अधिक दृढ हो गया था। इस जाति के इस स्वभाव ने इतना आतक मचाया कि सन् १२९४ मे बादशाह अलाउद्दीन को इस जाति को दबाने के लिए शाही सेना भेजनी पडी। शाही सेना ने इनके नगर को बिलकुल वीरान बना दिया।

इसके पश्चात् रावल सबलसिंह के राजा होने तक की कोई ऐसी घटना नहीं है जो उल्लेख योग्य हो। रावल सबल सिंह, जेसल की पचीसवीं पीढी में हुआ था। इसी ने सर्वप्रथम जैसलमेर के इतिहास मे मुसलमानों का आधिपत्य

स्वीकार किया। इसके समय दिल्ली का बादशाह शाहजहाँ था। इसने शाहजहाँ का आधिपत्य स्वीकार कर यद्यपि अपने राज्य को दृढ़ बनाया फिर भी राज्य की भाग्य श्री वाम हो रही, और इसकी सारी पाड़ी में होने वाले राजा रावल मूल राज के समय तो ऐसी रूठी कि इस राज्य ने फिर स्वतन्त्रता का मुँह नहीं देखा। मूलराज जैसलमेर की गद्दी पर सन् १७६२ में बैठा था। उसके राजत्वकाल में राज्य का सारा प्रबन्ध उसके एक मंत्री सलीम सिंह द्वारा होता था। यह मन्त्री अपने काले कारनामों और अपनी क्रूरता के लिए विख्यात था। अस्तु, राज्य की व्यवस्था उचित रूप से नहीं हुई। सन् १८१८ में इस राज्य के साथ अंगरेज शासकों की मैत्रि सम्पन्न हुई। (Rajputana gazetter Vol II P 167)

जैसलमेर का नाम प्राचीन शिलालेखों में 'वल्लमंडल', वल्लदेश और माड भी मिलता है। यहाँ के लोग इसे अब 'माड' भी कहते हैं। यहाँ की स्त्रियाँ सुन्दर होती हैं। कहा भी जाता है कि —

मारवाड नर नीपजे, नारी जैसलमेर।
सिन्धां तुरही सातरां, कैरहूल बीकानर॥

अर्थात् मारवाड-जोधपुर में पुरुष, जैसलमेर में स्त्रियाँ, सिन्ध में घोड़े और बीकानेर में ऊँट अच्छे मिलते हैं।

'चपावती'

यह नगर चम्पावती देवी के नाम पर वहाँ के राजा "साल" के कश्मीर के राजा अनन्त द्वारा ई० सन् १०२८ और १०३१ के बीच मारे जाने पर उसके पुत्र द्वारा बसाया गया था। "चम्पा" के नाम से आज भी यह स्थान काश्मीर प्रान्त में प्रसिद्ध है। "चम्पा" एक बहुत बड़ा जिला है। यह लाहौल और कास्तवार के मध्य रावी और चनाव की घाटी पर बसा हुआ है। ह्वनसांग ने अपने यात्रा-वर्णन में इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि उस समय यह काश्मीर की हद के भीतर था और इसकी कोई अलग स्थिति नहीं थी। लेकिन कुछ ऐसे ऐतिहासिक चिह्न इस जिले में वर्तमान हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि यह एक पुराना नगर था और इसकी अपनी अलग स्थिति थी। इस जिले में प्राप्त होने वाले सुन्दर मन्दिरों के समूह तथा आदमकद काँसे का एक साँड इसके प्राचीन राजाओं के धन वैभव के साक्षी हैं। शिला-लेखों में प्राप्त वार्त्ताओं से ज्ञात है कि ये कला की वस्तुएँ ६वीं और १०वीं शताब्दी की हैं। काश्मीर के जातीय इतिहास में इस स्थान का नाम "चम्पा" अनेक स्थानों पर आया है। काश्मीर के राजवंश वाले चम्पा वंश के लोगों के

साथ आज भी वैवाहिक सम्बन्ध करते हैं। मुसलमानों के आक्रमण-काल में कुछ समय के लिए यह नगर स्वतन्त्र हो गया था। लेकिन महाराज गुलाब सिंह ने पुनः इसे बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में काश्मीर में मिला लिया था।

'गंगा'

समुद्र की सतह से १३८०० फुट को ऊँचाई पर हिमाच्छादित उत्तरी हिमालय के गंगोत्री नामक स्थान से गंगा का उद्‌गम माना जाता है। अपना नाम गंगा धारण करने के पहले ये उत्तर-पश्चिम से आती हुई जाह्नवी और इसके पश्चात् ही अलकनन्दा को भेंटती हैं और तब ये तीनों धाराएँ एक साथ मिल कर गंगा की धारा कहाती हैं। और तब सुखी के पास हिमालय पर्वत को भेदती हुई ये दक्षिण और पश्चिम दिशा में हरिद्वार की ओर घूमती हैं। इस स्थान से ये दक्षिण और दक्षिण पूर्व-उत्तरप्रदेश के मेरठ और रोहिलखण्ड जिलों में प्रवेश करती हैं, और इसके बाद रोहिलखण्ड को आगरा से अलग करती हुई ये फर्रुखाबाद जिले में जाती हैं। इसके बाद अवध की दक्षिण-पश्चिमी सीमा को बनाती हुई ये इलाहाबाद, मिर्जापुर, बनारस तथा गाजीपुर और बलिया के जिलों को बंगाल से अलग करती हैं। इस प्रकार उत्तर-प्रदेश के अनेक नगरों और जिलों की सिंचाई का मुख्य साधन बन कर यह बिहार और बंगाल प्रान्तों की ओर बढ़ती है।

२५° ३१′ उत्तर और ८३° ५२′ पूर्व में ये शाहाबाद जिले में प्रवेश कर इसकी सीमा को निर्धारित करती हुई और इस जिले को उत्तर-प्रदेश से अलग करती हुई उत्तरी छोर पर घाघरा और दक्षिणी छोर पर सोन नदी से मिलती हैं। इसके पश्चात् यह पटना शहर की ओर अग्रसर होती है और नेपाल से आने वाली गंडक को अपनी सहचरी बनाती हैं। फिर पूर्व में यह कोसी से मिलकर राजमहाल पर्वत श्रेणियों को पार करती हुई द्रुत गति से दक्षिण की ओर चलती है और बंगाल प्रान्त के गौड़ नगर को पवित्र करती हुई समुद्र से भेंट करने के लिए आगे बढ़ती है। इस स्थान से करीब बीस मील की दूरी पर इसकी कई एक शाखाएँ फूटती हैं। इनमें से प्रमुख शाखा "पद्मा" के नाम से प्रसिद्ध है। पद्मा का भीषण रूप हमें वर्षा काल में दिखाई पड़ता है, जब जहाजरानी को भी इसकी तीक्ष्ण धारा को पार करना कठिन हो जाता है। इस प्रकार गंगा २३°१३′ उत्तर और ९०°३३′ पूर्व में मेघना नदी को योग देती हुई बंगाल में ५४० मील तथा अपने उद्‌गम स्थान से १५५७ मील की दूरी तै करके समुद्र में प्रवेश करती है।

इनके किनारे पर बसे हुए प्रमुख नगर हैं उत्तर प्रदेश में हरिद्वार, मोरों, कानपुर, प्रयाग, मिर्जापुर तथा बनारस, बिहार का पटना एवं बंगाल का कलकत्ता।

गंगा का एक या दो अन्य नदियों से मिलन अथवा उसका समुद्र में मिलन हिन्दुओं का तीर्थ स्थान है। प्रयाग में जहाँ यह यमुना और सरस्वती से मिलती है, आज भी कुम्भ पर्व का आयोजन होता है और लाखों नर नारी इस अवसर पर त्रिवेणी की धारा में स्नान कर अपने पापों का क्षय करते हैं। इसी प्रकार बंगाल की खाड़ी में भी जहाँ गंगा समुद्र से मिलती है प्रत्येक वर्ष गंगा सागर का मेला आयोजित होता है और लाखों नर नारियाँ एकत्र होती हैं और गंगा की धारा में स्नान कर पुण्य लाभ करती हैं।

वैदिक साहित्य में तो कम लेकिन पुराणों में गंगा की अपार महिमा का वर्णन है। ऐसा कहा जाता है कि सूर्यवंशी राजा सगर ने किसी समय अश्वमेध यज्ञ आयोजित किया था। यज्ञ में विघ्न डालने की इच्छा से इन्द्र ने राजा सगर के अश्वमेध के घोड़े को पातालपुरी में कपिलदेव मुनि के आश्रम में छुपा दिया। राजा सगर की एक रानी से उत्पन्न साठ हजार पुत्र घोड़े को खोजते खोजते मुनि के आश्रम में पहुँचे और यह समझकर कि मुनि के द्वारा ही यज्ञ का अश्व चुरा कर रखा गया है, मुनि के प्रति अपशब्दों का व्यवहार किया और उनके शाप से क्षार हो गये। राजा सगर की दूसरी रानी के पुत्र असमंजस के पुत्र अंशुमान ने गरुड़ के उपदेशानुसार ब्रह्मलोक से पाताल में अपने पूर्वजों को तारने के लिए गंगा को लाने की अनेक चेष्टा की लेकिन उनकी चेष्टा निष्फल हुई। अन्त में उनके प्रपौत्र महाराज दिलीप के पुत्र भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर लाने में समर्थ हुए और उनके पूर्वज जो ऋषि के शाप से क्षार हो गये थे, गंगा की पावन धारा के स्पर्श होते ही मुक्त हो गए।

पौराणिक युग में यदि गंगा की पवित्र धारा ने राजा के साठ हजार पुत्रों का उद्धार किया तो वर्तमान युग भी उनकी धारा से कम लाभ नहीं उठा रहा है। चूँकि भारत कृषिप्रधान देश है इसलिए इसे अनादि उपजाने के लिए सर्वदा जल की आवश्यकता रहती है। गंगा की नहरों द्वारा यह कार्य बड़े सुविधापूर्वक हो रहा है। नहर की एक शाखा द्वारा एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, इटावा, कानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद जिलों की प्राय ८३५००० एकड़ भूमि सींची जाती है तथा इसकी दूसरी शाखा द्वारा भी प्राय इतने ही एकड़ भूमि सींची जाती है। रेलों की लाइन के निकलने के पहले तथा उसके बाद भी गंगा यातायात का प्रधान साधन रही हैं।

पुराणों में गगा के चार नाम और मिलते हैं: —१ सीता, २ अलकानदा, ३ चक्षु तथा ४ भद्रा । एक कथा के अनुसार जह्नु ऋषि ने इनके सम्पूर्ण जल को पान कर लिया था, और फिर कान के मार्ग से बाहर किया था, इसलिए इनका नाम जाह्नवी पडा । एक दूसरी कथा के अनुसार अगस्त्य ऋषि द्वारा समुद्र के जल को सोख लेने के बाद गगा ने ही समुद्र को जल का दान किया था—ऋग्वेद तथा सपादलक्ष ब्राह्मण में गगा का उल्लेख देवधुनि या देवनदी के नाम से हुआ है । तैत्तिरीय आरण्यक मे कहा गया है कि गगा और यमुना के मध्य रहने वाले लोग विशेष आदर के पात्र हैं । हरिवंश के अनुसार पुरूरवा तथा उर्वशी ने मन्दाकिनी, जिनका आधुनिक नाम गगा हे, के किनारे ५ वर्षों तक वास किया था । मेगास्थनीज़ लिखता है कि "by the two (the Ganges & the Indus) the Ganga is much the larger . It receives besides, the river sones and the sittokatis the solomatis which are also navigable, and also the Kondochates & the sambos and the magou & the Agoramio & the omalis moreover their fall into it the Karmenases, a great river, and the Kakanthis and the Anomatio (Mecrindle Ancient India P P 190—91)

कुडाल

यह सावन्तवाडी के रईस का दुर्ग था । इस दुर्ग के सम्बन्ध म यह छोड कर कि इसे सन् १६६१ ई० मे शिवाजी ने जीत लिया था और कुछ भी इतिहास मे उपलब्ध नही है ।

हिमालय

भारतवर्ष का उत्तरी सीमाना हिमालय अपनी उत्तुंग चोटियों के लिए केवल भारतवर्ष मे ही नहीं वरन् सारे ससार मे प्रसिद्ध हैं । इस पर्वत श्रेणी के लिए प्रयुक्त शब्द 'हिमालय' इसके नाम और अर्थ का अक्षरश. द्योतक है । हिमालय का अर्थ 'हिमस्य + आलयः' 'हिम का घर' या हिमानाम् + आलय 'हिम के रहने का घर' होता है । प्राचीन भूगोल वेत्ताओं ने इसका नाम इमौस या हिमौस और हैमोडास दिया है । इन नामों के द्वारा ऐसा पता चलता है कि ये नाम इस पर्वत श्रेणी के पूर्वी और पश्चिमी हिस्से के लोगों द्वारा दिए गए हैं । हैमोडास सस्कृत शब्द हिमवत् (हेमोत्) से निकला है, जिसका अर्थ हिमाच्छादित होता है । अलेक्जेण्डर के साथ आने वाले ग्रीक निवासियों ने इसे भारतीय कारेरास के नाम से प्रसिद्ध किया था ।

हिमालय की चौहद्दी के सम्बन्ध में श्री भागवत में ५ वें स्कन्ध के १६वें अध्याय में लिखा है :—'एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालयः इति प्रागायता यथा नीलादयः। अयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिंपुरुषभारतानां यथासंख्यम्।' अर्थात् इसका विस्तार जहाँ भागवत पुराण के अनुसार सहस्र योजन बताया गया है, वहीं आज के वैज्ञानिक युग में इसकी सीमा को नापने-जोखने का कार्य हो रहा है और इसकी चौहद्दी को निर्धारित करने का प्रयास जारी है। सफलता कहाँ तक मिलेगी कहा नहीं जा सकता। यों कहा जा सकता है कि इसके उत्तरी-पश्चिमी छोर पर काश्मीर और जम्मू राज्य का आधे से अधिक हिस्सा है। इसके पूर्व में उत्तर-प्रदेश, कुमायूँ तथा टेहरी राज्य हैं। इनके अतिरिक्त नेपाल, भूटान तथा सिक्कम के वे राज्य हैं, जो भारतवर्ष की सीमा में सम्मिलित नहीं हैं।

हिमालय भारतवर्ष की प्रायः सभी प्रसिद्ध नदियाँ यथा गंगा, यमुना, शारदा या काली आदि नदियों का उद्गम हिमालय के उत्तरी पर्वत-श्रेणी है। 'करनाली' नदी का, जो घाघरा के नाम से भारत में प्रसिद्ध है, उद्गम स्थान उत्तर पर्वत-श्रेणियों से दूर तिब्बत से है।

हिमालय की प्रसिद्ध चोटियों में एवरेस्ट चोटियाँ २६००२ फुट, नागा पर्वत २६१८२ फुट, नन्दादेवी २५६६१ फुट, त्रिशूल २३३८२ फुट, पार्चासी २२६७३ फुट तथा नन्दकोट २२५३८ फुट हैं।

हिमालय की तराइयों में विभिन्न प्रकार के लोग पाए जाते हैं। काश्मीर में लद्दाख से लेकर भूटान तक हिन्द्चीन के लोग ऊपरी हिस्सों में ही पाये जाते हैं, लेकिन सिक्कम, दार्जिलिंग और भूटान में ये लोग इन देशों के निचले भागों में भी वर्तमान हैं। हिमालय का एक यही ऐसा हिस्सा है जहाँ बौद्ध धर्म जीवित रूप में वर्तमान है। मुसलमानों ने इस भाग में इस्लाम धर्म के प्रचार का यथेष्ट प्रयत्न किया लेकिन यहाँ का जलवायु तथा प्राकृतिक असुविधाओं ने सर्वदा उनके प्रयत्न को विफल बनाया। १४ वीं शताब्दी में सुलतान सिकन्दर ने इस्लाम धर्म का प्रचार तलवार के जोर पर इन हिस्सों में करना आरम्भ किया लेकिन काश्मीर प्रान्त को छोड़कर इस धर्म का प्रचार और कहीं नहीं हो सका। जम्मू तथा हिमालय की तराई में उत्तर प्रदेश और पंजाब के हिस्सों में हिन्दू धर्म की ही प्रधानता है। नेपाल में भी राज-परिवार का धर्म हिन्दू ही है। यद्यपि यहाँ हिन्दू धर्म के साथ ही साथ बौद्ध धर्म का प्रचार भी यथेष्ट हुआ है। यहाँ के जिन हिस्सों में हिन्दू धर्म की प्रधानता है वहाँ के

लोगों की भाषा पहाड़ी है। जो राजस्थानी से मिलती-जुलती है, जिससे यह सिद्ध होता है कि इन स्थानो के रहने वालों के पूर्वज भारतवर्ष से ही आए थे। हिमालय के कुमायूँ प्रदेश के रहने वाले लोग बड़े लजाधुर प्रकृति के हैं और वे सभ्य जगत् के लोगों से मिलने-जुलने मे बहुत शर्माते हैं। इस प्रकार के लोग नेपाल के कुछ हिस्सों में भी पाए जाते हैं। लेकिन उनके सम्बन्ध में विशेष नहीं कहा जा सकता।

व्यापारिक दृष्टि से हिमालय में उत्पन्न होने वाले अनाजों का कोई विशेष स्थान नहीं है। चावल, गेहूँ, जौ और मडुआ यहाँ की मुख्य उपज है। आलू की खेती भी कुमायूँ प्रदेश में होता है। कुलू प्रदेश मे सेव, पीच आदि फल भी सफलतापूर्वक उपजाये जाते हैं। हिमालय के इन प्रदेशों में खेती वर्ष में केवल एक बार ही हो सकती है। चाय के बगीचे १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे कुमायूँ प्रदेश मे अधिकता से लगाये गए थे लेकिन इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध म ये बगीचे कागडा और दार्जिलिंग की सम्पत्ति हो गये हैं। दार्जिलिंग में 'कुनाइन' बनाने के लिये सिनकोना की भी खेती होती है।

हिमालय की तराई मे शाल, सीसम, देवदार, चीड आदि के जगल बहुत पाए जाते हैं तथा पूर्वी हिमालय मे जगली रबर भी पाया जाता है जो कि 'असम' मे बिक्री हेतु आता है।

हिमालय का पुराना नाम 'हिमवात', 'हिमवान्', 'हिमाचल' 'हिमन्तप्रदेश', 'हिमाद्रि' तथा 'हिमवात' है। कालिका पुराण में इसका उल्लेख पर्वतराज तथा कुमारसम्भव में 'नगाधिराज' के नाम से हुआ है। महाभारत के वनपर्व में लिखा है कि हिमवात प्रदेश नेपाल के ठीक पश्चिम दिशा की ओर बसा हुआ है और यह गगा, यमुना, सतलज आदि नदियों का उद्गम स्थान है। 'मार्कण्डेय पुराण, 'महाभारत' तथा 'कुमारसम्भव' के अनुसार यह पहाड एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक 'कार्मुकस्य यथा गुणा.' के समान फैला हुआ है। 'कुणालजातक' के अनुसार हिमालय प्रदेश का प्रसार ऊँचाई मे ५,०० लीग तथा चौडाई में ३००० लीग माना गया है। कैलास, जिनका उल्लेख सस्कृत साहित्य में अनेक स्थलों पर है, हिमालय पर्वत श्रेणी के मध्य भाग के उत्तर में स्थित है। बौद्ध ग्रन्थों मे हिमालय के सात बडी-बडी झीलों का उल्लेख मिलता है। उनके नाम है—कराणमुण्ड, रथकार, छदन्त, कुणाल, मन्दाकिनी, अनोतत्त तथा सीहप्पपात। महाभारत के सभापर्व और वनपर्व के अनुसार 'मैनाक' पर्वत भी हिमालय का एक हिस्सा था जो कैलास के समीप स्थित था।

साम्भर

सभँर नगर जोधपुर और जयपुर राज्यों की सीमा के अन्दर राजपूताने में २६°५५ उत्तर तथा ७५°११ पूर्व सामर झील के किनारे बसा हुआ है। आधुनिक नगर की प्रायः सभी उपयोगी वस्तुओं, जैसे तार घर, विद्यालय, अस्पताल आदि से यह नगर सुसज्ज है। यह नगर चौहान राजपूतों की ८ वीं शताब्दी से ही प्रधान राजधानी माना जाता है। अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज चौहान साभर राव अर्थात् सामर के महाप्रभु कहलाते थे। इतिहास से ज्ञात होता है कि यह नगर मुसलमान बादशाहों के अधिकार में १३ वीं शताब्दी से सन् १७०८ ई० तक रहा, जब कि यह जोधपुर और जयपुर के शासन-कर्त्ताओं द्वारा पुन उनसे ले लिया गया। साभर झील यहाँ की प्रमुख झील है। यह झील जयपुर और जोधपुर राज्यों के छोर पर २६°५३ तथा २७°२ उत्तर एव ७४°५४ और ७५°१४ पूर्व अजमेर से ५३ मील उत्तर पूर्व तथा दिल्ली से २३० मील दक्षिण पश्चिम बना हुआ है। यह झील समुद्र की सतह से करीब १२०० फुट की ऊँचाई पर है। जब यह भरी रहती है तो इसका क्षेत्रफल करीब ६० वर्गमील हो जाता है। गर्मी के दिनों में यदि कोई इसके एक छोर पर खडा होकर दूसरे छोर पर दृष्टि डाले तो यह उसे एक अति विशाल हिम का टुकडा नज़र आयगा। लेकिन सचमुच में यह हिम का टुकडा नहीं वरन् नमक का शान्त और स्थिर समुद्र है, जो देखने में हिम के टुकडे के समान दिखाई पडता है। किंवदती प्रसिद्ध है कि शाकभरी देवी ने अपनी पूजा से प्रसन्न होकर एक घने जगल को विशाल चाँदी के टुकडे में परिवर्तित कर दिया था और बाद में वहाँ के निवासियों द्वारा प्रार्थना करने पर उसी स्थान को नमक की झील के रूप में बदल दिया। इसलिए इस झील का नाम 'साभर', साकभर का परिवर्तित रूप, पडा। यह कथा ६ ठी शताब्दी की है।

इतिहास बताता है कि अकबर के राज्य काल से लेकर अहमदशाह के समय तक मुसलमान बादशाहों के हाथ में रहा। अब यह जयपुर और जोधपुर के महाराजाओं के हाथ में है। इसका पश्चिमी हिस्सा पूरा महाराज जोधपुर तथा पूर्वी हिस्सा साभर नगर के साथ जोधपुर और जयपुर दोनों महाराजाओं के हाथ में है। कुछ समय के लिए यह झील मराठों और अमीर खाँ के हाथ में चली गयी थी, जब कि १८३५ से १८४३ तक अगरेजों ने इसे शेखावटी में शान्ति स्थापनार्थ खर्चे के निमित्त अपने अधिकार में रखा था। अन्त में १८७० से यह झील पूर्ण रूप से अगरेजों को लीज पर दे दी गई। और जयपुर तथा

जोधपुर के महाराज-गण केवल रायल्टी तथा कुछ वार्षिक रुपये पाने के अधिकारी रह गए।

केदारनाथ

केदारनाथ ज्योतिर्लिंग हिमालय पर्वत पर स्थित है। यह अति शीतल स्थान है। हिम का साम्राज्य वर्ष के प्रत्येक माह में रहता है। इसकी ऊँचाई २२८३५ फुट है। यहाँ श्री केदारनाथ जी का अति प्राचीन मन्दिर है। ऐसा कहा जाता है कि यह मन्दिर पाण्डवों के समय का बना हुआ है। यहाँ की भूमि जलमयी है। यह मन्दाकिनी गंगा का उद्‌गम स्थान है। पवित्र स्थान के एक ओर मन्दाकिनी और दूसरी ओर सरस्वती नदी है जो हिमालय से निकलती हैं। इस प्राचीन मन्दिर की मरम्मत कुछ काल पूर्व महाराज नेपाल और ग्वालियर ने करवाई थी जिसके कारण अभी तक मन्दिर सुरक्षित है। मन्दिर के द्वार पर द्वारपाल खड़े हैं और दीवार पर चारों तरफ पाँचों पाण्डव, द्रौपदी, कुन्ती, पार्वती, लक्ष्मी आदि की मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। मन्दिर में जाते ही पहले दालान में इसके दाहिनी ओर लक्ष्मण और जानकी जी सहित भगवान् रामचन्द्र जी के दर्शन होते हैं। बीच में नन्दी और गरुड जी हैं। मन्दिर के भीतरी भाग में एक ओर पार्वती जी दूसरी ओर लक्ष्मी जी मूर्त्तियाँ हैं। मन्दिर के अन्दर भगवान् शंकर के पीठ भाग का दर्शन होता है। मूर्त्ति लिंग सदृश नहीं है। किन्तु एक टीले के समान है। लोगों का विश्वास है कि भगवान थक कर यहाँ विश्राम के हेतु लेट गये थे। मूर्त्ति इतनी बड़ी है कि दर्शनार्थियों को खड़े होकर घृत का स्नान कराना पड़ता है। मन्दिर का भीतरी भाग अँधेरा है और रातदिन घी का दीपक जला करता है।

महाभारत के अध्याय ८३ के ७२ वें श्लोक में केदारनाथ का उल्लेख मिलता है।

वाराणसी

वाणारसी भारतवर्ष में हिन्दुओं के तीर्थ स्थानों में से एक पवित्र तीर्थ स्थान माना जाता है। पाणिनी की अष्टाध्यायी, पतंजलि के महाभाष्य, भागवत पुराण, स्कन्द पुराण तथा योगिनीतन्त्र में इस पवित्र स्थान का उल्लेख मिलता है। कूर्म पुराण के अनुसार यह नगर प्रयाग से ८० मील नीचे गंगा के उत्तरी किनारे पर वरणा और असी नदियों के बीच बसा हुआ है। चूंकि यह नगर वरणा और असी नदियों के बीच है इसलिये इस नगर का नाम वाराणसी है।

जैनों के "विविधतीर्थ कल्प" के अनुसार वाराणसी चार भागों में विभाजित है। १—देव वाराणसी, जहाँ श्री विश्वनाथ का मन्दिर स्थापित है। २—राजधानी वाराणसी—जहाँ यवनों का वास है। ३—मदन वाराणसी और ४—विजय वाराणसी। जैनियों के मतानुसार पार्श्वनाथ का जन्म काशी में ही हुआ था।

चीनदेश के यात्रियों द्वारा वाराणसी पो-लो निस्सी समझा जाता है। उन लोगों के अनुसार इसका क्षेत्रफल ४००० ली माना गया है और इस नगर की बस्ती घनी मानी गई है। उनके मतानुसार इसके मन्दिरों में ३० संघाराम और १०० देवालय हैं।

वेदों और पुराणों मे अनेक स्थानों पर वाराणसी या काशी का उल्लेख मिलता है। महाभारत के "अनुशासन पर्व" के अनुसार इस नगर के स्थापित करने वाले देवदास किसी युद्ध में हराए जाने के बाद जंगल में भाग गये थे तथा "उद्योग पर्व" के अनुसार भीमसेन के पुत्र इन्हीं देवदास के प्रतर्दन नामक एक पुत्र भी था। देवदास की जीवनी के सम्बन्ध में "हरिवंश" में भी बहुत कुछ हमें मिलता है।

यद्यपि हिन्दू और जैन धर्म ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर काशी का उल्लेख है या अनेक कथाएँ भी मिलती हैं फिर भी इस नगरी की राजनीतिक अवस्था का स्पष्ट वर्णन हमें बौद्ध ग्रन्थों से प्राप्त होता है। बौद्ध काल में काशी ने अपना राजनीतिक महत्त्व खो दिया था क्योंकि कौशल के राजा प्रसेनजित के समय में काशी कौशल में मिला ली गयी था। प्रसेनजित के पिता महाकौशल ने अपनी पुत्री कोशलदेवी के राजा बिम्बिसार के साथ पाणिग्रहण के अवसर पर काशी नगरी को दहेज स्वरूप दिया था। इसके पश्चात् उत्तरी भारत के शक्तिशाली राजा अजातशत्रु द्वारा यह नगर पूर्ण रूप से जीत लिया गया था और मगध राज्य में मिला लिया गया था।

'गउड'

१६ वीं शताब्दी के अन्त तक 'गौड' बंग प्रदेश की राजधानी हिन्दू और मुसलमान राजाओं के शासन-काल में रह चुका है। जैनियों ने आचरांगसूत्र के अनुसार गौड देश रेशमी कपड़ों (दुकूल) के लिए प्रसिद्ध था। कुछ लोगों के मतानुसार "गौड" नाम "गुड" से निकला है, क्योंकि किसी जमाने में यह देश "गुड" के व्यापार का केन्द्र समझा जाता था। आज भी मालदा शहर से १० मील की दूरी पर गौड के भग्नावशेष अपने पुरातनपने का

परिचय दे रहे हैं। यह एक पुराना शहर है, जो गंगा और महानन्दा के संगम पर बसा हुआ है। पद्मपुराण में गौड देश का उल्लेख मिलता है और इस देश के राजा का नाम "नरसिंह" था, ऐसा पाया जाता है। पाल वंश के राजाओं ने गौड प्रदेश की राजधानी कालिन्दी नदी के किनारे "रामावती" नगरी को बनायी थी। लेकिन इस राजधानी का अब कुछ भी पता नहीं चलता। गौड के राजा लक्ष्मण सेन द्वारा बनायी गयी लक्ष्मणावती बहुत काल तक सेन वंश,और मुसलमान राजाओं की राजधानी रही। सेन वंश के राजा वल्लालसेन के द्वारा गौड मे "वल्लालवाडी" नामक एक दुर्ग बनवाया गया था, जिसका भग्नावशेष अब शाहदुल्लापुर के समीप प्राप्त है। आज भी गौड के समीप श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा पवित्र किए हुए स्थान 'रामकेलि' तथा 'रूप' और 'सनातन' के रहने के स्थान रूप सागर, तालाब, कदम्ब का वृक्ष, कुछ कूप एवं मदनमोहन जी का पुरातन मन्दिर पाये जाते हैं। मुसलमान काल के कुछ उल्लेख योग्य स्थान जैसे जानज नमियाँ की मसजिद, हवेली खास का भग्नावशेष, सोना मसजिद, फीरोज मीनार आदि यहाँ वर्तमान हैं। इनके अतिरिक्त गौडेश्वरी देवी, जहरवासिनी देवी तथा शिव के पुराने मन्दिर भी अभी यहाँ वर्तमान हैं।

हर्ष के काल से लेकर लक्ष्मणसेन के काल तक एक नहीं अनेक ऐसे शिलालेख तथा ताम्रपत्र प्राप्त हो चुके है, जो गौड देश के प्राचीन इतिहास पर पूर्ण रूप से प्रकाश डालते हैं। इन शिलालेखों और ताम्रपत्रों मे से मालवा के राजाओं के नागपुर के शिलालेख 'ई० सन् ११०४–११०५' का उल्लेख इसलिए आवश्यक है कि बीसलदेव रासो में गौड देश के उल्लेख का सूत्र इसके द्वारा स्थापित हो जाता है। इस शिला लेख के द्वारा पता चलता है कि परमार राजा लक्ष्मदेव ने गौड के राजा को हराया था।

'उडीसा'

उडीसा प्रदेश गगा नदी के मुहाने से लेकर कृष्णा नदी के मुहाने तक फैला हुआ है। कलिंग के नाम से इस प्रदेश का उल्लेख संस्कृत ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर किया गया है। यह भारत के पाँच प्रचीन राज्यों में से एक है। इसकी पुरानी राजधानी अभी भी नगर से आध मील की दूरी पर कलिंगपट्टनम् में वर्तमान है। राज्य दो भागों विभाजित है। गोदावरी के मुहाने (Delta) तक के स्थानो को कलिंग कहा जाता है तथा उत्तर की ओर महानदी के मुहाने तक के स्थान एक अलग प्रदेश बनाते हैं, जिन्हें ओद्र या उत्कल कहा जाता

है। पण्डितों ने इस नाम की उत्पत्ति और इसके अर्थ पर विभिन्न विचार प्रकट किये हैं। ओड्र बहुत पुराना नाम है और आज का नाम ओड़ीसा या उड़ीसा इसी से बना ज्ञात होता है। जैसे ओड्र + देश = ओड़ीसा। इस शब्द का सम्बन्ध इसी नाम के लाल गुलाब के फूल से लगाया जाता है, जिसे यहाँ के रहनेवाले देवों के पाँच फूलों में से एक समझते हैं। लेकिन पण्डितों ने इस शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा है कि इस शब्द का अर्थ गर्दा या धूल है। और इस शब्द के अपने पवित्र अर्थ को यह कह कर ठीक बताते हैं कि चूंकि इस प्रदेश के लोग संस्कृत विद्वानों की दृष्टि में बहुत ऊँचे नहीं समझे जाते थे इसलिये यह अर्थ ठीक है। इसका दूसरा नाम उत्कल अवश्य संस्कृत नाम है, जिसका अर्थ उन्नतिशील प्रदेश होता है। (The glorius country) कुछ लोग इस शब्द का अर्थ Land of Bird killer लगाते हैं। तथा कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं, जो इसका अर्थ (The outlying Stup) बताते हैं।

इस प्रदेश का प्राचीन इतिहास यह बताता है कि यहाँ के आदि निवासी भुंइयाँ, सवर, गांड और खोंड थे जो अपनी अपनी जातियों के प्रधान के साथ पृथक-पृथक समूह बना कर रहते थे। कुछ काल के बाद आर्य गणों का यहाँ प्रवेश हुआ और ये लोग अपनी बुद्धि और क्षमता के द्वारा उन आदि वासियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में समर्थ हुए। इतिहास यह भी बताता है कि किस प्रकार "आर्य गण जिनमें मुख्यतया राजपूत थे, उत्तर से तीर्थ यात्रा के हेतु "पुरी" में आकर बस गये और अपना राज्य स्थापित किया। आर्यों के राज्य स्थापित कर लेने के बाद भी उड़ीसा में छोटे-छोटे राज्यों की बहुलता रही तथा इसके मध्यकालीन इतिहास को जानने के लिए इसके निमित्त छोटे छोटे राज्यों के सम्बन्ध में जानना आवश्यक है। पटना राज्य के आधुनिक राज्य-परिवार वाले आज से प्राय ६०० वर्ष पूर्व यहाँ आये थे और उन्होंने अठारह गढ़ जात को जीतकर इस राज्य की स्थापना की। ऐसा कहा जाता है कि इस राज्य परिवार के लोग चौहान जाति के राजपूत थे, जो मैनपुरी के समीप रहते थे और वहाँ से मुसलमानों द्वारा भगा दिये गये थे। पटना में इस जाति के लोगोंने बस कर अपने बल और पौरुष के द्वारा शीघ्र ही आजकल के सम्बलपुर कहे जाने वाले जिले तथा इसके आसपास के राज्यों सोनपुर और बामरा पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इसके बाद ही यह जीता हुआ भूखण्ड इस परिवार के दो भाइयों में विभाजित हो गया। इस विभाजन में जिस भाई के हिस्से में सम्बलपुर का राज्य मिला, वही महान् हुआ और पटना को हिस्से में पाने वाला भाई उसके अधीन हुआ। मराठों ने पहले पहल

सम्बलपुर राज्य को जीता और सम्बलपुर राज्य के जीतने के साथ उनका अधिकार पटना राज्य पर भी हो गया।

मयूरभज का १३०० वर्षों का पुराना इतिहास बताता है कि यहाँ जयसिंह नामक एक राजा हुए थे। उनके बाद उनका ज्येष्ठ पुत्र यहाँ का राजा हुआ था, उनका मझला पुत्र क्योंझर का राजा हुआ। बौड और दसपल्ला राज्य के प्रमुख भी इसी राजा जयसिंह के वशज अपने को बताते हैं। अब मल्लिक, नरसिंगपुर,माललहरा, तालचर और टिगिरिया राज्य के राजा गण भी अपने को राजपूत कुल का मानते हैं। नयागढ को बसाने वाले रीवा के राजपूत थे और उन्हीं के कुल के पूर्वज खण्डपरा राज्य के अधिष्ठाता थे।

उडीसा का रनपुर राज्य सबसे प्राचीन माना जाता है और यहाँ के राजाओं का इतिहास प्रायः ३६०० वर्ष पुराना माना गया है। इस राज परिवार का ही एक ऐसा इतिहास है जिसमें यहाँ के आदि आगन्तुकों का चिन्ह वर्तमान है। यहाँ के राजाओं की सार्वभौमता सर्वदा अक्षुण्ण रही। मुगल और मराठा काल में भी यहाँ के आन्तरिक मामलों मे उनके द्वारा कभी हस्त-क्षेप नहीं किया गया।

सन् १८०३ मे मराठों से ही अंगरेजो ने उडीसा को अपने अधिकार में लिया था।

परिशिष्ट (ख)

गूजर

'गूजर' मारवाड की सैनिक जातियों में से एक है। किसी समय गूजर अत्यन्त शक्तिशाली थे और गुजरात प्रान्त के अधिपति थे, लेकिन आज न तो ये गुजरात के अधिपति हैं और न इनका कार्य ही सैनिक जातियों का-सा है। आज इनका मुख्य व्यवसाय राजपूताने में पशु पालने का है और ये पशुओं का क्रय विक्रय भी करते हैं।

'गूजर' शब्द संस्कृत भाषा के 'गुर्जर' शब्द का अपभ्रंश है। जेनरल कनिंघम के मतानुसार 'गुजरानवाला', 'गुजरात', 'गुजरखाँ' आदि नगरों के नामों के साथ गूजर शब्द का संयोग इस जाति के नाम के कारण ही है। ये नगर पंजाब प्रान्त के आसपास हैं, जहाँ यह जाति पहले पहल पहुँची थी।

पंजाब से यह जाति दिल्ली आई, दिल्ली से अजमेर तथा सौराष्ट्र पहुँची, और वहाँ से इसने वल्लभीपुर के सम्पूर्ण भू क्षेत्र पर अपना अधिकार स्थापित किया। जब इनका अधिकार इस क्षेत्र पर स्थापित हो गया, तब इस क्षेत्र का नाम वल्लभीपुर से परिवर्तित होकर 'गुजरात' पड़ा।

जेनरल कनिंघम के उपर्युक्त मत से ऐसा ज्ञात होता है कि यह जाति विदेशी थी और पंजाब प्रान्त से होती हुई भारत में आई। लेकिन श्री के० एम० मुन्शी आदि विद्वानों ने इस जाति की उत्पत्ति भारतीय राजपूतों से मानी है, जिसके प्रमाण में इन विद्वानों ने ताम्रपत्रों तथा ६ ठी शताब्दी की रचनाओं का उल्लेख किया है।[1]

राजपूताने के भाट भी 'गूजरों' की उत्पत्ति राजपूतों से ही मानते हैं। आज भी गूजरों में पँवार, चौहान तथा चन्देल आदि राजपूतों के, अनेक गोत्र तथा गूजरगौड़, बड़ गूजर तथा गूजर पठान आदि गूजरों के गोत्र राजपूतों, ब्राह्मणों और मुसलमानों में पाये जाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इस जाति के सम्बन्ध में जो सामग्री हमें प्राप्त है और जिसके आधार पर इनकी उत्पत्ति के विषय में विचार किया गया है, वह विशेष प्रामाणिक ज्ञात होता है। सम्भव है इस जाति

१–द ग्लोरी दैट वाज गुर्जर देश–के० एम० मुन्शी पृ०–८।

के राजपूताने में बसने के बाद इनका मिश्रण राजपूताने के अन्य जातियों के साथ हुआ हो और तब से इनके गोत्रों का अन्य अन्य जातियों में पाया जाना सम्भव हुआ हो। भाटों का कथन इसी आधार पर स्थित ज्ञात होता है।

आज भी मारवाड़ के पूर्वी परगनों तथा 'पर्वतसर' आदि स्थानों में यह जाति पर्याप्त संख्या में विद्यमान है। यह जाति अपना घर बस्ती से दूर बनाती है क्योंकि ऐसा करने में इन्हें अपने व्यवसाय पशु-पालन में सुविधा होती है। कहावत प्रसिद्ध है, 'गूजर जहाँ ऊजड़'। ये छप्पर छाने के कार्य में पटु होते हैं और विशेषकर इस जाति की स्त्रियाँ इस कार्य को करती हैं। उन्हें अपने इस कार्य की दक्षता का अभिमान भी है।

ये लोग 'गूजरे डेरीमाता', देवजी[1] तथा 'भैरोजी' की उपासना करते हैं तथा अपने देवताओं के सम्मान में गले में फूल पहनते हैं। ये मांस और मदिरा के सेवन के अभ्यस्त हैं। इनके यहाँ मृतक के शव की हजामत बना कर उसकी दाह क्रिया की जाती है और मृतक का श्राद्ध दीपावली पर करने की इनकी परम्परा है।

'कछवाहा'

कछवाहा जाति के राजपूत अपने वंश की उत्पत्ति महाराज रामचन्द्र जी के द्वितीय पुत्र 'कुश' से मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि यह जाति अयोध्या से स्थानान्तरित होकर 'नरवर' आयी और वहाँ से रोहतास और 'रोहतास' से 'आमेर' आयी। यहाँ आकर यह जाति बस गयी। अभी भी आमेर में इनकी तीन मुख्य शाखाएँ मिलती हैं :—१. शेखावत, २. नरुका तथा ३. राजावत।

१—शेखावत शेखा जी के वंशज हैं। कहा जाता है कि शेख बुहरान नामक किसी मुसलमान फकीर की कृपा से शेखा जी जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम मोकल जी था। अस्तु, इनसे चलने वाली शाखा का नाम शेखावत पड़ा। शेखावत अपनी सन्तानों को छः वर्ष की अवस्था तक नीले रंग की टोपी और पायजामा पहनाते हैं। ये लोग सूअर के मांस का भक्षण नहीं करते।

२—नरुका अलवर राज्य का शासक वंश है।

---

१. नोट—लगभग ६५० वर्ष पूर्व मेवाड़ में 'देवजी' नाम के एक महात्मा हुए थे। उन्होंने मेवाड़ में अनेक करामातें दिखाई थीं। गूजर इन्हीं 'देवजी' के भक्त हैं।

१—राजावत जयपुर राजवंश के निकटतम कुटुम्बी हैं।

पछुआदा जाति में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। ये लोग प्रधानत वैष्णव धर्म को मानने वाले हैं। शैव तथा शाक्त धर्म के अनुयायी इस जाति में बहुत कम पाये जाते हैं। इनकी कुलदेवी का नाम जमुवाय माता है। इनके घर की स्त्रियाँ हाथ और कान म स्वर्ण के अतिरिक्त अन्य किसी धातु के गहने का व्यवहार नहीं करतीं।

पंवार

आबू पर्वत के यज्ञकुण्ड से उत्पन्न चार अग्निकुलों में से पवार भी एक है। पूर्वकाल में यह वंश अत्यन्त शक्तिशाली था। परम प्रतापी राजा भोज तथा राजा विक्रमादित्य इसी वंश के भूषण थ।

मारवाड म इस वंश की जो कथा प्रचलित है, उसके अनुसार वहाँ के बालमेर स्थान के किसी "धरनीवराह" नाम के राजा का नाम लिया जाता है, जो इस वंश के आदि पूर्वज थ। इनके नौ भाई थे। धरनीवराह ने मारवाड को नौ भागों म बाट कर एक एक भाग प्रत्येक भाई को सौंप दिया और 'कोट किराडू' अपने पास रखा। यही विभाजन आज भी मारवाड में नौकोट मारवाड के नाम से प्रसिद्ध है। एक पद भी इस सम्बन्ध म लोग गाते पाये जाते हैं—

> मंडोवर सावत हुओ अजमेर सिन्धसू।
> गढ पूगल गजमल्ल हुओ, लूद्रवे भान भू॥
> आलपाल अर्बुद भोजराजा जालन्धर।
> जोग राज धर धाट हुओ हस् पारक्कर॥
> नवकोट किराडू संजुगत थिर पवारा थापिया।
> धरणीवराह धर भाइयाँ कोट बाँट जुअजुअ किया॥

अर्थात् धरनीवराह ने पवारों की सारी जमीन नौ भागों में विभाजित कर अपने नौ भाइयों को दे दिया और कोट किराडू अपने पास रखा। इस विभाजन क अनुसार मंडोर सावन्त को अजमेर सिन्धु को, पुगलगढ गजमल्ल को, लुद्रवा भान को, आबू आलपाल को, जालन्धर अर्थात् जालौर भोजराज को, तथा जोगराज को 'धात' और उमरकोट, एव पारकर हसराज को प्राप्त हुआ। इस विभाजन से पवारों की शक्ति क्षीण हो गयी और चौहान, राठौर, पडिहार आदि राजपूताने की अन्य चेनी जातियों ने इन नौ राजाओं को धीरे धीरे जीत लिया। आज भी पवारों की कुछ शाखाएँ 'सोढा', 'साखला', 'भयाल' आदि मारवाड में पाइ जाती हैं। इन शाखाओं की जीविका निर्वाह का साधन अब

किसानी है। कहीं-कहीं पंवारों में लोग शव को उलटा रख कर शवदाह करते हैं। इनके पूर्व वैभव का एक सोरठा प्रसिद्ध है.—

पृथ्वी बडा पवार, पृथ्वी पंवारातणी।
एक उजेणी धार, दूजो आबू नैठणू॥

चौहान

पंवार की तरह चोहान भी उन चार अग्निकुल वशीय राजपूतों में से एक हैं, जिनकी उत्पत्ति आबू पर्वत पर किये गये यज्ञ के अग्निकुण्ड से मानी जाती है। कर्नल टाड के मतानुसार राजपूत जाति की समस्त शाखाओं में से ये वीरता मे सर्वश्रेष्ठ हैं। पवर वश के पश्चात् कुछ काल तक दिल्ली पर इन्हीं का शासन रहा। मारवाड मे भी अनेक स्थानों पर इनका अधिकार था और ये उन स्थानों के शासक रह चुके है। बीसलदेव रासो के अध्ययन से पता चलता है कि ११ वीं शताब्दी मे अजमेर के शासक चोहान वशीय राजा ही थे। आज भी मारवाड के विभिन्न भागो मे ये अपनी वीरता की सेवाओं के उपलक्ष्य मे प्राप्त भूभाग को लिये हुए बसे हुए हैं।

चौहान वश से जिन शाखाओं का विकास हुआ है, उनमें मुख्य और महत्व-पूर्ण 'देवडा', 'हाडा', 'सोनगरा', 'निवानपुरिया' और 'साचोरा' हैं। इन विभिन्न शाखाओं के अतिरिक्त एक शाखा मुसलमान चौहाना की भी है, जो सन् १३८३ ई० में फिरोजशाह तुगलक के शासन काल में मुसलमान हो गये थे। इस शाखा के चोहान 'कायमखानी' नाम से प्रसिद्ध हैं।

चौहान वश की कुलदेवी शाकभरी माता हैं। इस वश के राजपूतों में 'गोगा जी' का नाम बहुत प्रसिद्ध है। ये लोग उनके नाम का एक धागा धारण करते हैं और विश्वास करते हैं कि यह धागा सॉप के काटे व्यक्ति को स्वस्थ करने में समर्थ है। भाद्र सुदी ९ को ये लोग 'गोगानवमी' नामक उत्सव मनाते हैं। ये गोगाजी कान थे कहा नहा जा सकता। लेकिन इनकी मान्यता और प्रसिद्धि को देखते हुए ज्ञात होता है कि वे अवश्य कोई सिद्ध पुरुष, इनके वश में हुए होगे। 'कायमखानी' भी गोगा जो का गोगापीर के नाम से पूजते हैं। पश्चिमी प्रान्तो के निवासी चौहानों मे उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति को पुत्रों एव विधवा स्त्रियों में बॉटने की प्रथा है। इसी वश ने सर्व प्रथम 'नाता प्रथा' का प्रचलन किया और 'नातरायत' के नाम से नवीन समुदाय की नींव डाली। जालोर के राजा कानडदेव ही वे प्रथम राजा थे, जिन्होंने अपनी विधवा पुत्री का पुनर्विवाह चितौड के राणा के साथ कर 'नाता प्रथा' को आरम्भ किया था।

भाटी

भाटी वंश के राजपूत अपनी उत्पत्ति भगवान् कृष्ण तथा चन्द्रवंशी राजपूतों के पूर्व पुरुष यदु से मानते हैं। इस वंश के राजपूतों का स्थान राठौड़ वंश के पश्चात् आता है। कर्नल टाड ने भाटी राजपूतों को भारतवर्ष के समस्त राजपूतों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध माना है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस जाति की उत्पत्ति के विषय में यह कथा प्रचलित है कि महाभारत के युद्ध के बाद भगवान् श्रीकृष्ण के उत्तराधिकारी मध्य एशिया में चले गये थे, और वहाँ से उन्होंने गजनी आदि प्रदेशों की स्थापना की। जब उन्हें ये सब स्थान किसी कारणवश छोड़ने पड़े, तब वे लौट कर पञ्जाब आये और दीर्घ काल तक पञ्जाब प्रान्त के 'भटनेर' नगर में बसे रहे। यही कारण है कि इनका नाम भाटी प्रसिद्ध हुआ। लेकिन कर्नल वाल्टर और कर्नल हण्ट का मत है कि किसी काल में इस वंश में भाटी नाम का कोई वीर योद्धा हुआ था और उसी के नाम पर इस वंश के राजपूतों का नाम भाटी पड़ा। इनकी उत्पत्ति चाहे उपर्युक्त कारणों में से किसी भी एक कारण से हुई हो लेकिन ये लोग भटनेर में बसे अवश्य थे, जहाँ से ये दिरावल होते हुए जैसलमेर गये थे और वहां अवस्थित हो गये। इस समय जैसलमेर ही इस वंश का केन्द्र स्थान है। इस सम्बन्ध में निम्न दोहा सुना जाता है —

मथुरा काशी प्रागवड गजनी अरु भटनेर।
दिगम दिरावल लोद्रवो नम्मो जैसलमेर॥

कर्नल टाड का कथन है कि भाटी राठौड़ों के समान न तो अन्य क्षत्री दीर्घकाय और पुष्ट शरीर वाले ही होते हैं और न कछवाहों की भाँति सुन्दर आकृति वाले ही, लेकिन इनकी रूपरेखा आकर्षक और सुडौल होती है तथा वर्ण स्वच्छ होता है।

भाटियों की दो शाखाएँ—१. 'जैसा' और २ 'रावलोत' मारवाड़ में आबाद हैं। इस वंश का वैवाहिक सम्बन्ध राजाओं और जागीरदारों के साथ अधिक होने के कारण इनके पास अभी भी अनेक जागीरें वर्तमान हैं।

परिशिष्ट (ग)

शब्दार्थ

'अ'

अठार—अठारह, अट्ठारह। अउहव—अनोखा, अद्वितीय। अकुलीणीय—अकुलीन। अवकर—अपशब्द। अणष—रोष। अछइ—है। अणुहार-अणुहारि, अनुकरण करने वाला, समान। अरय-अर्थ, धन। अस-ऐसा। अपछ्छ-अपछ्छ, अपच्छ, अहितकर। अनइ-अरण-खाना, नाज, पानी। अम्हि-मेरे। अवली सवली-सजी बजी। अहिनाण-अभिज्ञान, चिन्ह। अरण—आदि।

'आ'

आपणइ-अपने। आभर-आभरण-गहना। आषडीया-आँख। आहेड़ीय-अहेरी। आणंदियउ-आनन्दित हुआ। आगिला-आगे। आजणी-अजन। आवासइ-रहने का स्थान। आसजीयउ-आसजिअ-आसक्त। आगली-बढ़ कर, अच्छी, सुन्दर। आल-दोषारोपण, आड, अवलम्ब। आकरी-तेज। आणि-आनि-लाकर। आगलउ-आगे। आधि-ठमका—पलक मारते ही।

'इ'

इसउ—ऐसे।

"उ ऊ"

उलगाणा-प्रवासी। ऊलगइ-स्मरणीय। उछाह-उत्साह। उघरउ-उद्धार। उलीभ-उलीण-कुलीण-उमहइ-निकलता है, खान से निकलता है। उलग-परदेश, प्रवास। उलगाणउ-प्रवास के निमित्त। उचाय-उचय-त्याग देना, छोड देना। उछइ-उच्छद-आच्छादित। उसीस-उस्सास-उच्छ्वास (उद् प्रबल: श्वास · उच्छ्वास:) ऊँचा श्वास लेना। उमाहीयउ-उमग पर। उलट्यउ-उलट पडा हो। ऊतउ-वहा। उजला-उज्ज्वल। उसाकी-उसकी। उयर-उदर-पेट। उमाहियउ-उम्माहियउ-विनाशित। उलपउ-देख सकना। उणनइ-उनको। उमाहियउ-आवेगा। उणरउ-उसका, उनका। उरिआ-हृदय में। उमाही-उमग। उससइ-उसास। उझली-रहरा रही है। ऊभलयउ-अच्छा।

चींत–चिन्ता। चतह–चित्त। चंपीया–दबा हुआ। चउरी–चउरिया–लग्न मण्डप। चंडीयउ–प्रबल, उग्र। चउरासिया–विशिष्ट पदाधिकारी। चिन्तवइ–चिन्ता करना, विचार करना। चऊथि–चतुर्थी (गणेश चतुर्थी)। चोरजउ–जिस प्रकार चोर रखता है। चउपंडी–चार खण्ड, चार खण्ड का राजमहल। चीड़ीय–चिड़िया। चीरी–चिट्ठी। चउरा–चौपाल। चाउ–चादर।

"छ"

छाइउ–छाना। छंडी–छोड़ दी। छिवणी–स्पर्श करना, छूना। छार–राख। छोडि–डाल दी। छोटीय–छोटी छाहड़ी–छांह।

"ज"

जुवा–जुव–तरुण। जइतूं–जो तू। जनम हूवउ–जन्म हुआ। जान–यान–बारात। जोसि–ज्योतिषी–पण्डित। जोग–युक्ति। जूठउ–झूठा। जोगनी–जोइणी–योगिनी (ये ६४ हैं)। जुरइ (जुड़ई)–जुड़ जाते हैं। जिहा–जिस। जोइ ज्यों–देखना, खोजना। जइरि–यदि। जमडाढ़–तलवार। जुहारण–नमस्कार। जोइइ–आरम्भ करना। जावता–बीतता। जाइ–जाता है, जाकर। ज–प्रमान।

"झ"

झलवलइ–चमकना। झूरता–चिन्ता, झूरना, सूखना, पछताना, विलाप करना। झुण कार–रुनझुन। झिगमिगइ–जगमगाना। झंपियउ–झंखना, व्यथित हुआ। झीड़ई–पतली। झलकय–झलकती है, चमकती है। झलमलई–चमकता है। झाल–ज्वाला। झुनाकउ–जूनागढ़ का।

"ट"

टसकला मुसकला–चटकना, मटकना। टउरि–मैं जिस प्रकार। टेकि–पकड़कर।

"ठ"

ठअकती–ठुमकती चाल, रुक कर चलना। ठवइ–ठइअ–ठविय–रखता। ठाकुर–राजा। ठामोठामि–जगह-जगह। ठांइ–स्थान।

"ड"

डालीयउ–फेंकना।

भादवइ—भादों—भाद्रपद । भाण—भर्ग । भुइ—भूमि । भाइम—भाई । भम्भार—भ्रामी । भमइ—भ्रमइ—घूमता है । भीनउ—भीग गया । भइरव—भग्नावस्त ।

"म"

मुरि—मूर्च्छ, मूर्ख । मोडिउ—मोड़ा, गूँगा । माछिय—मग हुआ । मंगा—मोग । मोकलइउ—मोकलिय—प्रेषित, भेजा हुआ । मोकल्या—मोकलन—मोकलतु (गजराती)—भेजना । मुभ—मेरा, मेरी । म्हारइउ—मेरे यहाँ । म्हारइ—मेरे । मेल्हउ—छोड़ा । मिलावउ—मिलावन, मिलाओ । मुगति—मुक्ति । मनइ—मनमें । मेघा—मेघों का समूह । माय—माइ—मातृ का, मातृ का पूजन । मांडइउ—मांडना, मंडप । मेल्हा—मेलाप, मिलाप । मेल्हि मेलइ—छोड़ना । मग्न मेइणि—मेदिनी । मारु—मारवाड़ । मउडउ—मोड़कर निकाल, देर से निकाल । मउड—मुकुट, संग्राम । माल—मामन आभन्तरण सूचक अव्यय । महारि—महारिय—मेरा । महला महल—पीड़ा—मर्दीन । मुदि मुद मुज्म—मद करना । मढर—मढि—सूचित । म्हारी—मेरे । माहि—में । मेल्हाण—छोड़ना, परित्याग, छोड़ा । मसाण—श्मशान । मढिया—मढिय—रचित, लगाकर । मोनइ—मुझे, मुझको । मेलउ, मेलव—सम्बन्ध, संयोग । मरेसि, मरेगा—मरेगी । मुया—मृतक । मिल्या - मिलना । माता—मस्त । मइगल—मदगलित ।

'र'

रावलउ—राजा का । रावली—राजाओं की । रति—ऋतु । राया—सुन्दर । रोस—क्रोध । राजकउ—राजा के । रावडी—रापडी—शीश फूल । रिपज्यो—रखना । राउ—राजा । रावलइ—राजभवन, (अन्त पुर) । रवि—अग्नि, नायक सरदार । रोहणी—रोहिणि—दिन का दूसरा पहर, नक्षत्र विशेष, शकेन्द्र की एक पटरानी, आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में रोहिणी से चन्द्रमा का योग होता है । रुनी—रुदन ।

'ल'

लखलहइ—लाख प्राप्त करले, पहचानने योग्य । लहि—लहि । लाप—लाख संख्या । लीपीय—लुप्त, अप्राप्त । लावीय—लाभ, सुन्दर रम्य । लुषिजइ—लुञ्च—काटा हुआ । लोवडी—लोमपरी, सुन्दर बारीक । लूण—नीमक, लवण । लापा—लाखों । लेइ—लेकर । लागिय—लगती थी । लाउ—प्रेम । लछण—लाछना । लागामी—लगाम । लवइ—हिल जाता है ।

"व तथा य"

वनवउ—वर्णन करना। वखीसल—वीर बीसलदेव। विचिहण—विचक्षण। वेगम—शीघ्र। वरि—निश्च। वइसाइ—बैठा कर। वसउ—वसइ—स्थान। वासउ—वास। वस्या—किया। विचाल—विचाल—अन्तराल। वारहा—वारह। वढिया—बढना। वरधू—वरधू—वाद्यविशेष। विहुवाणा—दो वाणों से। वयण—कथन, वाणी। वेषि—मेष। विहुणीय—विहुण—अलग करना, बिना। वालि—राजा। वार—वारह। विरास्या—कष्ट किया। बोलिनइ—बोलना। वादी—चेरी। वारि—द्वार। वाहला—वाहलीया या वाहली—क्षुद्र नदी, छोटा नद। वीध—विधि, प्रकार। वइसवाइ—बैठने के लिये। वासीयउ—वासित—सुगन्धित किया हुआ, सत्कारित। वाउडइ—वाहुडइ—वाहुडित—लज्जित। वाहुडयाउ—लौटा। वत्र—वज्र। वाट—मार्ग। वाह—वायु। वाहुड्या—लौटना। वीज—बिजली। वादल—बादल। वउलावीया—बुलाया। वुढइ—बुढी। वजारि—मार्जार (बिल्ली) वाधीया—बाँधा। विह—उसके। वार—शीघ्र। वाणिया—बनियों। विहुणी—बिना। वाधतउ—बढते हुए। वधामणी—बधाई। वहिनडी—बहन। बुहार—भाडना। वहगा—शीघ्र। वीप—पग। विसहर—विषधर—सर्प। वाकरउ—निर्वाह करूँगा। वीरा—भाई। वारउ—मना करना। वेस—वयस। वइसतउ—बैठने के लिये।

"स" और "प"

सवारइ—सुसज्जित करना। सरसीय—सरस, साथ। सगुण—सउण—प्रसिद्ध शुभाशुभ सूचक बाहुस्पन्दन, काक—दर्शन आदि निमित्त, सगुन, गुण। सामाण—समान। सामाणसा—सुपुरुषजन। सिपिज्यो—सीलना। सुजाण—सुन्दर, चतुर। सुवर—अच्छा वर। समदीय उछूट—विदा करना। सोनउ—सोवण, सोना। सिउ—ससुरा। सगलउ—सकल, सब। सजहु—सजाना, सजाओ। सरगल—सट्ग—सौ की कीमत का, अनेक। सजइ—सजना। सावा—सवा १¼। सुहव—सुभग। सरिसिउ—समान। सगल—सदल—सकल। सावट्ट—वस्त्र विशेष। संउडि—चादर। स्हास—सास। सगलीहि—सगल—सदल—सकल। सवालपउ—सपादलक्ष, देश विशेष। सोवन—सोवण्ण—सोना, सुवर्ण। सवाहीयउ—प्रशंसा। सु—से। सीषि—शिक्षा। साहणी—साहनी। सुचग—चग—सुन्दर। सुणाउ—सुनो। सूकट—सिकोडना। साथि—साथ। स—सग। सिरि—सिर से। सहिनाण—चिन्ह, (पहचान)।

सुणवियउ—सुनाना। सार—मूल्य। उत्कृष्ट, अच्छी। सायर—सागर—समुद्र। सूकि—सूख कर। सारिखी—सारिक्ख—समान, सरीखा। सारिषउ—सारिक्ख—सदृश, समान। सउण—शकुन—सगुन। सउचरि—चार सौ। साढि—ऊँट। सकउ—सकना।

"ढ"

ढाकणउ–ढापा जाना, छिपाना। ढुलई–चल रहा है।

"त"

तणउ–तण–तृण–घास। तुरीय–तुरय–घोड़ा। ताजीय–ताजी। ताणीसा–तणिस्र–ताना हुआ। तिउरि–उसी प्रकार। तलइ–नीचे। तइ–तेरे। तत–तत। ताजणउ–घोड़े का। तावडउ–धूप। तुम्हनइ–तुमसे। तूटउ–संतुष्ट। तेजी–ताजो, घोड़े की एक जाति। तंबारइ–तंबोलि–पान। तोरणि–वहिर्द्वार तूठी–तुष्ट, प्रसन्न। तपई–तप्यइ 'तप करना', गरम होना, तपाना। तठी–से।

"थ"

थोडी-थोडी–कुछ-कुछ।

"द"

देषउ–देखना। दातार–देने वाला, दाता। देज्यो–दे। दीन–दिया। दीवड़–दरवाजे पर। देडवडी–दुदुभी। दाहिमा–दक्षिण दिशा, दक्षिण देश। दाइजउ–दहेज। दिहाडउ–दिन। दावडी–लडकी, छोकड़ी। द्वीज–द्वितीया। दाधा–जलाया हुआ। दिहि–दृष्टि दिटि–नजर, नेत्र। दवरती–दमयंती। दुषि–दु:ख। दुधू–दुग्ध–दूध। देवकइ–देवता का। देव–देवता 'दइव' यहाँ बीसल देव। दीप–दीपक (राजमती)।

"ध"

धीरिकयउ–धार का। धारइ–धारण किया। धान–धान्य, अन्न। धीन–धान्य। धण–स्त्री राजमती। धवल्या–सफेद, सफेदी कराना। धवलीय–धौरी। धीरय–धीरिम–धैर्य। धण का नाह–पति। धण–राजमती।

"न"

नवि–णवि (वैपरीत्य सूचक अव्यय) नहीं। नइ–णइ–नदी, नम्रतापूर्वक। नवसर, नव–णव, नया। नावइ–न आवइ–नहीं आता है। नावीया–नहीं आवोगे। नल्ह–नाल्ह कवि। नगर–शहर। नीकी–अच्छी, सुन्दर। नयण–नयन–आँख। नीसरइ–णिस्सरइ, बाहर निकलना। निवात–नवनीत–मक्खन। नयर–नगर। नाह–णाह, नाथ। नरेश–नरों के स्वामी। नीसाणो–नगाड़ा।

नालेर–नारिकेल–नारियल । निवार, णिवार–निवारण । नमकरि–नमस्कार करना । नमीण–नम्रतापूर्वक, नम्र होकर । निहालती–निरीक्षण करना–देखना । नाद–ज्ञान । न्हांण–नहाना । निरममां–निष्ठुर । नड्डा–निकट ।

"प"

पयाण–प्रयाण–गमन, प्रस्थान । पाणही, पाणहा–जूता । पूगी–पूरा कर । पीक–पान का पीक । परिहसि–परिहास । प्रउलि–पौरि । पयउहर–पयोधर । पूछ्छउ–पूछो । पुरिंगी–पूर्व का (उडीसा का) । पूति–पुत्त–पुत्र । पारणउ–पारण । परिगह–परिग्गाह–ममत्व । परिमाण–प्रमाण । पूरिव्यउ–पूर्व का । पाटलउ–पाटा । पूठि–पुट्ठि, पिट्ठी, पृष्ठ, पीठ । परहरयउ–छोड़ना (छोड़ा) पहुता–पहुँचा । पग–पांव । पातलउ–पतला । पधारउ–पधारना, जाना । पछ्छ–पीछे । पूरबी–पूर्व का । पाका–पका । पटोली–पट्ट, पहनने का कपड़ा । पसाउ–पसायन–प्रसन्न करना । पलाणि–पलोंद । पाणइ–पानी । पालि–तालाब आदि का बन्ध । पायस्या–पायस–खीर । पगार–पगड़ी । पोष–पौष मास । पालषी–पालकी । पहिरावणी–पहिरामण–पहिरावण–भेंट में दिया जाता है वस्त्र जो । परणि–विवाह । पश्चिम–पश्चिम । पहिरणइ–परिधान । पातली–पतली । परगास परकास–प्रकास–दिखाता । पतडउ–पत्रा, पंचांग । प्रथमइ–पहले । पठाइ–भेज दे । पालउ–पालन करो । पतीजुं–विश्वास करना । पाषारइ–पाखार, काठी (घोड़ों पर पाखर काठी) । पषालिज्यो–पखारना । पाट–रेशम । पटंबर–रेशमी वस्त्र । पऊतलउ–पहुँचा । पाइजइ–पाना । परिणवा–विवाह । पाइक–प्यादा, पैर से चलने वाला सैनिक । पाटि–पीढ़ा । पलाणीया–पलाणिग्र–भागा, दौडा, भागा हुआ, गया । पउलि–पउलिग्र–पका हुआ, जला हुआ दुग्ध । पौरि–ड्योढ़ी । पहर–पहनना । पतीजी–प्रतीति, विश्वास । परकाइ–दूसरों के शरीर में । पंषी–पक्षी । पउहर–पयोधर । परजल–प्रज्ज्वलित । पाइसुं–पायस–खीर ।

"फ"

फाटि–फटकर । फेडियउ–छोडना । फड़कइ–फड़कना । फिक्या–घूमा । फूदा–फुलरा । फेरवी–फेरना ।

"भ"

भवण–उत्पत्ति, जन्म, मकान, असुर कुमार आदि देवों का विमान, सत्ता । भेदइ–भेदना, तोड़ना । भेरि–भेरी, वाद्य विशेष । भोगवउ–भोग करना ।

सहि–सहना। सगलय–सगल–सयल–सफल। सोचिति–यह हृदय में। सांवलउ–सांवल। सुभाइ–सुभग–आनन्द । सं–साथ, से । सांउ–समान । सीस–सर। सशोभित–सुशोभित। सुणीजा–सनेही, स्नेहियों। संरया–योद्धा। साग–स्नान। साल–निचले भूभाग (गड्ढे)। सेह–स्वेद–धूलि–रजो सिनाइ–चमक जाती है। साहउ–सहारा। सउलि–चोरी। साइ–स्नाने बैठना। सद–सद्यः। सुवस–स्ववश–स्वतन्त्र। सोपारइ–साग्न की सुपारी। सीला–शीतल। सुमतउ–धीरे-धीरे। संचिअइ–सींचते हैं।

'ह'

हंस वाहण–हंसवाहिनी, सरस्वती। हुउ–हुआ। हउंरि–मैं। हियडलइ–हृदय। हेली–होली। हलवइ–धीरे। हारि–पराभूत होना।

❋ सहायक पुस्तकों की सूची ❋

'छंद, रस, और अलंकार तथा भाषा'

१. युक्ति व्यक्ति प्रकरणम्— सं० मुनि जिनविजय तथा डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ।

२ छंदोऽनुशासनम्— सपादक प्रो०एच० डी० वेलणकर ।

३ छंद प्रभाकर— जगन्नाथ प्रसाद "भानु" ।

४. पिंगल छंद सूत्रम— पिंगलाचार्य, स्वर्गीय सीतानाथ समाध्यायी भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित तथा श्री गोविन्द चन्द्र काव्यतीर्थ पुराणशास्त्री द्वारा संशोधित ।

५. रघुनाथ रूपक गीतारा— मंछ कवि 'सं० महताब चन्द्र खारैड, 'विशारद'जयपुरवाल । 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।'

६. अपभ्रंश मीटर्स— प्रो० एच० डी० वलणकर, 'बम्बई यूनिवर्सिटी जर्नल १६३३–३४ पृ० ३२–३४ ।'

७. राजस्थानी लोकगीत— सं० श्री सूर्यकिरण पारीक, एम० ए० ।

८. रस गंगाधर— जगन्नाथ पण्डितराज 'सं०—प० पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, नागरी प्रचारिणी सभा ।'

९ काव्य कल्पद्रुम— कन्हैयालाल पोद्दार ।

१० हिन्दी व्याकरण— कामताप्रसाद गुरु ।

११. नोट्स आन दि ग्रामर आफ दी ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी– टेस्सिटोरी ।

१२. हिन्दी भाषा का इतिहास— डा० धीरेन्द्र वर्मा ।

१३. राजस्थानी भाषा— डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ।

१४. राजस्थानी भाषा और साहित्य—पं० मोतीलाल मेनारिया।
१५. डिंगल में वीररस— " " "
१६. कम्परेटिव फाइलोलाजी— डा० पी० डी० गुने।
१७. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया—वोल्यूम ६।
१८. अ ग्रामर आफ कम्परेटिव आर्यन लैंग्वेज— जान बीम्स।
१९. अ ग्रामर आफ गाडियन लैंग्वेज— ए० एफ० आर० हार्नले।

इतिहास, भूगोल, तथा अन्य पुस्तकें

२०. नागरी प्रचारिणी पत्रिका—सम्वत् १९५८, १९७६, १९८२, १९९५, १९९६, १९९७.
२१. राजस्थानी पत्रिका— भाग ३
२२. एनुअल रिपोर्ट आन दी सर्च फार हिन्दी मैन्युस्क्रिप्ट फार दी इयर १९००।
२३. वारडिक सेलेक्शन्स — लाला सीताराम।
२४. मिश्रबन्धुविनोद—
२५. पृथ्वीराज विजयाख्य महाकाव्यम्—जोनराज कृत टीका सहित 'बिब्लोथेका इंडिका प्रकाशन।'
२६. भारत के प्राचीन राजवंश—
२७ इण्डियन एन्टिक्वेरी 'वाल्यूम १४।'
२८. वेलिक्रिसण रुक्मिणीरी
२९. राजपूताने का इतिहास— डा० गौरी शंकर हीराचंद्र ओझा।
३०. रिपोर्ट्स आफ दी आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया।
३१. हिस्ट्री आफ ओरीसा— श्री आर० डी० बनर्जी
३२ एनल्स एण्ड ऐन्टिक्वीटीज आफ राजस्थान— कर्नल टाड।

३३ राजपूताने का इतिहास— जगदीश सिंह गहलोत।
३४. हिस्ट्री आफ मालवा— मालकम।
३५ वश भास्कर— सूर्यमल्ल मिश्र।
३६. अजमेर मारवाड़ गजेटियर सी० सी० वाट्सन।
३७. अजमेर हिस्टारिकल एण्ड डेसक्रिप्टिव— एच० वी० शारदा।
३८ डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ नादर्न इण्डिया। वाल० १ एव २ डा० एच० सी० राय।
३९ राजा भोज— विश्वेश्वर नाथ रेऊ।
४०. एन्सियन्ट जोग्रफी आफ इडिया-एलेक्जेण्डर कनिंघम।
४१ सेन्ट्रल इण्डिया गजेटियर।
४२. एन्शियन्ट हिस्ट्री आफ इडिया वा: ए० स्मिथ।
४३ इण्डियन क्रानोलजी— एल० डी० कन्नूस्वामी पिल्लइ
४४ हिस्ट्री आफ ओरीसा— एल० के० महताब।
४५ जर्नल आफ द एसियाटिक सोसाइटी 'बगाल'।
४६ इण्डियन एरान— एलेक्जेण्डर कनिंघम।
४७ एन्शियन्ट इण्डियन हिस्ट्री—विनायक राव।
४८ मगरह मेरवाड़े की कौमों का इतिहास।
४९ द ग्लोरी दैट वाज गुजरात देश (भाग ३)— श्री के० एम० मुन्शी।
५०. हिस्टोरिकल इन्सक्रिप्शन्स आफ गुजरात— जी० वी० आचार्य।
५१. हिस्ट्री आफ मेडिवियल हिन्दू इण्डिया— सी० सी० वैद्य।
५२. हिस्ट्री आफ पारमार्स आफ मालवा— डी० सी० गागुली।

५३. एन्शियन्ट इण्डिया ऐज डेस्क्राइब्ड बाई ह्यानेसो ।
५४ वीर काव्य— डा० उदयनारायण तिवारी ।
५५ बीसलदेव रासो— श्री सत्यजीवन वर्मा ।
५६ वीसलदेव रासो— डा० मातामसाद गुप्त ।
५७ हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
५८. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास— डा० रामकुमार वर्मा ।

* शब्द कोप *

५६. पाइ अ - सद्द - महार्णवो ।
६०. अभिधान राजेन्द्र ।
६१ संस्कृत हिन्दी डिक्शनरी— मानियर विलियम ।
६२ वेदिक इडेक्स । मैकडानेल और कीथ ।
६३ हिन्दी शब्द सागर ।
६४ ढोला मारू रा दूहा ।
६५ डिंगल रा सबद । रायल एशियाटिक सोसाइटी में सुरक्षित । पाण्डुलिपि । राजस्थानी पाण्डुलिपियों की सूची पत्र स० ३८ सी० १६ ।

अंग्रेजी ग्रन्थ

1 Introduction to the Principles of Textual Criticism—*Dr. Katre*
2 The Grammar of Old Western Rajasthani—*Dr L P. Tissitom*
3. Comperative Philology—*Dr. P. D. Gune.*
4 Linguistic Survey of India—Vol IX.
5 History of Orrisa—*R. D Banerjee*
6 Rajasthan—*Todd* (Crooke's Edition)
7. History of Malwa—*Malcolm.*
8 Hindi Search Reports
9 A Grammer of Comperative Aryan Language—*John Beams.*
10 A Grammar of Gandhian Language—*A. F R Horenle.*
11 Gujrati Language & Literature—*N B Divatia*
12 Ajmer-Merwara Gazetteer—*C C Watson*
18 Dynestic History of Rajput (Vol I & II)—*Dr Hem Ray*
14. History of Kanauj—*Dr R S Tripathy*
15 Ancient Geography of India—*Cunningham*
16 Gazetteer of C. India—(Malva Dhar)
17 Ancient History of India—*V A Smith*
18. Ajmer—*H B. Sarda*
19 Marwar Ka Itihas—*Bisweswar Nath Renu*
20. Indian Chronology—*L D Swami K. Pillai*
21. History of Orrissa—*H. K Mahatab*
22 Indian Eras—*Cunningham.*
23 Bardic Chronicals of Rajsthan.
24. The Glory that was Gujarat-Desha P. III-*K. M. Munshi.*
25 Historical Inscriptions of Gujrat—*G. V Acharya*
26 History of Mediawal Hindu India—*C V. Vaidya*
27 History of the Parmars of Malwa—*D C. Ganguly.*
28 Ancient India as described by—*Ptolemy.*
29. Rajputana Gazetteer Vol I & II